Gyan vigyan
brhamgyan univercity
brhampura u.p.

लेखक आचार्य मनोज

© gyanvigyanbrhamgyan98@gmail.com

विषय सुची वेद भुमिका

1- शब्द प्रमाण का केन्द्र उर्जा
2- शब्द प्रमाण का आधारभुत स्तम्भ
3- वेद शब्द और उसका लक्षणात्मक स्वरूप
4- वैदिक ऋषियों का सामान्य परिचय 1 महर्षि व्यास, 2 ऋषि पुलस्त, 3 ऋषि अगस्त, 4 अंगिरस, 5 मनु
5- वैदिक महापुरुष, 1 नल, 2 सत्यवादि हरिश्चन्द्र, 3 श्री राम चन्द्र, 4 योगेष्वर कृष्ण
6- वैदिक इतिहास संक्षिप्त रामायण
7- वैदिक इतिहास संक्षिप्त महाभारत
8- वेद के अतिरिक्त संक्षिप्त आधुनिक भारत का इतिहास
9- वैदिक ब्रह्माण्ड उत्तपत्ति विवेचना
10- वैदिक विद्वान वैज्ञानिक विश्वामित्र
11- यजुर्वेद भाष्य प्रथम अध्याय

वेद भुमिका

1 -- शब्द प्रमाण का केन्द्र उर्जा

वैशेषिक दर्शनके अनुसार

वेद एक शब्द है और शब्द 'ऊर्जा' (तेज) एक तीव्र चाकचक्य (चमक) युक्त पदार्थ है। प्रकृति से यह आणविक होती है। ऊर्जा का एक महत्त्वपूर्ण गुण ऊष्ण उत्तेजना प्रदान करना है, अत: कोई भी पिण्ड जो इसके साथ संयोग करता है उच्चतापमान प्रदर्शित करता है। तेज का संयोग कर्म (गती) में परिवर्तन ले आता है।

रासायनिक अभिक्रियाएँ, ऊर्जा (तेज) की मात्रा के संयोग के कारण होती है।

द्रव्य अवरोध दो प्रकार (सामग्री अवरोध) के होते हैं- १. शोषण व २. आवर्तन जैसे लकड़ी शोषण के द्वारा इसके मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। उसी प्रकार काँच जैसे द्रव्य आवर्तन के द्वारा अपने अन्दर से तेज गुजर जाने की अनुमति प्रदान करते हैं। पिण्ड में तेज के संयोगिक प्रभाव के कारण जो रंग का प्रत्यक्ष होता है, वह उसके छितराए हुए तेजोघन के कारण दिखाई देता है। अंशुबोधिनी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में वर्ण-क्रम-मापन-विज्ञान का अस्तित्व रहा है।

भाष्यकार प्रशस्तपाद ने तेज 4 के व्याख्यान प्रसङ्ग में 'तेज' के चार प्रकार प्रतिपादित किये हैं। ये चार प्रकार उस तेज के ही स्वरूपान्तर हैं। वे इस प्रकार हैं- (१) भौम (२) दिव्य (३) उदर्य (४) आकरज

वैशेषिक दर्शन 'भौम' और 'दिव्य' को इसके स्रोत के रूप में निरुपित करता है। काष्ठादि ईधन से उत्पन्न और ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव (लपट के साथ जलने वाला) वाले 'तेज' को भौम कहते हैं और सूर्य, विद्युत आदि से प्राप्त 'तेज' को दिव्य कहते हैं। अन्य दो 'उदर्य' और 'आकरज' आधिभौतिक एवं पराभौतिक राशियों से सम्बन्धित हैं। तेज के बिना शरीर क्रिया कदापि संभव नहीं हो सकती, भोजनादि पाचनक्रिया का कारण रूप 'तेज' उदर्य कहा जाता है तथा सुवर्ण प्लेटिनम धातुएँ 'आकरज' तेज कहलाती हैं।

भौतिकी में ऊर्जा

किसी वस्तु या तंत्र में निहित कार्य करने की क्षमता को उर्जा कहते हैं। भौतिक विज्ञान में ऊर्जा की व्याख्या ऊष्मा क्रमश: तापमान और रंग हैं। लोहे की शलाका (छड़) की चुम्बक की ओर गति का अदृष्ट कारण, विद्युत का प्रभाव आदि भी ऊर्जा के अलग-अलग रूप हैं।

उर्जा का विस्तृत अध्ययन ही आधुनिक भौतिक विज्ञान के विकास का प्रमुख कारण है। ऊष्मा, प्रकाश, स्थिति, स्थापकता और चुम्बकत्व के विश्लेषणात्मक विवरण को पृथक् कर उनके अध्ययन का प्रबन्ध करना संभव है।

यदि भौतिक विज्ञान और वैशेषिक दर्शन के साथ-साथ अंशुबोधिनी के आधार पर 'शब्द' (तरंग वृत्ति: का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाय तो यह निश्चित ही अणुविखण्डन प्रक्रिया को समझने में अत्यन्त सहायक हो सकता है। पुरातन भारतीय साहित्य में शब्द के अन्य दो प्रकार और भी वर्णित हैं- (१) आहतनाद (द्रव्य माध्यम में तरंग) और (२) अनाहतनाद (पदार्थ की तरंग वृत्ति)।

तुलनात्मक अध्ययन का अभिप्राय वैशेषिक सम्मत भौतिक राशियों और आधुनिक भौतिक विज्ञान की राशियों के मध्य साम्य भी प्रदर्शित करना है। अत: शेष चार पदार्थों (सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव) का विश्लेषण अवशिष्ट है उनका विवेचन अग्रिम परिच्छेद में किया जायेगा।

मुख को अग्नि चक्र कहा गया है। मोटे अर्थों में उसकी संगति जठराग्नि से मिलाई जा सकती है। मंदाग्नि तीव्राग्नि का वर्णन मुँह से लेकर आमाशय अन्ति- संस्थान तक विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई पाचन ग्रन्थियों की निष्क्रियता-सक्रियता का परिचय देने के रूप में ही किया जाता है। मुँह चबाता है और पचाने का प्राथमिक कार्य अपने गह्वर में पूरा करता है। आगे चलकर आहार की पाचन क्रिया अन्यान्य रूपों में विकसित होती जाती है। अग्नि चक्र की मुख में अवस्थित ऊष्मा की स्थूल चर्चा ही पाचन प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है। वस्तुतः उस संस्थान को यज्ञाग्नि का दिव्य कुण्ड कह सकते हैं, जिससे पाचन का ही नहीं, वाक्शक्ति का भी उद्भव होता है। वाणी की शक्ति का जीवन के उत्कर्ष- अपकर्ष में कितना अधिक योगदान है। इसकी जानकारी किसी गूंगे और ओजस्वी वक्ता की स्थिति की तुलना करके देखने से मिल सकती है।

संभावना का आदान- प्रदान कितना प्रभावी है, इसका इसलिए पता नहीं चलता कि वह ढर्रा सहज अभ्यास से चलता रहता है और हम उससे कुछ विशेष निष्कर्ष नहीं निकाल पाते। यदि हम किसी मूक योनि के प्राणी रहे होते और बातचीत का आनन्द एवं लाभ लेने वाले मनुष्य की सुविधा का लेखा- जोखा लेते तो पता चलता कि यह कितनी बड़ी उपलब्धि है।

मुख का अग्नि चक्र स्थूल रूप से पाचन का, सूक्ष्म रूप में उच्चारण का और कारण रूप से चेतनात्मक दिव्य प्रवाह उत्पन्न करने का कार्य करता है। उसके तीनों कार्य एक से एक बढ़कर है। पाचन और उच्चारण की महत्ता सर्वविदित है। दिव्य प्रवाह संचार की बात कोई- कोई ही जानते हैं। जपयोग का सारा विधान इसी रहस्यमयी सामर्थ्य के साथ सम्बद्ध है।

शब्दों का उच्चारण मात्र जानकारी ही नहीं देता वरन् उनके साथ अनेकानेक भाव अभिव्यंजनाएँ, संवेदनाएँ, प्रेरणाएँ एवं शक्तियाँ भी जुड़ी होती हैं। यदि ऐसा न होता तो वाणी में मित्रता एवं शत्रुता उत्पन्न करने की सामर्थ्य न होती। दूसरों को उठाने गिराने में उसका उपयोग न हो पाता। कटु शब्द सुनकर क्रोध का आवेश चढ़ आता है और न कहने योग्य कहने तथा न करने योग्य करने की स्थिति बन जाती है। चिन्ता का समाचार सुनकर भूख- प्यास और नींद चली जाती है। शोक संवाद सुनकर मनुष्य अर्ध मूर्छित जैसा हो जाता है। तर्क, तथ्य, उत्साह एवं भावुकता भरा शब्द प्रवाह देखते- देखते जन समूह का विचार बदल देता है और उस उत्तेजना से सम्मोहित मनुष्य कुशल वक्ता का अनुसरण करने के लिए तैयार हो जाते हैं। द्रौपदी ने थोड़े से व्यंग- उपहास भरे अपमान जनक शब्द दुर्योधन से कह दिये थे। उनका घाव इतना गहरा उतरा कि अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश करने वाले महाभारत के रूप में

उसकी भयानक प्रतिक्रिया सामने आई। इन तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि वाणी का काम जानकारी देना भर नहीं है। शब्द प्रवाह के साथ- साथ उनके प्रभावोत्पादक चेतन तत्व भी जुड़े रहते हैं और वे ध्वनि कम्पनों के साथ घुले रहकर जहाँ भी टकराते हैं, वहाँ चेतनात्मक हलचल उत्पन्न करते हैं। शब्द को पदार्थ विज्ञान की कसौटी पर भौतिक तरंग स्पन्दन भी कहा जा सकता है, पर उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली संवेदनात्मक क्षमता की भौतिक व्याख्या नहीं हो सकती। वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक है।

जपयोग में शब्द शक्ति के इसी आध्यात्मिक प्रभाव को छानकर काम में लाया जाता है। नींबू का रस निचोड़कर उसका छिलका एक ओर रख दिया जाता है। दूध में से घी निकाल कर छाछ को महत्त्वहीन ठहरा दिया जाता है। जपयोग में ऐसा ही होता है। उसके द्वारा ऐसी चेतन शक्ति का उद्भव होता है, जो जापकर्त्ता के शरीर एवं मन में विचित्र प्रकार की हलचलें उत्पन्न करती है और अनन्त आकाश में उड़कर विशिष्ट व्यक्तियों को विशेष परिस्थितियों को तथा समूचे वातावरण को प्रभावित करती है।

मन्त्रों का चयन ध्वनि- विज्ञान को आधार मानकर किया गया है। अर्थ का समावेश गौण है। गायत्री मन्त्र की सामर्थ्य अद्भुत है। पर उसका अर्थ अति सामान्य है। भगवान से सद्बुद्धि की कामना भर उसमें की गई है। इसी अर्थ प्रयोजन को व्यक्त करने वाले मन्त्र श्लोक हजारों है। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसी कविताओं की कमी नहीं जिनमें परमात्मा से सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है। फिर उन सब कविताओं को गायत्री मन्त्र के समकक्ष क्यों नहीं रखा जाता और उनका उच्चारण क्यों उतना फलप्रद नहीं होता? वस्तुतः मन्त्र दृष्टाओं की दृष्टि में शब्दों का गुंथन ही महत्त्वपूर्ण रहा है। कितने ही बीज मन्त्र ऐसे हैं जिनका खींचतान के ही कुछ अर्थ भले ही गढ़ा जाय पर वस्तुतः उनका कुछ अर्थ है नहीं। ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं, हुं, फट् आदि शब्दों का क्या अर्थ हो सकता है, इस प्रश्न पर माथापच्ची करना बेकार है। उनका सृजन यह ध्यान में रखते हुए किया गया है कि उनका उच्चारण किस स्तर का शक्ति कम्पन उत्पन्न करता है और उनका जपकर्त्ता, बाह्य वातावरण तथा अभीष्ट प्रयोजन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

मानसिक, वाचिक एवं उपांशु जप में ध्वनियों के हलके भारी किये जाने की प्रक्रिया काम में लाई जाती है। वेद मन्त्रों के अक्षरों के साथ- साथ उदात्त- अनुदात्त और त्वरित क्रम से उनका उच्चारण नीचे- ऊँचे तथा मध्यवर्ती उतार-चढ़ाव के साथ किया जाता है। उनके सस्वर उच्चारण की परम्परा है। यह सब विधान इसी दृष्टि से बनाने पड़े हैं कि उन मन्त्रों का जप अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने वाला शक्ति प्रवाह उत्पन्न कर सके।

मन्त्र जप की दुहरी प्रतिक्रिया होती है। एक भीतर दूसरी बाहर। आग जहाँ जलती है उस स्थान को गरम करती है, साथ ही वायु मण्डल में ऊष्मा बिखेरकर अपने प्रभाव क्षेत्र को भी गर्मी देती है। जप का ध्वनि प्रवाह समुद्र की गहराई में चलने वाली जलधाराओं की तरह तथा ऊपर आकाश में छितराई हुई उड़ने वाली हवा की परतों की तरह अपनी हलचलें उत्पन्न करता है। उनके कारण शरीर में यत्र- तत्र सन्निहित अनेकों चक्रों तथा उपत्यिका ग्रन्थियों में विशिष्ट स्तर का शक्ति संचार होता है। लगातार के एक नियमित क्रम से चलने वाली हलचलें ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिन्हें रहस्यमय ही कहा जा सकता है।

जप लगातार करना पड़ता है और एक ही क्रम से इस प्रक्रिया के परिणामों को विज्ञान की प्रयोगशाला में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक टन भारी लोहे का गार्डर किसी छत के बीचो- बीच लटका दिया जाय और उस पर पाँच ग्राम भारी हलके से कार्क के लगातार आघात लगाने प्रारम्भ कर दिये जाय तो कुछ ही समय में वह सारा गार्डर काँपने लगेगा। यह लगातार एक गति से आघात क्रम से उत्पन्न होने वाली शक्ति का चमत्कार है। मन्त्र जप यदि विधिवत् किया गया है तो उसका परिणाम भी यही होता है। सूक्ष्म शरीर में अवस्थित चक्रों और ग्रन्थियों को जप ध्वनि का अनवरत प्रभाव अपने ढंग से प्रभावित करता है और उत्पन्न हुई हलचल उनकी मूर्छना दूर करके

जागृति का अभिनव दौर उत्पन्न करती है। ग्रन्थि भेदन तथा चक्र जागरण का सत्परिणाम जपकर्ता को प्राप्त होता है। जगे हुए यह दिव्य संस्थान साधक में आत्मबल का नया संचार करते हैं। उसे ऐसा कुछ अपने भीतर जगा, उगा प्रतीत होता है जो पहले नहीं था। इस नवीन उपलब्धि के लाभ भी उसे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होते हैं।

आप्त पुरुष द्वारा किए गए उपदेश को "शब्द" प्रमाण मानते हैं। (आप्तोपदेश: शब्द:; न्यायसूत्र 1.1.7)। आप्त वह पुरुष है जिसने धर्म के और सब पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को भली भांति जान लिया है, जो सब जीवों पर दया करता है और सच्ची बात कहने की इच्छा रखता है।

न्यायमत में वेद ईश्वर द्वारा प्रणीत ग्रंथ है और ईश्वर सर्वज्ञ, हितोपदेष्टा तथा जगत् का कल्याण करनेवाला है। वह सत्य का परम आश्रय होने से कभी मिथ्या भाषण नहीं कर सकता और इसलिए ईश्वर सर्वश्रेष्ठ आप्त पुरुष है। ऐसे ईश्वर द्वारा मानवमात्र के मंगल के निमित निर्मित, परम सत्य का प्रतिपादक वेद आप्तप्रमाण या शब्दप्रमाण की सर्वोत्तम कोटि है।

प्रमाण उसे कहते हैं जो सत्य ज्ञान करने में सहायता करे। अर्थात् वह बात जिससे किसी दूसरी बात का यथार्थ ज्ञान हो। प्रमाण न्याय का मुख्य विषय है। 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञान का। यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं। गौतम ने चार प्रमाण माने हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

इंद्रियों के साथ संबंध होने से किसी वस्तु का जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है। लिंग (लक्षण) और लिंगी दोनों के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को अनुमान कहते हैं। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य द्वारा दूसरी वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वह उपमान कहलाता है। जैसे, गाय के सदृश ही नील गाय होती है। आप्त या विश्वासपात्र पुरुष की बात को 'शब्द' प्रमाण कहते हैं।

इन चार प्रमाणों के अतिरिक्त मीमांसक, वेदांती और पौराणिक चार प्रकार के और प्रमाण मानते हैं—ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव। जो बात केवल परंपरा से प्रसिद्ध चली आती है वह जिस प्रमाण से मानी जाती है उसको ऐतिह्य प्रमाण कहते हैं। जिस बात से बिना किसी देखी या सुनी बात के अर्थ में आपत्ति आती हो उसके लिये अर्थापत्ति प्रमाण हैं। जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता, यह जानकर यह मानना पड़ता है कि देवदत्त रात को खाता है क्योंकि बिना खाए कोई मोटा हो नहीं सकता। व्यापक के भीतर व्याप्य—अंगी के भीतर अंग—का होना जिस प्रमाण से सिद्ध होता है उसे संभव प्रमाण कहते हैं। जैसे, सेर के भीतर छटाँक का होना। किसी वस्तु का न होना जिससे सिद्ध होता है वह अभाव प्रमाण है। जैसे चूहे निकलकर बैठे हुए हैं इससे बिल्ली यहाँ नहीं है। पर नैयायिक इन चारों को अलग प्रमाण नहीं मानते, अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं।

भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रमाणों की संख्या भिन्न-भिन्न है। किन-किन दर्शनों में कौन-कौन प्रमाण गृहीत हुए हैं यह नीचे दिया जाता है-

चार्वाक - केवल प्रत्यक्ष प्रमाण

बौद्ध - प्रत्यक्ष और अनुमान

सांख्य – प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शाब्द)

पातंजल - प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शाब्द)

वैशेषिक - प्रत्यक्ष और अनुमान

रामानुज पूर्णप्रज्ञ - प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शाब्द)

प्रत्यक्ष

इनमें से आत्मा, मन और इंद्रिय का संयोग रूप जो ज्ञान का करण वा प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है। वस्तु के साथ इंद्रिय- संयोग होने से जो उसका ज्ञान होता है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। यह प्रमाण सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

गौतम ने न्यायसूत्र में कहा है कि इंद्रिय के द्वारा किसी पदार्थ का जो ज्ञान होता है, वही प्रत्यक्ष है। जैसे, यदि हमें सामने आग जलती हुई दिखाई दे अथवा हम उसके ताप का अनुभव करें तो यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि 'आग जल रही है'। इस ज्ञान में पदार्थ और इंद्रिय का प्रत्यक्ष संबंध होना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि 'वह किताब पुरानी है' तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है; क्योंकि इसमें जो ज्ञान होता है, वह केवल शब्दों के द्वारा होता है, पदार्थ के द्वारा नहीं, इसिलिये यह शब्दप्रमाण के अंतर्गत चला जायगा। पर यदि वही किताब हमारे सामने आ जाय और मैली कुचैली या फटी हुई दिखाई दे तो हमें इस बात का अवश्य प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायगा कि 'यह किताब पुरानी है'।

प्रत्यक्ष ज्ञान किसी के कहे हुए शब्दों द्वारा नहीं होता, इसी से उसे 'अव्यपदेश्य' कहते हैं। प्रत्यक्ष को अव्यभिचारी इसलिये कहते हैं कि उसके द्वारा जो वस्तु जैसी होती है उसका वैसा ही ज्ञान होता है। कुछ नैयायिक इस ज्ञान के करण को ही प्रमाण मानते हैं। उनके मत से 'प्रत्यक्ष प्रमाण' इंद्रिय है, इंद्रिय से उत्पन्न ज्ञान 'प्रत्यक्ष ज्ञान' है। पर अव्यपदेश्य पद से सूत्रकार का अभिप्राय स्पष्ट है कि वस्तु का जो निर्विकल्पक ज्ञान है वही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

नवीन ग्रंथकार दोनों मतों को मिलाकर कहते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञान के करण (अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण) तीन हैं

(१) इंद्रिय, (२) इंद्रिय का संबंध और (३) इंद्रियसंबंध से उत्पन्न ज्ञान

पहली अवस्था में जब केवल इंद्रिय ही करण हो तो उसका फल वह प्रत्यक्ष ज्ञान होगा जो किसी पदार्थ के पहले पहल सामने आने से होता है। जैसे, वह सामने कोई चीज दिखाई देती है। इस ज्ञान को 'निर्विकल्पक ज्ञान' कहते हैं। दूसरी अवस्था में यह जान पड़ता है कि जो चीज सामने है, वह पुस्तक है। यह 'सविकल्पक ज्ञान' हुआ। इस ज्ञान का कारण इंद्रिय का संबंध है। जब इंद्रिय के संबंध से उत्पन्न ज्ञान करण होता है, तब यह ज्ञान कि यह किताब अच्छी है अथवा बुरी है, प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। यह प्रत्यक्ष ज्ञान ६ प्रकार का होता है -

(१) चाक्षुष प्रत्यक्ष, जो किसी पदार्थ के सामने आने पर होता है। जैसे, यह पुस्तक नई है।

(२) श्रावण प्रत्यक्ष, जैसे, आँखें बंद रहने पर भी घंटे का शब्द सुनाई पड़ने पर यह ज्ञान होता है कि घंटा बजा

(३) स्पर्श प्रत्यक्ष, जैसे बरफ हाथ में लेने से ज्ञान होता है कि वह बहुत ठंढी है।

(४) रसायन प्रत्यक्ष, जैसे, फल खाने पर जान पड़ता है कि वह मीठा है अथवा खट्टा है।

(५) घ्राणज प्रत्यक्ष, जैसे, फूल सूँघने पर पता लगता है कि वह सुगंधित है। और

(६) मानस प्रत्यक्ष जैसे, सुख, दुःख, दया आदि का अनुभव।

अनुमान

प्रत्यक्ष को लेकर जो ज्ञान (तथा ज्ञान के कारण) को अनुमान कहते हैं। जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धुआँ रहता है वहाँ आग रहती है। इसी को नैयायिक 'व्याप्ति ज्ञान' कहते हैं जो अनुमान की पहली सीढ़ी है। हमने कहीं धूआँ देखा जो आग कि जिस धूएँ के साथ सदा हमने आग देखी है वह यहाँ हैं। इसके अनंतर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि 'यहाँ आग है'। अपने समझने के लिये तो उपयुक्त तीन खंड काफी है पर नैयायिकों का कार्य है दूसरे के मन में ज्ञान कराना, इससे वे अनुमान के पाँच खंड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं।

(१) प्रतिरा—साध्य का निर्देश करनेवाला अर्थात् अनुमान से जो बात सिद्ध करना है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, यहाँ पर आग है।

(२) हेतु—जिस लक्षण या चिह्न से बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, क्योंकि यहाँ धुआँ है।

(३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्न के साथ जहाँ देखी गई है उसा बतानेवाला वाक्य। जैसे,— जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, जैसे 'रसोईघर में'।

(४) उपनय—जो वाक्य बतलाए हुए चिह्न या लिंग का होना प्रकट करे, जैसे, 'यहाँ पर धूआँ है'।

(५) निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गई यह कथन।

अतः अनुमान का पूरा रूप यों हुआ— यहाँ पर आग है (प्रतिज्ञा)। क्योकि यहाँ धूआँ है (हेतु)। जहाँ जहाँ धूआँ रहता है वहाँ वहाँ आग रहती है, 'जैसे रसोई घर में' (उदारहण)। यहाँ पर धूआँ है (उपनय)। इसीलिये यहाँ पर आग है (निगमन)। साधारणतः इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को न्याय कहते हैं।

नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवों का मानना आवश्यक नहीं समझते। वे प्रमाण के लिये प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टांत इन्हीं तीनों को काफी समझते हैं। मीमांसक और वेदांती भी इन्हीं तीनों को मानते हैं। बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु। 'दुष्ट हेतु' को हेत्वाभास कहते हैं पर इसका प्रमाण गौतम ने प्रमाण के अंतर्गत न कर इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है। इसी प्रकार छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तव में हेतुदोष ही कहे जा सकते हैं। केवल हेतु का अच्छी तरह विचार करने से अनुमान के सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं।

उपमान

गौतम का तीसरा प्रमाण 'उपमान' है। किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से न जानी हुई वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वही उपमान है। जैसे, नीलगाय गाय के सदृश होती है। किसी के मुँह से यह सुनकर जब हम जंगल में नीलगाय देखते हैं तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि 'यह नीलगाय है'। इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तु का उसके नाम के साथ संबंध ही उपमिति ज्ञान का विषय है। वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाण के ही अंतर्गत मानते हैं। वे कहते हैं कि 'गो के सदृश गवय होता है' यह शब्द या आगम ज्ञान है क्योंकि यह आप्त या विश्वासपात्र मनुष्य के कहे हुए शब्द द्वारा हुआ फिर इसके उपरांत यह ज्ञान क्रि 'यह जंतु जो हम देखते हैं गो के सदृश है' यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तक का ज्ञान तो शब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनंतर जो यह ज्ञान होता है कि 'इसी जंतु का नाम गवय है' वह न प्रत्यक्ष है, न अनुमान, न शब्द, वह उपमान ही है। उपमान को कई नए दार्शनिकों ने इस प्रकार अनुमान कै अंतर्गत किया

है। वे कहते हैं कि 'इस जंतु का नाम गवय हैं', 'क्योंकि यह गो के सदृश है' जो जो जंतु गो के सदृश होते है उनका नाम गवय होता है। पर इसका उत्तर यह है कि 'जो जो जंतु गो के सदृश्य होते हैं वे गवय हैं' यह बात मन में नहीं आती, मन में केवल इतना ही आता हैं कि 'मैंने अच्छे आदमी के मुँह से सुना है कि गवय गाय के सदृश होता है ?'

शब्दप्रमाण

चौथा प्रमाण है - शब्द। सूत्र में लिखा है कि आप्तोपदेश अर्थात आप्त पुरुष का वाक्य शब्दप्रमाण है। भाष्यकार ने आप्तपुरुष का लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना (अनुभव किया) हो ठीक ठीक वैसा ही कहनेवाला हो, वही आप्त है, चाहे वह आर्य हो या म्लेच्छ। गौतम ने आप्तोपदेश के दो भेद किए हैं— दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। प्रत्यक्ष जानी हुई बातों को बतानेवाला दृष्टार्थ और केवल अनुमान से जानी जानेवाली बातों (जैसे स्वर्ग, अपवर्ग, पुनर्जन्न इत्यादि) को बतानेवाला अदृष्टार्थ कहलाता है। इसपर भाष्य करते हुए वात्स्यान ने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और ऋषि— वाक्य (वैदिक) का विभाग हो जाता है अर्थात् अदृष्टार्थ मे केवल वेदवाक्य ही प्रमाण कोटि में माना जा सकता है। नैयायिकों के मत से वेद ईश्वरकृत है इससे उसके वाक्य सदा सत्य और विश्वसनीय हैं पर लौकिक वाक्य तभी सत्य माने जा सकते हैं। जब उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रों में वेद के प्रामाण्य के विषय में कई शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमांसक ईश्वर को नहीं मानते पर वे भी वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्द मात्र को मानते हैं और शब्द और अर्थ का नित्य संबंध बतलाते हैं। पर नैयायिक शब्द का अर्थ के साथ कोई नित्य संबंध नहीं मानते। वाक्य का अर्थ क्या है, इस विषय में बहुत मतभेद है। मीमांसकों के मत से नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्यों से कही जाती है चाहे साफ साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्यों से संबंध द्वारा। पर नैयायिकों के मत से कई पदों के संबंध से निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परंतु वाक्य में जो पद होते हैं वाक्यार्थ के मूल कारण वे ही हैं। न्यायमंजरी में पदों में दो प्रकार की शक्ति मानी गई है—प्रथम अभिधात्री शक्ति जिससे एक एक पद अपने अपने अर्थ का बोध कराता है और दूसरी तात्पर्य शक्ति जिससे कई पदों के संबंध का अर्थ सूचित होता है। शक्ति के अतिरिक्त लक्षणा भी नैयायिकों ने मानी है। आलंकारिकों ने तीसरी वृत्ति व्यंजना भी मानी है पर नैयायिक उसे पृथक् वृत्ति नहीं मानते। सूत्र के अनुसार जिन कई अक्षरों के अंत में विभक्ति हो वे ही पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—नाम विभक्ति और आख्यात विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और आख्यात दो ही प्रकार के पद मानते हैं। अव्यय पद को भाष्यकार ने नाम के ही अंतर्गत सिद्ध किया है। न्याय में ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदांती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, संभव और अभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारों को अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्यायशास्त्र का मुख्य विषय है। इसी से 'प्रमाणप्रवीण', 'प्रमाणकुशल' आदि शब्दों का व्यवहार नैयायिक या तार्किक के लिये होता है।

प्रमेय

प्रमाण का विषय (जिसे प्रमाणित किया जाय) प्रमेय कहलाता है। ऐसे विषय न्याय के अन्तर्गत बारह गिनाए गए हैं—

(१) आत्मा—सब वस्तुओं का देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला।

(२) शरीर—भोगो का आयतन या आधार।

(३) इंद्रियाँ—भोगों के साधन।

(४) अर्थ—वस्तु जिसका भोग होता है।

(५) बुद्धि—भोग।

(६) मन—अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इंद्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओं का ज्ञान होता है।

(७) प्रवृत्ति—वचन, मनऔर शरीर का व्यापार।

(८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामों में प्रवृत्ति होती है।

(९) प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म।

(१०) फल—सुख दुःख का संवेदन या अनुभव।

(११) दुःख—पीडा़, क्लेश।

(१२) अपवर्ग—दुःख से अत्यंत निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूची से यह न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के अतिरिक्त और प्रमेय (प्रमाण के विषय) हो ही नहीं सकते। प्रमाण के द्वारा बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतम ने अपने सूत्रों में उन्हीं बातों पर विचार किया है जिनके ज्ञान से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। न्याय में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लिंग (अनुमान के साधन चिह्न या हेतु) कहे गए हैं, यद्यपि शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा पृथक् मानी गई है। वैशेषिक में भी इच्छा, द्वेष सुख, दुःख आदि को आत्मा का लिंग कहा है। शरीर, इंद्रिय और मन से आत्मा के पृथक् होने के हेतु गौतम ने दिए हैं। वेदांतियों के समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। सांख्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुष को अकर्ता और अभोक्ता, साक्षी वा द्रष्टा मात्र मानते हैं। नैयायिक आत्मा को कर्ता, भोक्ता आदि मानते हैं। संसार को रचनेवाली आत्मा ही ईश्वर है। न्याय में आत्मा के समान ही ईश्वर में भी संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि प्रयत्न ये गुण माने गए हैं पर नित्य करके। न्यायमंजरी में लिखा है कि दुःख, द्वेष और संस्कार को छोड़ और सब आत्मा के गुण ईश्वर में हैं।

बहुत से लोग शरीर को पाँचों भूतों से बना मानते हैं पर न्याय में शरीर केवल पृथ्वी के परमाणुओं से घटित माना गया है। चेष्टा, इंद्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं। जिस पदार्थ से सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करने का व्यापार चेष्टा है। अतः शरीर का जो लक्षण किया गया है उसके अंतर्गत वृक्षों का शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि यह लक्षण वृक्षशरीर में नहीं घटता, इससे केवल मनुष्य शरीर का ही अभिप्राय समझना चाहिए। शंकर मिश्र ने वैशेषिक सूत्रोपस्कार में कहा है कि वृक्षों को शरीर है पर उसमें चेष्टा और इंद्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पूर्वजन्म में किए कर्मों के अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतों से पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति कही गई है। घ्राणेंद्रिय से गंध का ग्रहण होता है, इससे वह पृथ्वी से बनी है। रसना जल से बनी है क्योकि रस जल का ही गुण है। चक्षु तेज से बना हैं क्योकि रूप तेज का ही गुण है। त्वक् वायु से बना है क्योंकि स्पर्श वायु का गुण है। श्रोत्र आकाश से बना है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। बौद्धों के मत से शरीर में इंद्रियों के जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हीं को इंद्रियाँ कहते हैं। (जैसे, आँख की पुतली, जीभ इत्यादि); पर नैयायिकों के मत से जो अंग दिखाई पड़ते हैं वे इंद्रियों के अधिष्ठान मात्र हैं, इंद्रियाँ नहीं हैं। इंद्रियों का ज्ञान इँद्रियों द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही त्वग् इंद्रिय मानते हैं। न्याय में उनके मत का खंडन करके इंद्रियों का नानात्व स्थापित किया गया है। सांख्य में पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। न्याय में कर्मेंद्रियाँ नहीं

मानी गई हैं पर मन एक करण और अणुरूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो युगपद ज्ञान संभव होता, अर्थात् अनेक इंद्रियों का एक क्षण में एक साथ संयोग होने से उन सबके विषयों का एक साथ ज्ञान होता। पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों भूतों के गुण और इंद्रियों के अर्थ या विषय़ हैं।

न्याय में बुद्धि को ज्ञान या उपलब्धि का ही दूसरा नाम कहा है। सांख्य में बुद्धि नित्य कही गई है पर न्याय में अनित्य। वैशेषिक के समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओं के योग से सृष्टि मानता है।

प्रमेयों के संबंध में न्याय और वैशेषिक के मत प्रायः एक ही हैं इससे दर्शन में दोनों के मत न्याय मत कहे जाते हैं। वात्स्यायन ने भी भाष्य में कह दिया है कि जिन बातों को विस्तार-भय से गौतम ने सूत्रों में नहीं कहा है उन्हें वैशेषिक से ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतम का न्याय केवल विचार या तर्क के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयों का भी विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक (तर्कशास्त्र) से यही इसमें भेद हैं। लाजिक, दर्शन के अंतर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय, दर्शन है। यह अवश्य है कि न्याय में प्रमाण या तर्क की परीक्षा विशेष रूप से हुई है।

2--शब्द प्रमाण का आधारभुत स्तम्भ वेद

वेद प्राचीन भारत के पवितत्रतम साहित्य हैं, जो हिन्दुओं के प्राचीनतम और आधारभूत धर्मग्रन्थ भी हैं। भारतीय संस्कृति में वेद सनातन वर्णाश्रम धर्म के मूल और सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, जो ईश्वर की वाणी है। ये विश्व के उन प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथों में से हैं, जिनके पवित्र मन्त्र आज भी बड़ी आस्था और श्रद्धा से पढ़े और सुने जाते हैं।

"विद्" का अर्थ है: जानना, ज्ञान इत्यादि वेद शब्द संस्कृत भाषा के "विद्" धातु से बना है। 'वेद' हिन्दू धर्म के प्राचीन पवित्र ग्रंथों का नाम है, इससे वैदिक संस्कृति प्रचलित हुई। ऐसी मान्यता है कि इनके मन्त्रों को परमेश्वर ने प्राचीन ऋषियों को अप्रत्यक्ष रूप से सुनाया था। इसलिए वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। वेद प्राचीन भारत के वैदिक काल की वाचिक परम्परा की अनुपम कृति है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी पिछले एक अरब छानबे करोण और लाखों वर्षों से चली आ रही है। वेद ही हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थ हैं। वेद के असल मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ

मन्त्रों की व्याख्या करने वाले भाग को "ब्राह्मण" कहते हैं। चारों वेदों के चार ही ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं, ऋग्वेद का "ऐतरेय", यजुर्वेद का "शतपथ"; सामवेद यजुर्वेद का "पंचविंश" तथा अथर्ववेद का "गोपथ ब्राह्मण"। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड विषयक अंश "ब्राह्मण" कहलाता है; ज्ञान चर्चा विषयक अंश "आरण्यक"; उपासना विषयक अंश को उपनिषद कहते हैं। इस प्रकार वेद-मन्त्रों का और ब्राह्मण-भागों का निरुपण मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद इन चार नामों से होने लगा।

उपवेद व उपांग

प्रत्येक वेद के साथ एक-एक "उपवेद" है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद; यजुर्वेद का उपवेद "धनुर्वेद"; सामवेद का उपवेद "गन्धर्ववेद"; और अथर्ववेद का उपवेद "अर्थशास्त्र" है। इसी प्रकार वेद के

छः अंग और छः उपांग हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निसक्त, छन्द, और ज्योतिष तो छः अंग हैं। शिक्षा ग्रन्थ से मन्त्र उच्चारण की विधि प्राप्त होती है; कल्पग्रन्थों से यज्ञ करने की विधि; व्याकरण से शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान; निरुक्त से वेद-शब्दों के अर्थ का ज्ञान; छन्द-शास्त्र से छन्दों का ज्ञान; तथा ज्योतिष से ग्रह-नक्षत्रादि की स्थिति का तथा मानव पर उनके भलेबुरे प्रभाव का ज्ञान होता है। वेदों के उपांग "षड्दर्शन या षट्शास्त्र" कहलाते हैं।

वेदवाड्मय एवं अपौरुषेयवाद

'सनातन धर्म' एवं 'भारतीय संस्कृति' का मूल आधार स्तम्भ विश्व का अति प्राचीन और सर्वप्रथम वाड्मय 'वेद' माना गया है। मानव जाति के लौकिक (सांसारिक) तथा पारमार्थिक अभ्युदय-हेतु प्राकट्य होने से वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है। अति प्राचीनकालीन महा तपा, पुण्यपुञ्ज ऋषियों के पवित्रतम अन्तःकरण में वेद के दर्शन हुए थे, अतः उसका 'वेद' नाम प्राप्त हुआ। ब्रह्म का स्वरूप 'सत-चित-आनन्द' होने से ब्रह्म को वेद का पर्यायवाची शब्द कहा गया है। इसीलिये वेद लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान का साधन है। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये०'- तात्पर्य यह कि कल्प के प्रारम्भ में आदि कवि ब्रह्मा के हृदय में वेद का प्राकट्य हुआ।

सुप्रसिद्ध वेदभाष्यकार महान् पण्डित सायणाचार्य अपने वेदभाष्य में लिखते हैं कि 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः'

निरूक्त कहता है कि 'विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति०'

'आर्यविद्या-सुधाकर' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि— वेदो नाम वेद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते धर्मार्थकाममोक्षा अनेनेति व्युत्पत्त्या चतुर्वर्गज्ञानसाधनभूतो ग्रन्थविशेषः॥

'कामन्दकीय नीति' भी कहती है- 'आत्मानमन्विच्छ०।' 'यस्तं वेद स वेदवित्॥' कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञान का ही पर्याय वेद है।

श्रुति भगवती बतलाती है कि 'अनन्ता वै वेदाः॥' वेद का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान अनन्त है, अतः वेद भी अनन्त हैं। तथापि मुण्डकोपनिषद की मान्यता है कि वेद चार हैं- 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्ववेदः॥' इन वेदों के चार उपवेद इस प्रकार हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।

स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः॥

उपवेदों के कर्ताओं में ,आयुर्वेद के कर्ता धन्वन्तरि, धनुर्वेद के कर्ता विश्वामित्र,गान्धर्ववेद के कर्ता नारद मुनि और स्थापत्यवेद के कर्ता विश्वकर्मा हैं।

मनुस्मृति में वेद ही श्रुति

मनुस्मृति कहती है- 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' 'आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्ते सा श्रुतिः॥' वेदकालीन महातपा सत्पुरुषों ने समाधि में जो महाज्ञान प्राप्त किया और जिसे जगत के आध्यात्मिक अभ्युदय के लिये प्रकट भी किया, उस महाज्ञान को 'श्रुति' कहते हैं।

श्रुति के दो विभाग हैं- वैदिक और

तान्त्रिक- 'श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च।' मुख्य तन्त्र तीन माने गये हैं-

महानिर्वाण-तन्त्र, नारदपाञ्चरात्र-तन्त्र और कुलार्णव-तन्त्र।

वेद के भी दो विभाग हैं-

मन्त्र विभाग और ब्राह्मण विभाग- 'वेदो हि मन्त्रब्राह्मणभेदेन द्विविधः।'

वेद के मन्त्र विभाग को संहिता भी कहते हैं। संहितापरक विवेचन को 'आरण्यक' एवं संहितापरक भाष्य को 'ब्राह्मणग्रन्थ' कहते हैं। वेदों के ब्राह्मणविभाग में' आरण्यक' और 'उपनिषद'- का भी समावेश है। ब्राह्मणविभाग में 'आरण्यक' और 'उपनिषद'- का भी समावेश है। ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या 13 है, जैसे ऋग्वेद के 2, यजुर्वेद के 2, सामवेद के 8 और अथर्ववेद के 1 ।

मुख्य ब्राह्मणग्रन्थ पाँच हैं-

ऋग्वेद का आवरण पृष्ठ, ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, तलवकार ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण और

ताण्डय ब्राह्मण।

उपनिषदों की संख्या वैसे तो 108 हैं, परंतु मुख्य 12 माने गये हैं, जैसे- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि और श्वेताश्वतर।

वेद ईश्वरीय या मानवनिर्मित

वेद पौरुषेय (मानवनिर्मित) है या अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत)। वेद का स्वरूप क्या है? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्ट उत्तर ऋग्वेद में इस प्रकार है-'वेद' परमेश्वर के मुख से निकला हुआ 'परावाक' है, वह 'अनादि' एवं 'नित्य' कहा गया है। वह अपौरुषेय ही है।

इस विषय में मनुस्मृति कहती है कि अति प्राचीन काल के ऋषियों ने उत्कट तपस्या द्वारा अपने तपःपूत हृदय में 'परावाक' वेदवाङ्मय का साक्षात्कार किया था, अतः वे मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाये-'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।' बृहदारण्यकोपनिषद में उल्लेख है- 'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस।' अर्थात उन महान् परमेश्वर के द्वारा (सृष्टि- प्राकट्य होने के साथ ही)-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद निःश्वास की तरह सहज ही बाहर प्रकट हुए। तात्पर्य यह है कि परमात्मा का निःश्वास ही वेद है। इसके विषय में वेद के महापण्डित सायणाचार्य अपने वेद भाष्य में लिखते हैं-

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।

निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वैदिक परंपरा

सारांश यह कि वेद परमेश्वर का नि:श्वास है, अत: परमेश्वर द्वारा ही निर्मित है। वेद से ही समस्त जगत का निर्माण हुआ है। इसीलिये वेद को अपौरुषेय कहा गया है। सायणाचार्य के इन विचारों का समर्थन महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त पाश्चात्य वेद विद्वान प्रो0 विल्सन, प्रो. मैक्समूलर आदि ने अपने पुस्तकों में किया है।

प्रो0 विल्सन लिखते हैं कि 'सायणाचार्य का वेद विषयक ज्ञान अति विशाल और अति गहन है, जिसकी समकक्षता का दावा कोई भी यूरोपीय विद्वान नहीं कर सकता।'

प्रो0 मैक्समूलर लिखते हैं कि 'यदि मुझे सायणाचार्यरहित बृहद वेदभाष्य पढ़ने को नहीं मिलता तो मैं वेदार्थों के दुर्भेद्य क़िला में प्रवेश ही नहीं पा सका होता।' इसी प्रकार पाश्चात्य वेद विद्वान वेबर, बेनफी, राथ, ग्राम्सन, लुडविग, ग्रिफिथ, कीथ तथा विंटरनित्ज आदि ने सायणाचार्य के वेद विचारों का ही प्रतिपादन किया है।

निरूक्तकार 'यास्काचार्य' भाषाशास्त्र के आद्यपण्डित माने गये हैं। उन्होंने अपने महाग्रन्थ वेदभाष्य में स्पष्ट लिखा है कि 'वेद अनादि, नित्य एवं अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) ही है।' उनका कहना है कि 'वेद का अर्थ समझे बिना केवल वेदपाठ करना पशु की तरह पीठ पर बोझा ढोना ही है; क्योंकि अर्थज्ञानरहित शब्द (मन्त्र) प्रकाश (ज्ञान) नहीं दे सकता। जिसे वेद-मन्त्रों का अर्थ-ज्ञान हुआ है, उसी का लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण होता है।' ऐसे वेदार्थ ज्ञान का मार्ग दर्शक निरूक्त है।

जर्मनी के वेद विद्वान प्रो0 मैक्समूलर कहते हैं कि 'विश्व का प्राचीनतम वाड्मय वेद ही है, जो दैविक एवं आध्यात्मिक विचारों को काव्यमय भाषा में अद्भुत रीति से प्रकट करने वाला कल्याणप्रदायक है। वेद परावाक है।' नि:संदेह परमेश्वर ने ही परावाक (वेदवाणी) का निर्माण किया है- ऐसा महाभारत में स्पष्ट कहा गया है-'अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥' अर्थात जिसमें से सर्वजगत उत्पन्न हुआ, ऐसी अनादि वेद-विद्यारूप दिव्य वाणी का निर्माण जगन्निर्माता ने सर्वप्रथम किया।

ऋषि वेद मन्त्रों के कर्ता नहीं अपितु द्रष्टा ही थे- 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:।' निरूक्तकार ने भी कहा है- वेद मन्त्रों के साक्षात्कार होने पर साक्षात्कारी को ऋषि कहा जाता है- 'ऋषिर्दर्शनात्।' इससे स्पष्ट होता है कि वेद का कर्तृत्व अन्य किसी के पास नहीं होने से वेद ईश्वरप्रणीत ही है, अपौरुषेय ही है।

भारतीय दर्शन शास्त्र के मतानुसार शब्द को नित्य कहा गया है। वेद ने शब्द को नित्य माना है, अत: वेद अपौरुषेय है यह निश्चित होता है। निरूक्तकार कहते हैं कि 'नियतानुपूर्व्या नियतवाचो युक्तय:।' अर्थात शब्द नित्य है, उसका अनुक्रम नित्य है और उसकी उच्चारण-पद्धति भी नित्य है, इसीलिये वेद के अर्थ नित्य हैं। ऐसी वेदवाणी का निर्माण स्वयं परमेश्वर ने ही किया है।

शब्द की चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं-

यजुर्वेद का आवरण पृष्ठ, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। ऋग्वेद- में इनके विषय में इस प्रकार कहा गया है-

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।

गुहा त्रीणि निहिता नेग्डयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्य वदन्ति॥

अर्थात वाणी के चार रूप होने से उन्हें ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। वाणी के तीन रूप गुप्त हैं, चौथा रूप शब्दमय वेद के रूप में लोगों में प्रचारित होता है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म-ज्ञान को परावाक कहते हैं। उसे ही वेद कहा गया है। इस वेदवाणी का साक्षात्कार महा तपस्वी ऋषियों को होने से इसे 'पश्यन्तीवाक' कहते हैं। ज्ञानस्वरूप वेद का आविष्कार शब्दमय है। इस वाणी का स्थूल स्वरूप ही 'मध्यमावाक' है। वेदवाणी के ये तीनों स्वरूप अत्यन्त रहस्यमय हैं। चौथी 'वैखरीवाक' ही सामान्य लोगों की बोलचाल की है। शतपथ ब्राह्मण तथा माण्डूक्योपनिषद में कहा गया है कि वेद मन्त्र के प्रत्येक पद में, शब्द के प्रत्येक अक्षर में एक प्रकार का अद्भुत सामर्थ्य भरा हुआ है। इस प्रकार की वेद वाणी स्वयं परमेश्वर द्वारा ही निर्मित है, यह नि:शंक है।

शिव पुराण में आया है कि ओ३म् के 'अ' कार, 'उ' कार, 'म' कार और सूक्ष्मनाद; इनमें से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद नि:सृत हुए। समस्त वाड्मय ओंकार (ओ३म्)- से ही निर्मित हुआ। 'ओंकारं बिंदुसंयुक्तम्' तो ईश्वररूप ही है।

श्रीमद् भगवद्गीता में भी ऐसा ही उल्लेख है- मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

श्रीमद्भागवत में तो स्पष्ट कहा गया है- वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय:। वेदो नारायण: साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥ अर्थात वेद भगवान ने जिन कार्यों को करने की आज्ञा दी है वह धर्म है और उससे विपरीत करना अधर्म है। वेद नारायण रूप में स्वयं प्रकट हुआ है, ऐसा श्रुति में कहा गया है।

श्रीमद्भागवत में ऐसा भी वर्णित है- विप्रा गावश्च वेदाश्च तप: सत्यं दम: शम:। श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनू:॥ अर्थात वेदज्ञ (सदाचारी भी) ब्राह्मण, दुधारू गाय, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहनशीलता और यज्ञ- ये श्रीहरि (परमेश्वर) के स्वरूप हैं।

मनुस्मृति वेद को धर्म का मूल बताते हुए कहती है- वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ अर्थात समग्र वेद एवं वेदज्ञ मनु, पराशर, याज्ञवल्क्य आदि- की स्मृति, शील, आचार, साधु (धार्मिक)- के आत्मा का संतोष-ये सभी धर्मों के मूल हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी कहा गया है- श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:। स्म्यक्संकल्पज: कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥ अर्थात श्रुति, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा की प्रीति और उत्तम संकल्प से हुआ (धर्माविरुद्ध) काम- ये पाँच धर्म के मूल हैं। इसीलिये भारतीय संस्कृति में वेद सर्वश्रेष्ठ स्थान पर है। वेद का प्रामाण्य त्रिकालाबाधित है।

वेद पाठ

दर्शनशास्त्र के अनुसार

भारतीय आस्तिक दर्शनशास्त्र के मत में शब्द के नित्य होने से उसका अर्थ के साथ स्वयम्भू-जैसा सम्बन्ध होता है। वेद में शब्द को नित्य समझने पर वेद को अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) माना गया है। निरूक्तकार भी इसका प्रतिपादन करते हैं। आस्तिक दर्शन ने शब्द को सर्वश्रेष्ठ प्रमाण मान्य किया है। इस विषय में मीमांसा- दर्शन तथा न्याय-दर्शन के मत भिन्न-भिन्न हैं। जैमिनीय मीमांसक, कुमारिल आदि मीमांसक, आधुनिक मीमांसक तथा सांख्यवादियों के मत में वेद अपौरुषेय, नित्य एवं स्वत:प्रमाण हैं। मीमांसक वेद को स्वयम्भू मानते हैं। उनका कहना है कि वेद की निर्मिति का प्रयत्न किसी व्यक्ति-विशेष का अथवा ईश्वर का नहीं है। नैयायिक ऐसा समझते हैं कि वेद तो ईश्वरप्रोक्त है। मीमांसक कहते हैं कि भ्रम, प्रमाद, दुराग्रह इत्यादि दोषयुक्त होने के कारण मनुष्य के द्वारा वेद-जैसे निर्दोष महान् ग्रन्थरत्न की रचना शक्य ही नहीं है। अत: वेद अपौरुषेय ही है। इससे आगे जाकर नैयायिक ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि ईश्वर ने जैसे सृष्टि की, वैसे ही वेद का निर्माण किया; ऐसा मानना उचित ही है।

श्रुति के मतानुसार वेद तो महाभूतों का नि:श्वास (यस्य नि:श्वतिसं वेदा...) है। श्वास-प्रश्वास स्वत: आविर्भूत होते हैं, अत: उनके लिये मनुष्य के प्रयत्न की अथवा बुद्धि की अपेक्षा नहीं होती। उस महाभूत का नि:श्वासरूप वेद तो अदृष्टवशात अबुद्धिपूर्वक स्वयं आविर्भूत होता है।

वेद नित्य-शब्द की संहृति होने से नित्य है और किसी भी प्रकार से उत्पाद्य नहीं है; अत: स्वत: आविर्भूत वेद किसी भी पुरुष से रचा हुआ न होने के कारण अपौरुषेय (ईश्वरप्रणीत) सिद्ध होता है। इन सभी विचारों को दर्शन शास्त्र में अपौरुषेयवाद कहा गया है।

अवैदिक दर्शन को नास्तिक दर्शन भी कहते हैं, क्योंकि वह वेद को प्रमाण नहीं मानता, अपौरुषेय स्वीकार नहीं करता। उसका कहना है कि इहलोक (जगत) ही आत्मा का क्रीडास्थल है, परलोक (स्वर्ग) नाम की कोई वस्तु नहीं है, 'काम एवैक: पुरुषार्थ:'- काम ही मानव-जीवन का एकमात्र पुरुषार्थ होता है, 'मरणमेवापवर्ग:'- मरण (मृत्यु) माने ही मोक्ष (मुक्ति) है, 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'- जो प्रत्यक्ष है वही प्रमाण है (अनुमान प्रमाण नहीं है)। धर्म ही नहीं है, अत: अधर्म नहीं है; स्वर्ग-नरक नहीं हैं। 'न परमेश्वरोऽपि कश्चित्'- परमेश्वर -जैसा भी कोई नहीं है, 'न धर्म: न मोक्ष:'- न तो धर्म है न मोक्ष है। अत: जब तक शरीर में प्राण है, तब तक सुख प्राप्त करते हैं- इस विषय में नास्तिक चार्वाक-दर्शन स्पष्ट कहता है-

यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत:॥

चार्वाक-दर्शन शब्द में 'चर्व' का अर्थ है-खाना। इस 'चर्व' पद से ही 'खाने-पीने और मौज' करने का संदेश देने वाले इस दर्शन का नाम 'चार्वाक-दर्शन' पड़ा है। 'गुणरत्न' ने इसकी व्याख्या इस प्रकार से की है- परमेश्वर, वेद, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, आत्मा, मुक्ति इत्यादि का जिसने 'चर्वण' (नामशेष) कर दिया है, वह 'चार्वाक-दर्शन' है। इस मत के लोगों का लक्ष्य स्वमतस्थापन की अपेक्षा परमतखण्डन के प्रति अधिक रहने से उनको 'वैतंडिक' कहा गया है। वे लोग वेदप्रामाण्य मानते ही नहीं।

जगत, जीव, ईश्वर और मोक्ष- ये ही चार प्रमुख प्रतिपाद्य विषय सभी दर्शनों के होते हैं।

आचार्य श्री हरिभद्र ने 'षड्दर्शन-समुच्चय' नाम का अपने ग्रन्थ में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त- इन छः को वैदिक दर्शन (आस्तिक-दर्शन) तथा चार्वाक, बौद्ध और जैन-इन तीन को 'अवैदिक दर्शन' (नास्तिक-दर्शन) कहा है और उन सब पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है। वेद को प्रमाण मानने वाले आस्तिक और न मानने वाले नास्तिक हैं, इस दृष्टि से उपर्युक्त न्याय-वैशेषिकादि षड्दर्शन को आस्तिक और चार्वाकादि दर्शन को नास्तिक कहा गया है।

अथर्ववेद का आवरण पृष्ठ

दर्शनशास्त्र का मूल मन्त्र

दर्शनशास्त्र का मूल मन्त्र है- 'आत्मानं विद्धि।' अर्थात आत्मा को जानो। पिण्ड-ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत हुआ एकमेव आत्म-तत्त्व का दर्शन (साक्षात्कार) कर लेना ही मानव जीवन का अन्तिम साध्य है, ऐसा वेद कहता है। इसके लिये तीन उपाय हैं- वेदमन्त्रों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन- श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः। मत्या तु सततं ध्येय एते दर्शनहेतवे॥ इसीलिये तो मनीषी लोग कहते हैं- 'यस्तं वेद स वेदवित्।' अर्थात ऐसे आत्मतत्त्व को जो सदाचारी व्यक्ति जानता है, वह वेदज्ञ (वेद को जानने वाला) है।

वेद के प्रकार

ऋग्वेद :वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का निर्माण हुआ । यह पद्यात्मक है । यजुर्वेद गद्यमय है और सामवेद गीतात्मक है। ऋग्वेद में मण्डल 10 हैं,1028 सूक्त हैं और 11 हज़ार मन्त्र हैं । इसमें 5 शाखायें हैं - शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन, मंडूकायन । ऋग्वेद के दशम मण्डल में औषधि सूक्त हैं। इसके प्रणेता अर्थशास्त्र ऋषि है। इसमें औषधियों की संख्या 125 के लगभग निर्दिष्ट की गई है जो कि 107 स्थानों पर पायी जाती है। औषधि में सोम का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में च्यवनऋषि को पुनः युवा करने का कथानक भी उद्धृत है और औषधियों से रोगों का नाश करना भी समाविष्ट है । इसमें जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सौर चिकित्सा, मानस चिकित्सा एवं हवन द्वारा चिकित्सा का समावेश है।

सामवेद : चार वेदों में सामवेद का नाम तीसरे क्रम में आता है। पर ऋग्वेद के एक मन्त्र में ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आने से कुछ विद्वान वेदों को एक के बाद एक रचना न मानकर प्रत्येक का स्वतंत्र रचना मानते हैं। सामवेद में गेय छंदों की अधिकता है जिनका गान यज्ञों के समय होता था। 1875 मन्त्रों कें इस वेद में 75 मन्त्रों को छोड़कर शेष सब मन्त्र ऋग्वेद से ही संकलित हैं। इस वेद को संगीत शास्त्र का मूल माना जाता है। इसमें सविता, अग्नि और इन्द्र देवताओं का प्राधान्य है। इसमें यज्ञ में गाने के लिये संगीतमय मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः गन्धर्व लोगों के लिये होता है । इसमें मुख्य 3 शाखायें हैं, 75 ऋचायें हैं और विशेषकर संगीतशास्त्र का समावेश किया गया है ।

यजुर्वेद : इसमें यज्ञ की असल प्रक्रिया के लिये गद्य मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः क्षत्रियो के लिये होता है । यजुर्वेद के दो भाग हैं -

कृष्ण : वैशम्पायन ऋषि का सम्बन्ध कृष्ण से है । कृष्ण की चार शाखायें है।

शुक्ल : याज्ञवल्क्य ऋषि का सम्बन्ध शुक्ल से है । शुक्ल की दो शाखायें हैं । इसमें 40 अध्याय हैं । यजुर्वेद के एक मन्त्र में 'ब्रीहिधान्यों' का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अलावा, दिव्य वैद्य एवं कृषि विज्ञान का भी विषय समाहित है ।

अथर्ववेद : इसमें जादू, चमत्कार, आरोग्य, यज्ञ के लिये मन्त्र हैं, यह वेद मुख्यतः व्यापारियों के लिये होता है । इसमें 20 काण्ड हैं । अथर्ववेद में आठ खण्ड आते हैं जिनमें भेषज वेद एवं धातु वेद ये दो नाम स्पष्ट प्राप्त हैं।

वेद मानव जीवन की अमुल्य धरोहर है, सम्पूर्ण मानव जाती के लिए इसमें परम आवश्यक सभी विषयों का संग्रह वेदों में किया गया है, वेदों के विषय में पूर्ण सत्य लोग नहीं जानने के कारण लोग बहुत प्रकार के झुठ पाखंड और आडम्बर पूर्ण जीवन जीवन जीने के लिए विवश है। ऐसा नहीं है कि वेदों पर काम नहीं हुआ है लेकिन वह अभी भी पर्याप्त नहीं है उस कमी को पुरा करने के लिये मेरा यह एक भागिरथ प्रयास है। क्योंकि यह वेद जब तक भारत में लोगों के जनमानस में अत्यधिक प्रचलित था तभी तक यह भारत सम्पूर्ण विश्व का धर्म गुरु था , जबसे भारतियों ने वेदों का त्याग किया है तभी से भारत पतन के गर्त में निरन्तर गिरता ही जा रहा है। इसको पतन की गर्त से बचाने के लिये ही महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अथक प्रयाश कर के वेदों की तरफ लौटो इसका नारा दिया जिसका परिणाम यह हुआ की हमारा भारत हजारों सालों की गुलामी की भयंकर जंजीरों से मुक्त हुआ, हमारे विर जवानों ने अपने जीवन की बली देकर विदेशी आक्रान्ताओं से भारत भुमी को स्वतन्त्रता दिलाने में सफलता प्राप्त की, लेकिन महर्षि स्वामी दयान्नद का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ आज भी हमारा भारत देश अपने कुछ देश के गद्दारों के हाथों का कटपुतली बन कर रह गया है देश में हर तरफ से अज्ञान पाखंड का प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है अपने चरम पर पहुंच चुका है। हर तरफ से भयानक विभत्स चित्कार निकल रहीं है कहीं गरीबी के नाम पर तो कहीं अमिरी के नाम पर कही रंग भेद के नाम कहीं धर्म के नाम हर तरफ से सम्पूर्ण भारत की निव चरमारा रही कब पूर्ण रूप से तबाह हो जायें यह कहना निश्चित नहीं है। यह सब देखते हुये अब वह समय आगया है की लोगों के समक्ष वेदों के वास्तविक स्वरूप को सामने लाया जाये और, लोगों को के जीवन से पाखंड, अन्याय, असत्य, झुठ को दूर करने का प्रयास किया जाये। मैं जानता हुं कि हमारा यह प्रयास इस विशाल अंधकार और अज्ञान के महासागर में उसी प्रकार से है जैसै आमावस्या की रात में सूर्य की अनुपस्थिती में दिपक से काम लिया जाये। दिपक प्रकाश ही देता है हां यह सत्य है कि उसकी मात्रा कम है लेकिन गुण वहीं प्रकाश का ही है।

वेद क्या हैं ? इनके रचयिता कौन हैं ? वेदों को पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? हम क्यों मानें कि वेदों का रचयिता ईश्वर ही है ?

मनुष्य के अल्पज्ञ (थोड़ा जानने वाला) होने के कारण किसी विषय पर उसके विचारों को अन्तिम नहीं माना जा सकता इसलिए किसी विषय को प्रतिपादित करने के लिए अगर किसी के विचारों को अन्तिम माना जा सकता है तो वह केवल सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) ही हो सकता है। वेदों में निहित ज्ञान किन्हीं व्यक्तियों के विचार नहीं बल्कि ईश्वरीय ज्ञान है। इस बात को निम्नलिखित तर्कों से सिद्ध किया जा सकता है।

1. अगर हम किसी टैक्निकल चीज़ को खरीदते हैं तो निर्माता की तरफ से हमें एक निर्देशित पुस्तिका दी जाती है जिसमें उस चीज़ के प्रयोग आदि की विधि लिखी होती है। अगर कम्पयूटर जैसी साधारण वस्तु के खरीददार को निर्माता द्वारा उसके उचित प्रयोग के लिए आवश्यक ज्ञान (दिशा - निर्देश) न देना असामान्य है तो यह आवश्यक है कि सृष्टि जैसी उत्कृष्ट कृति के निर्माता (ईश्वर) द्वारा सृष्टि के उचित उपयोग के लिए, सृष्टि के आरम्भ (जब से मानव का इस सृष्टि में आगमन हुआ क्योकि वेद ज्ञान का लाभ प्राणी को मानव योनि में ही हो सकता है।) में आवश्यक ज्ञान (दिशा-निर्देश) दिया गया।यह ज्ञान ईश्वर ने कुछ ऋषियों की आत्माओं में प्रकाशित किया। यह ज्ञान ही वेद है। (वेद का शाब्दिक अर्थ भी ज्ञान ही है। यह ज्ञान आज वेद नाम की पुस्तकों में संजो लिया गया है

2. मनुष्य अल्पज्ञ है इसलिए उसके द्वारा निर्मित वस्तुओं में समय के साथ-साथ सुधार होता रहता है। व्यक्ति द्वारा निर्मित किसी भी वस्तु को उसकी अन्तिम अवस्था नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ हम मनुष्य द्वारा निर्मित कम्प्युटर, मोबाईल आदि को देख सकते हैं। पिछले 10-15 वर्षों में ये दोनों लगातार परिष्कृत होकर भिन्न- भिन्न अवस्थाओं से गुज़रे हैं। इसके विपरीत ईश्वर (क्योंकि वह सर्वज्ञ है) द्वारा निर्मित प्रत्येक वस्तु पूर्णता को प्राप्त किए हुए होती है (उनमें सुधार की कोई गुंजाइश नहीं होती) उदाहरणार्थ हम अपने शरीर को ही देखें। इसकी रचना में हम किसी भी तरह की अपूर्णता अथवा त्रुटि नहीं ढूंढ सकते। वेद में कही किसी भी बात को आज तक अन्यथा सिद्ध नहीं किया जा सका।

3. ज्ञान की परम्परा पुरानी है और यह दूसरों से प्राप्त होता है। हम अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुरु ने अपने गुरु से और उन्होंने भी अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त किया। पीछे चलते जाने पर अन्त में प्रश्न होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान किससे प्राप्त होता है। तब सभी शास्त्रों का एक ही उत्तर है (जो योग दर्शन के अनुसार है) कि वह परमात्मा ही गुरुओं का गुरु है। उसी ने सृष्टि के प्रारम्भ में प्राणी मात्र के कल्याण के लिए ज्ञान दिया है, जिससे व्यक्ति संसार को, अपने-आपको और परमात्मा को जान सके। संसार क्या है ? संसार में परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ कैसे बर्तना है ? मनुष्य के इन सबके प्रति कर्तव्य कर्म क्या हैं ? मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ ? मैं क्या लेकर आया था ? मुझे क्या लेकर जाना है ? मेरा संसार में आने का उद्देश्य क्या है ? यह संसार कहां से आ गया ? संसार के इस सृष्टा का स्वरूप क्या है ? इसकी उपासना क्यों करें ? कहाँ करें ? किसलिए करें ? आदि प्रश्नों के उत्तर वेदों में है।

4. वेद की शिक्षाएं किसी देश, काल, लिंग, जाति या जाति समूह विशेष के लिए ही उपयोगी नहीं है। इनकी उपयोगिता प्राणी मात्र के लिए सार्वकालिक व सार्वदेशिक है। यदि कोई शंका करे तो वह वेद-मन्त्रों के अभिप्राय को देखे और समझे, जिनमें आस्तिक्ता, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, विश्व मैत्री, परस्पर की सद्भावना, व्रत पालन जैसे भावों का संकलन है।

5. रचना में रचयिता के गुण कर्म, और स्वभाव प्रतिबिम्बित होते हैं। वेदों में पाई जाने वाली कोई भी बात ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विपरीत नहीं है।

किसी विषय के समर्थन व विरोध में वेद में कही बातें व वेदों के अनुरूप ऋषियों के वचन शब्द-प्रमाण माने जाते हैं।

वेद मन्त्रों के अर्थों को जानने, समझने व कार्यान्वित करने की महत्ता को बयान करना मुश्किल है। वेद मंत्रो के सही उच्चारण की भी विशेष सार्थकता है। परन्तु अर्थों को छोड़ वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण से हमें इस ज्ञान के सही तात्पर्य का पता नहीं चल सकता।

ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अन्धकार दूर होता है। अज्ञान ही दुखों का कारण है। जितना जितना हम ज्ञान को अर्जित करते जाते हैं उतना उतना हमारे दुखों में कमी आती जाती है। जिन परिस्थितियों के कारण हमें दुख होता है, ज्ञान उन परिस्थितियों में कमी नहीं लाता बल्कि हमारे अन्दर ऐसा प्रकाश भर देता है कि हमें हमारी इच्छा के विरुद्ध परिस्थितियों के रहने पर भी दुख की अनुभूति नहीं होती । ईश्वर प्रदत्त वेद सच्चे ज्ञान का एक मात्र स्रोत है। यदि हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारे पास वेदों को पढ़ने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

भुमिका

3 --वेद शब्द और उसका लक्षणात्मक स्वरूप

वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला तथा विश्व का प्राचीनतम् साहित्य है। वैदिक साहित्य को 'श्रुति' भी कहा जाता है, क्योंकि सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने विराटपुरुष भगवान् की वेदध्वनि को सुनकर ही प्राप्त किया है। अन्य ऋषियों ने भी इस साहित्य को श्रवण-परम्परा स ही ग्रहण किया था। वेद के असल मन्त्र भाग को संहिता कहते हैं। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऊपर लिखे सभी वेदों के कई उपनिषद, आरण्यक तथा उपवेद आदि भी आते जिनका विवरण नीचे दिया गया है। इनकी भाषा संस्कृत है जिसे अपनी अलग पहचान के अनुसार वैदिक संस्कृत कहा जाता है - इन संस्कृत शब्दों के प्रयोग और अर्थ कालान्तर में बदल गए या लुप्त हो गए माने जाते हैं। ऐतिहासिक रूप से प्राचीन भारत और हिन्द-आर्य जाति के बारे में इनको एक अच्छा सन्दर्भ माना जाता है। संस्कृत भाषा के प्राचीन रूप को लेकर भी इनका साहित्यिक महत्व बना हुआ है।

रचना के अनुसार प्रत्येक शाखा की वैदिक शब्द-राशि का वर्गीकरण- चार भाग होते हैं। पहले भाग (संहिता) के अलावा हरेक में टीका अथवा भाष्य के तीन स्तर होते हैं। कुल मिलाकर ये हैं।

संहिता (मन्त्र भाग)

उपनिषद (परमेश्वर, परमात्मा-ब्रह्म और आत्मा के स्वभाव और सम्बन्ध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन)

ब्राह्मण-ग्रन्थ (गद्य में कर्मकाण्ड की विवेचना)

आरण्यक (कर्मकाण्ड के पीछे के उद्देश्य की विवेचना)

जब हम चार वेदों का बात करते हैं तो उससे संहिता भाग का ही अर्थ लिया जाता है। उपनिषद (ऋषियों की विवेचना), ब्राह्मण (अर्थ) आदि मंत्र भाग (संहिता) के .हायक ग्रंथ समझे जाते हैं। वेद ४ हैं - ऋक, साम, यजुः और अथर्व।

वैदिक साहित्य का काल

इस विषय के विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि वेदों की रचना कब हुई और उनमें किस काल की सभ्यता का वर्णन मिलता है। भारतीय वेदों को अपौरुषेय (किसी पुरुष द्वारा न बनाया हुआ) मानते हैं अतः नित्य होने से उनके काल-निर्धारण का प्रश्न ही नहीं उठता। श्री अविनाशचन्द्र दास तथा पावगी ने ऋग्वेद में वर्णित भूगर्भ-विषयक साक्षी द्वारा ऋग्वेद को कई लाख वर्ष पूर्व का ठहराया है।

(1) संहिता, (2) ब्राह्मण और आरण्यक, (3) उपनिषद् (4) वेदांग (5) सूत्र-साहित्य

संहिता

संहिता का अर्थ है संग्रह। संहिताओं में विभिन्न देवताओं के स्तुतिपरक मंत्रों का संकलन है। संहिताएँ चार हैं-(1) ऋक् (2) यजुष्, (3) साम और (4) अथर्व प्राचीन परम्परा के अनुसार वेद नित्य और अपौरुषेय हैं। उनकी कभी मनुष्य द्वारा रचना नहीं हुई। सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने इनका प्रकाश अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा नामक ऋषियों को दिया। प्रत्येक वैदिक मन्त्र का देवता और ऋषि होता है। मन्त्र में जिसकी स्तुति की जाय वह उस मन्त्र का देवता है और जिसने मन्त्र के अर्थ का सर्वप्रथम प्रदर्शन किया हो वह उसका ऋषि है। पाश्चात्य विद्वान ऋषियों को ही वेद-मन्त्रों का रचयिता मानते हैं। वैदिक साहित्य को श्रुति भी कहा जाता है, क्योंकि पुराने ऋषियों ने इस साहित्य को श्रवण-परम्परा से ग्रहण किया था। बाद में इस ज्ञान को स्मरण करके जो ग्रन्थ लिखे गए, वे स्मृति कहलाए। श्रुति के शीर्ष स्थान पर उपर्युक्त चार संहिताएँ हैं।

ऋग्वेद में 10,600 मन्त्र और 1,028 सूक्त हैं, ये दस मण्डलों में विभक्त हैं। सूक्तों में देवताओं की स्तुतियाँ हैं। ये बड़ी भव्य, उदात्त और काव्यमयी हैं। इनमें कल्पना की नवीनता, वर्णन की प्रौढ़ता और प्रतिभा की ऊँची उड़ान मिलती है। 'उषा' आदि कई देवताओं के वर्णन बड़े हृदयग्राही हैं। पाश्चात्य विद्वान ऋग्वेद की संहिता को सबसे प्राचीन मानते हैं। उनका विचार है कि इसके अधिकांश सूक्तों की रचना पंजाब में हुई। उस समय आर्य अफगानिस्तान से गंगा-यमुना तक के प्रदेशों में फैले हुए थे। उनके मत में ऋग्वेद में कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल), सिन्धु, गंगा, यमुना सरस्वती तथा पंजाब की पाँच नदियों शतुद्रि (सतलुज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी), असिवनी (चनाब) और वितस्ता (झेलम) का उल्लेख है। इन नदियों से सिंचित प्रदेश भारत में आर्य-सभ्यता का जन्म-स्थान माना जाता है।

यजुर्वेद

इसमें यज्ञ-विषयक मन्त्रों का संग्रह है। इनका प्रयोग यज्ञ के समय अध्वर्यु नामक पुरोहित किया करता था। यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। तथा १९७५ मन्त्र निहित है। पाश्चात्य विद्वान इसे ऋग्वेद से काफी समय बाद का मानते हैं। ऋग्वेद में आर्यों का कार्य-क्षेत्र पंजाब है, इसमें कुरु-पांचाल। कुरु सतलुज यमुना का मध्यवर्ती भू-भाग (वर्तमान अम्बाला डिवीज़न) है और पांचाल गंगा-यमुना का दोआब था। इसी समय से गंगा-यमुना का प्रदेश आर्य-सभ्यता का केन्द्र हो गया। ऋग्वेद का धर्म उपासना-प्रधान था, किन्तु यजुर्वेद के दो भेद हैं-कृष्ण यजुष् और शुक्ल यजुष्। दोनों के स्वरूप में बड़ा अन्तर है, पहले में केवल मन्त्रों का संग्रह है और दूसरे में छन्दोबद्ध मन्त्रों के साथ गद्यात्मक भाग सभी है।

सामवेद

इसमें गेय मन्त्रों का संग्रह है। यज्ञ के अवसर पर जिस देवता के लिए होम किया जाता था, उसे बुलाने के लिए उद्गाता उचित स्वर में उस देवता का स्तुति-मन्त्र गाता था। इस गायन को 'साम' कहते थे। प्रायः ऋचाएँ ही गाई जाती थीं। अतः समस्त सामवेद में ऋचाएँ ही हैं। इनकी संख्या 1,875 है। इनमें से केवल 75 ही नई हैं, बाकी सब ऋग्वेद से ली गईं हैं। भारतीय संगीत का मूल सामवेद में उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद

इसका यज्ञों से बहुत कम सम्बन्ध है। इसमें आयुर्वेद सम्बन्धी सामग्री अधिक है। इसका प्रतिपाद्य विषय विभिन्न प्रकार की ओषधियाँ, ज्वर, पीलिया, सर्पदंश, विष-प्रभाव को दूर करने के मन्त्र सूर्य की स्वास्थ्य-शक्ति, रोगोत्पादक कीटाणुओं के शमन अदि का वर्णन है , इस वेद में यज्ञ करने के लाभ को तथा यज्ञ से पर्यावरण की रक्षा का भी वर्णन है। वे इसमें आर्य और अनार्य धार्मिक विचारों का सम्मिश्रण देखते हैं, किन्तु वस्तुतः इसमें राजनीति तथा समाज-शास्त्र के अनेक ऊँचे सिद्धान्त हैं। इसमें 20 काण्ड, 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक, 731 सूक्त तथा 5,839 मन्त्र हैं, इनमें 1200 के लगभग मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। ऊपर कहे गए चारौं संहिताएं पहले एक ही जगह थे वेदव्यासने यज्ञसिद्धिके लिए चार भागमे विभाजन किया था।

वेदों की शाखाएँ

प्राचीन काल में वेदों की रक्षा गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा होती थी। इनका लिखित एवं निश्चित स्वरूप न होने से वेदों के स्वरूप में कुछ भेद आने लगा और इनकी शाखाओं का विकास हुआ। ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ थीं - शैशिरीयशाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय। इनमें अब पहली शाखा ही उपलब्ध होती है। यह शाखा आदित्य सम्प्रदायका है। शुक्ल यजुर्वेद की दो प्रधान शाखाएँ हैं - माध्यंदिन और काण्व। पहली उत्तरी भारत में मिलती है और दूसरी महाराष्ट्र में। इनमें अधिक भेद नहीं है। कृष्ण यजुर्वेद की आजकल चार शाखाएँ मिलती हैं - तैत्तिरीय मैत्रायणी, काटक, कठ तथा कापिष्ठल संहिता। इनमें दूसरी-तीसरी पहली से मिलती हैं, क्रम में थोड़ा ही अन्तर है। चौथी शाखा आधी ही मिली है। यह वेद ब्रह्मसम्प्रदायका है। सामवेद की दो शाखाएँ थीं - कौथुम और राणायनीय। इसमें कौथुम का केवल सातवाँ प्रपाठक मिलता है। यह शाखा भी आदित्य सम्प्रदायका है। अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं-पैप्पलाद और शौनक। वर्तमान समयमे शौनक शाखा ही पूर्णरुपमे प्राप्त होता है यह शाखा आदित्यसम्प्रदायका है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

यद्यपि प्राचीन परम्परामें मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम् के अनुसार ब्राह्मण वेदका ही एकभाग है। तथापि संहिताओं के बाद ब्राह्मण-ग्रन्थों का निर्माण हुआ माना जाता है। इनमें यज्ञों के कर्मकाण्ड का विस्तृत वर्णन है, साथ ही शब्दों की व्युत्पत्तियाँ तथा प्राचीन राजाओं और ऋषियों की कथाएँ तथा सृष्टि-सम्बन्धी विचार हैं। प्रत्येक वेद के अपने ब्राह्मण हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं - (1) ऐतरेय और (2) कौषीतकी। ऐतरेय में 40 अध्याय और आठ पंचिकाएँ हैं, इसमें अग्निष्टोम, गवामयन, द्वादशाह आदि सोमयागों, अग्निहोत्र तथा राज्यभिषेक का विस्तृत ऐतरेय ब्राह्मण-जैसा ही है। इनसे तत्कालीन इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। ऐतरेय में शुनःशेप की प्रसिद्ध कथा है। कौषीतकी से प्रतीत होता है कि उत्तर

भारत में भाषा के सम्यक् अध्ययन पर बहुत बल दिया जाता था। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण शतपथ के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इसमें सौ अध्याय हैं। ऋग्वेद के बाद प्राचीन इतिहास की सबसे अधिक जानकारी इसी से मिलती है। इसमें यज्ञों के विस्तृत वर्णन के साथ अनेक प्राचीन आख्यानों, व्युत्पत्तियों तथा सामाजिक बातों का वर्णन है। इसके समय में कुरु-पांचाल आर्य संस्कृति का केन्द्र था, इसमें पुरूरवा और उर्वशी की प्रणय-गाथा, च्यवन ऋषि तथा महा प्रलय का आख्यान, जनमेजय, शकुन्तला और भरत का उल्लेख है। सामवेद के अनेक ब्राह्मणों में से पंचविंश या ताण्ड्य ही महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद का ब्राह्मण गोपथ के नाम से प्रसिद्ध है।

आरण्यक

ब्राह्मणों के अन्त में कुछ ऐसे अध्याय भी मिलते हैं जो गाँवों या नगरों में नहीं पढ़ जाते थे। इनका अध्ययन-अध्यापन गाँवों से दूर अरण्यों (वनों) में होता था, अतः इन्हें आरण्यक कहते हैं। गृहस्थाश्रम में यज्ञविधि का निर्देश करने के लिए ब्राह्मण-ग्रन्थ उपयोगी थे और उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम में वनवासी आर्य यज्ञ के रहस्यों और दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन करने वाले आरण्यकों का अध्ययन करते थे। उपनिषदों का इन्हीं आरण्यकों से विकास हुआ।

उपनिषद्

उपनिषदों में मानव-जीवन और विश्व के गूढ़तम प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। ये भारतीय अध्यात्म-शास्त्र के देदीप्यमान रत्न हैं। इनका मुख्य विषय ब्रह्म-विद्या का प्रतिपादन है। वैदिक साहित्य में इनका स्थान सबसे अन्त में होने से ये 'वेदान्त' भी कहलाते हैं। इनमें जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन द्वारा ऊँची-से-ऊँची दार्शनिक उड़ाने ली गई है। भारतीय ऋषियों ने गम्भीरतम चिन्तन से जिन आध्यात्मिक तत्त्वों का साक्षात्कार किया, उपनिषद उनका अमूल्य कोष हैं। इनमें अनेक शतकों की तत्त्व-चिन्ता का परिणाम है। मुक्तिकोपनिषद् चारों वेदों से सम्बद्ध 108 उपनिषद् गिनाये गए हैं, किन्तु 11 उपनिषद् ही अधिक प्रसिद्ध हैं-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर इनमें छान्दोग्य और बृहदारण्यक अधिक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। वैदिक साहित्यका यह सिद्धान्त देखा जाता है प्रत्येक मन्त्रभागमे एक और ब्राह्मणभागमे एक उपनिषद उपदिष्ट थे। अब प्राय लुप्त होगए| अब भी यह सिद्धान्त शुक्ल यजुर्वेदमे बचा है- ईशावास्योनिषद मन्त्रोपनिषद है और बृहदारण्यकोपनिषद ब्राह्मणोपनिषद है।

सूत्र-साहित्य

वैदिक साहित्य के विशाल एवं जटिल होने पर कर्मकाण्ड से सम्बद्ध सिद्धान्तों को एक नवीन रूप दिया गया। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ-प्रतिपादन करने वाले छोटे-छोटे वाक्यों में सब महत्त्वपूर्ण विधि-विधान प्रकट किये जाने लगे। इन सारगर्भित वाक्यों को सूत्र कहा जाता था। कर्मकाण्ड-सम्बन्धी सूत्र-साहित्य को चार भागों में बाँटा गया-

(1) श्रौत सूत्र (2) गृह्य सूत्र (3) धर्म सूत्र और (4) शुल्ब सूत्र

पहले में वैदिक यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड का वर्णन है। दूसरे में गृहस्थ के दैनिक यज्ञों का, तीसरे में सामाजिक नियमों का और चौथे में यज्ञ-वेदियों के निर्माण का।

श्रौत सूत्र

श्रौत का अर्थ है श्रुति (वेद) से सम्बद्ध यज्ञ याग। अतः श्रौत सूत्रों में तीन प्रकार की अग्नियों के आधान अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्यादि साधारण यज्ञों तथा अग्निष्टोम आदि सोमयागों का वर्णन है। ये भारत की प्राचीन यज्ञ-पद्धति पर बहुत प्रकाश डालते हैं। ऋग्वेद के दो श्रौत सूत्र हैं-शांखायन और आश्वलायन। शुक्ल यजुर्वेद का एक-कात्यायनः कृष्ण यजुर्वेद के छः सूत्र हैं-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, भारद्वाज, मानव, वैखानस। सामवेद के लाट्यायन, द्राह्मायण और आर्षेय नामक तीन सूत्र हैं। अथर्ववेद का एक ही वैतान सूत्र है।

गृह्य सूत्र

इनमें उन विचारों तथा जन्म से मरणपर्यन्त किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन है, जिनका अनुष्ठान प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के लिए आवश्यक समझा जाता था। उपनयन और विवाह-संस्कार का विस्तार से वर्णन है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय समाज के घरेलू आचार-विचार का तथा विभिन्न प्रान्तों के रीति-रिवाज का परिचय पूर्ण रूप से हो जाता है। ऋग्वेद के गृह्य सूत्र शांखायन और आश्वलायन हैं। शुक्ल यजुर्वेद का पारस्कर, कृष्ण यजुर्वेद के आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, मानव, काठक और वैखानस, सामवेद के गोभिल तथा खादिर और अथर्ववेद का कौशिक। इनमें गोभिलको प्राचीनतम माना जाता है।

धर्मसूत्र

धर्मसूत्रों में समाजिक जीवन के नियमों का विस्तार से प्रतिपादन है। वर्णाश्रम-धर्म की विवेचना करते हुए ब्रह्मचारी, गृहस्थ व राजा के कर्त्तव्यों, विवाह के भेदों, दाय की व्यवस्था, निषिद्ध भोजन, शुद्धि, प्रायश्चित्त आदि का विशेष वर्णन है। इन्हीं धर्मसूत्रों से आगे चलकर स्मृतियों की उत्पत्ति हुई, जिनकी व्यवस्थाएँ हिन्दू-समाज में आज तक माननीय समझी जाती हैं। वेद से सम्बद्ध केवल तीन धर्मसूत्र ही अब तक उपलब्ध हो सके हैं-आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी व बौधायन। ये कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध हैं। शुक्लयजुर्वेदका शंखलिखित धर्मसूत्र होनेकी बात सुना है। अन्य धर्मसूत्रों में सामवेदसे सम्बद्ध गौतमधर्मसूत्र और ऋग्वेदसे सम्बद्ध वसिष्ठधर्मसूत्र उल्लेखनीय हैं।

शुल्ब सूत्र

इनका सम्बन्ध श्रौतसूत्रों से है। शुल्ब का अर्थ है मापने का डोरा। अपने नाम के अनुसार शुल्ब सूत्रों में यज्ञ-वेदियों को नापना, उनके लिए स्थान का चुनना तथा उनके निर्माण आदि विषयों का विस्तृत वर्णन है। ये भारतीय ज्यामिति के प्राचीनतम स्रोतग्रन्थ हैं।

वेदांग

काफी समय बीतने के बाद वैदिक साहित्य जटिल एवं कठिन प्रतीत होने लगा। उस समय वेद के अर्थ तथा विषयों का स्पष्टीकरण करने के लिए अनेक सूत्र-ग्रन्थ लिखे जाने लगे। इसलिए इन्हें वेदांग कहा गया।

वेदांग छः हैं-

शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष

पहले चार वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और अर्थ समझने के लिए तथा अन्तिम दो धार्मिक कर्मकाण्ड और यज्ञों का समय जानने के लिए आवश्यक हैं। व्याकरण को वेद का मुख कहा जाता है, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को श्रोत्र, कल्प को हाथ, शिक्षा को नासिका तथा छन्द को दोनों पैर।

शिक्षा

उन ग्रन्थों को शिक्षा कहते हैं, जिनकी सहायता से वेद-मन्त्रों के उच्चारण का शुद्ध ज्ञान होता था। वेद-पाठ में स्वरों का विशेष महत्त्व था। इनकी शिक्षा के लिए पृथक् वेदांग बनाया गया। इसमें वर्णों के उच्चारण के अनेक नियम दिये गए हैं। संसार में उच्चारण-शास्त्र की वैज्ञानिक विवेचना करने वाले पहले ग्रन्थ यही हैं। ये वेदों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखते हैं और प्रातिशाख्य कहलाते हैं। ऋग्वेद अथर्ववेद, वाजसेनीय व तैत्तिरीय संहिता के प्रातिशाख्य मिलते हैं। बाद में इसके आधार पर शिक्षा-ग्रन्थ लिखे गए। इनमें शुक्ल यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य-शिक्षा, सामवेद की नारद शिक्षा और पाणिनि की पाणिनीय शिक्षा मुख्य हैं

छन्द

वैदिक मन्त्र छन्दोवद्ध हैं। छन्दों का ठीक ज्ञान बिना प्राप्त किये, वेद- मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। अतः छन्दों की विस्तृत विवेचना आवश्यक समझी गई। शौनक मुनि के ऋक्प्रातिशाख्य में, शांखायन श्रौतसूत्र में तथा सामवेद से सम्बद्ध निदान सूत्र में इस शास्त्र का व्यवस्थित वर्णन है। किन्तु इस वेदांग का एकमात्र स्वतन्त्र ग्रन्थ पिंगलाचार्य-प्रणीत छन्द सूत्र है। इसमें वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का वर्णन है।

व्याकरण

इस अंग का उद्देश्य सन्धि, शब्द-रूप, धातु-रूप तथा इनकी निर्माण-पद्धति का ज्ञान कराना था। इस समय व्याकरण का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ पाणिनी का अष्टाध्यायी है; किन्तु व्याकरण का विचार ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय से शुरू हो गया था। पाणिनी से पहले गार्ग्य, स्फोटायन, भारद्वाज आदि व्याकरण के अनेक महान आचार्य हो चुके थे। इन सबके ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके हैं।

निरुक्त

इसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाई जाती थी। प्राचीन काल में वेद के कठिन शब्दों की क्रमबद्ध तालिका और कोश निघंटु कहलाते थे और इनकी व्याख्या निरुक्त में होती थी। आजकल केवल यास्काचार्य का निरुक्त ही उपलब्ध होता है। इसका समय 800 ई. पू. के लगभग है।

ज्योतिष

वैदिक युग में यह धारणा थी कि वेदों का उद्देश्य यज्ञों का है। यज्ञ उचित काल और मुहूर्त में किये जाने से ही फलदायक होते हैं। अतः काल-ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान अत्यावश्यक माना गया। इस प्रकार ज्योतिषका ज्ञाताको यज्ञवेत्ता जाना गया। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र का विकास हुआ।

यह वेद का अंग समझा जाने लगा। इसका प्राचीनतम ग्रन्थ लगधमुनि-रचित वेदांग ज्योतिष पञ्चसंवत्सरमयं इत्यादि ४४ श्लोकात्मक है। नेपालमें इस ग्रन्थके आधार पर बना वैदिक तिथिपत्रम् व्यवहारमें लाया गया है।

कल्प सूत्र

श्रौत, गृह्य,धर्म एवं शुल्ब नामक चारौं प्रकारके सूत्रौंको ही कल्पसूत्र कहते हैं। इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

शाब्दिक विधा से विश्लेषण करने पर वेद शब्द की निष्पत्ति 'विद-ज्ञाने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर होती है।

विचारकों ने कहा है कि-जिसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ-चतुष्टय-सिद्धि के उपाय बतलाये जायँ, वह वेद है।

आचार्य सायण ने वेद के ज्ञानात्मक ऐश्वर्य को ध्यान में रखकर लक्षित किया कि- अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति और अनिष्ट-परिहार के अलौकिक उपायको जो ग्रन्थ बोधित करता है, वह वेद है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य सायण ने वेद के लक्षण में 'अलौकिकमुपायम्' यह विशेषण देकर वेदों की यज्ञमूलकता प्रकाशित की है।

आचार्य लौगाक्षि भास्कर ने दार्शनिक दृष्टि रखते हुए- अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है।

आचार्य उदयन ने भी कहा है कि- जिसका दूसरा मूल कहीं उपलब्ध नहीं है और महाजनों अर्थात् आस्तिक लोगों ने वेद के रूप में मान्यता दी हो, उन आनुपूर्वी विशिष्ट वाक्यों को वेद कहते हैं। आपस्तम्बादि सूत्रकारों ने वेद का स्वरूपावबोधक लक्षण करते हुए कहा है कि- वेद मन्त्र और ब्राह्मणात्मक हैं।

आचार्यचरण स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने दार्शनिक एवं याज्ञिक दोनों दृष्टियों का समन्वय करते हुए वेद का अद्‌भुत लक्षण इस प्रकार उपस्थापित किया है-' शब्दातिरिक्तं शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तं च यत्प्रमाणं तज्जन्यप्रमितिविषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिकसुखजनकोच्चारणकत्वे सति जन्यज्ञानाजन्यो यो प्रमाणशब्दस्तत्त्वं वेदत्वम्।

उपर्युक्त लक्षणों की विवेचना करने पर यह तथ्य सामने आता है कि- ऐहकामुष्मिक फलप्राप्ति के अलौकिक उपाय का निदर्शन करने वाला अपौरुषेय विशिष्टानुपूर्वीक मन्त्र-ब्राह्मणात्मक शब्दराशि वेद है।

वेद के भाग

वेद के दो भाग मन्त्र और ब्राह्मण-

आचार्यों ने सामान्यतया मन्त्र और ब्राह्मण-रूप से वेदों का विभाजन किया है।

इसमें मन्त्रात्मक वैदिक शब्दराशि का मुख्य संकलन संहिता के नाम से प्राचीन काल से व्यवहृत होता आया है।

संहितात्मक वैदिक शब्दराशि पर ही पदपाठ, क्रमपाठ एवं अन्य विकृतिपाठ होते हैं।

यज्ञों में संहितागत मन्त्रों का ही प्रधान रूप से प्रयोग होता है।

आचार्य यास्क के अनुसार 'मन्त्र' शब्द मननार्थक 'मन्' धातु से निष्पन्न है।

पाञ्चरात्र-संहिता के अनुसार मनन करने से जो त्राण करते हैं, वे मन्त्र हैं। अथवा मत- अभिमत पदार्थ के जो दाता हैं, वे मन्त्र कहलाते हैं।

महर्षि जैमिनि ने मन्त्र का लक्षण करते हुए कहा है- 'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या।'

इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य माधव का कथन है कि-याज्ञिक विद्वानों का 'यह वाक्य मन्त्र है'-ऐसा समाख्यान (- नाम निर्देश) मन्त्र का लक्षण है। तात्पर्य यह है कि याज्ञिक लोग जिसे मन्त्र कहें, वही मन्त्र है। वे याज्ञिक लोग अनुष्ठान के स्मारक आदि वाक्यों के लिये मन्त्र शब्द का प्रयोग करते हैं।

आचार्य लौगाक्षि भास्कर ने, अनुष्ठान (प्रयोग)- से सम्बद्ध (समवेत) द्रव्य-देवतादि (अर्थ) का जो स्मरण कराते हैं, उन्हें मन्त्र कहा है। इस प्रकार तत्तत् वैदिक कर्मों के अनुष्ठान काल में अनुष्ठेय क्रिया एवं उसके अंगभूत द्रव्य देवतादिका प्रकाशन (स्मरण) ही मन्त्र का प्रयोजन है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि शास्त्रकारों के अनुसार 'प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्व' मन्त्रों का दृष्ट प्रयोजन है, अत: यज्ञकाल में मन्त्रों का उच्चारण अदृष्ट प्रयोजक है- यह कल्पना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि दृष्ट फल की सम्भावना के विद्यमान रहने पर अदृष्ट फल की कल्पना अनुचित होती है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मन्त्रों का जो अर्थ-स्मरण-रूप दृष्ट प्रयोजन बतलाया गया है, वह प्रकारान्तर से अर्थात् ब्राह्मण-वाक्यों से भी प्राप्त हो जाता है; फिर तो मन्त्रोच्चारण व्यर्थ हुआ? इस आक्षेप का समाधान शास्त्रकारों ने नियम-विधि के आश्रयण से किया है। उनका पक्ष है कि 'स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत' इस विधायक वाक्य से तत्तत्कर्मों के अनुष्ठानकाल में विहित स्मरण के लिये उपायान्तर के अवलम्बन से तत्तत्प्रकरणपठित मन्त्रों का वैयर्थ्य आपतित होता, अत: 'मन्त्रैरेव स्मृत्वा कर्माणि कुर्वीत' (मन्त्रों से ही स्मरण करके कर्म करना चाहिये,)- यह नियम विधि द्वारा स्वीकृत किया जाता है।इसी प्रसंग को आचार्य यास्क ने अपने निरूक्त ग्रन्थ में उठाकर उसके समाधान में एक व्यावहारिक युक्ति प्रस्तुत की है। उनका तर्क है कि मनुष्यों की विद्या (ज्ञान) अनित्य है, अत: अविगुण कर्म के द्वारा फलसम्प्राप्ति -हेतु वेदों में मन्त्र- व्यवस्था है। तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य बुद्धि ज्ञान, शब्दोच्चारण एवं स्वभावादि में एक-दूसरे से नितान्त भिन्न एवं न्यूनाधिक है। ऐसी स्थिति में यह सर्वथा सम्भव है कि सभी मनुष्य विशुद्धतया एक-जैसा कर्मानुष्ठान नहीं कर सकते। यदि कर्मानुष्ठान एक-रूप में नहीं किया गया तो वह फलदायक नहीं होगा- इस दुरवस्था को मिटाने के लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा कर्मानुष्ठान का विधान किया गया। चूँकि वेदों में नियतानुपूर्वी हैं एवं स्वर वर्णादि की निश्चित उच्चारण-विधि है, अत: बुद्धि, ज्ञान एवं स्वभाव में भिन्न रहने पर भी प्रत्येक मनुष्य उसे एकरूपतया गुरुमुखोच्चारणानुच्चारण विधि से अधिगत कर उसी तरह कर्म में प्रयोग करेगा, जिसके फलस्वरूप सभी को निश्चित फल की प्राप्ति होगी। इस प्रकार मन्त्रों

के द्वारा ही कर्मानुष्ठान किया जाना सर्वथा तर्कसंगत एवं साम्यवादी व्यवस्था है। याज्ञिक दृष्टि से मन्त्र चार प्रकार के होते हैं-

करण मन्त्र, क्रियमाणानुवादि मन्त्र, अनुमन्त्रण मन्त्र और जपमन्त्र।

इनमें जिस मन्त्र के उच्चारणानन्तर ही कर्म किया जाता है, वह करण मन्त्र' है। यथा-याज्या पुरोऽनुवाक् आदि। कर्मानुष्ठान के साथ-साथ जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह 'क्रियमाणानुवादि मन्त्र' होता है। यथा-युवा सुवासा0 आदि। जब यज्ञ में यूप-संस्कार किया जाता है तभी यह मन्त्र पढ़ा जाता है। कर्म के ठीक बाद जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह 'अनुमन्त्रण मन्त्र' कहलाता है। यथा- एको मम एका तस्य योऽस्मान् द्वेष्टि0 आदि। यह मन्त्र द्रव्यत्याग रूप याग किये जाने के ठीक बाद यजमान द्वारा पढ़ा जाता है। इनके अतिरिक्त जो 'मयीदमिति यजमानो जपति' इत्यादि वाक्यों द्वारा विहित सन्निपत्योपकारक।

मन्त्रों कें लक्षण

मन्त्रों कें लक्षण के सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति का विचार किया जाय तो ज्ञात होता है। कि कोई भी लक्षण सटीक नहीं है। ऐसा इसलिये है कि वैदिक मन्त्र नानाविध हैं। कारण है कि आपस्तम्बादि आचार्यों ने ब्राह्मण भाग एवं अर्थवाद का लक्षण करने के अनन्तर कह दिया- 'अतोऽन्तये मन्त्रा: अर्थात इनके अतिरिक्त सभी मन्त्र हैं।

विधिभाग-मन्त्रातिरिक्त वेद-भाग 'ब्राह्मण' पद से अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण शब्द 'ब्रह्मन्' शब्द से 'अण्' प्रत्यय करने पर नपुंसक लिंग में वेदराशि के अभिधायक अर्थ में सिद्ध होता है। आचार्य जैमिनि ने ब्राह्मण का लक्षण करते हुए कहा है कि – मन्त्र से बचे हुए भाग में 'ब्राह्मण' शब्द का व्यवहार जानना चाहिये। *आचार्य भट्ट-भास्कर के अनुसार कर्म और कर्म में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के व्याख्यान- ग्रन्थ ब्राह्मण हैं।

म0म0 विद्याधर शर्मा जी के अनुसार- चारों वेदों के मन्त्रों के कर्मों में विनियोजक, कर्मविधायक, नानाविधानादि इतिहास- आख्यानबहुल ज्ञान- विज्ञानपूर्ण वेदभाग ब्राह्मण है

ब्राह्मण के दो भेद हैं

विधि और अर्थवाद।

आचार्य आपस्तम्बने दोनों का भेद प्रदर्शित करते हुए कहा है- कर्म की ओर प्रेरित करने वाली विधियाँ ब्राह्मण है तथा ब्राह्मण का शेष भाग अर्थवाद है।

आचार्य लौगाक्षि भास्कर के अनुसार अज्ञात अर्थ को अवबोधित करानेवाले वेदभाग को विधि कहते हैं। यथा- 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम:' अर्थात स्वर्गरूपी फल की प्राप्ति करने के लिये अग्निहोत्र करना चाहिये-यह विधिवाक्य, अन्य प्रमाण से अप्राप्त स्वर्ग फलयुत होम का विधान करता है, अत: अज्ञातार्थ-ज्ञापक है।

आचार्य सायण ने विधि के दो भेद बतलाये हैं- 1- अप्रवृत्तप्रवर्तन-विधि और 2- अज्ञातार्थ-ज्ञापन-विधि। इनमें 'आग्नवैष्णवं पुरोडाशं निर्वर्णनादीक्षणीयम्' इत्यादि कर्मकाण्डगत विधियाँ अप्रवृत्त की ओर

प्रवृत्त करने वाली हैं। 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इत्यादि ब्रह्मकाण्डगत विधियाँ प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाणों से अज्ञात विषय का ज्ञान कराने वाली हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य लौगाक्षि भास्कर कर्मकाण्ड एवं ब्रह्मकाण्डगत सभी विधियों को अज्ञातार्थ ज्ञापन मानते हैं, किंतु आचार्य सायण ने सूक्ष्म दृष्टि अपनाते हुए कर्मकाण्डगत विधियों को 'अप्रवृत्तवर्तन-विधि' कहा और ब्रह्मकाण्डगत विधियों को 'अज्ञातार्थ-ज्ञापन-विधि' माना।

मीमांसादर्शन में याज्ञिक विचार की दृष्टि से विधि- भाग के चार भेद माने गये हैं-

उत्पत्तिविधि,

गुणविधि या विनियोग विधि,

अधिकारविधि और प्रयोगविधि।

इनमें जो वाक्य 'यह कर्म इस प्रकार करना चाहिये' एवंविध कर्मस्वरूप-मात्र के अवबोधन में प्रवृत्त हैं, वे 'उत्पत्तिविधि' कहे जाते हैं, यथा-'अग्निहोत्रं जुहोति'। जो उत्पत्तिविधि से विहित कर्मसम्बन्धी द्रव्य और देवता के विधायक हैं, वे 'गुणविधि' ('विनियोगविधि') कहे जाते हैं। यथा- 'दध्ना जुहोति'। जो उन-उन कर्मों में किस का अधिकार है तथा किस फल के उद्देश्य से कर्म करना चाहिये- यह बतलाते हैं, वे 'अधिकारविधि' कहे जाते हैं। यथा- 'यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्ष्मावतेऽष्टाकपालं निर्वपेत्'। जो कर्मों के अनुष्ठानक्रमादिका बोधन कराते हैं, वे 'प्रयोगविधि' हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्रयोगविधि के वाक्य साक्षात उपलब्ध नहीं होते, अपितु प्रधान वाक्य (दर्शपूर्णमासाभ्याम्)- के साथ अंग-वाक्यों (सामधेयजति0)- की एकवाक्यता होकर कल्पित वाक्य (प्रमाणानुयाजादिभिरूपकृतवद्भ्यां दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत) ही प्रयोगविधि का परिचायक होता है।

अर्थवाद

आचार्य आपस्तम्ब ने ब्राह्मण (कर्म की ओर प्रवृत्त करने वाली विधियों)- से अतिरिक्त को शेष अवशिष्ट अर्थवाद कहा हैं।

अर्थसंग्रहकार ने अर्थवाद का लक्षण करते हुए कहा है- प्रशंसा अथवा निन्दापरक वाक्य को अर्थवाद कहते हैं। यथा- वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता। स्तेनं मनः अनृतवादिनी वाक्, आदि।

अर्थवाद-वाक्यों को लेकर पाश्चात्य वेद-विचार कों एवं कतिपय भारतीय विचारकों ने वेद के प्रामाण्य एवं उसकी महत्ता पर तीखे प्रहार किये हैं। इसके मूल में आलोचकों का भारतीय चिन्तन-दृष्टि से असम्पर्कित रहना है। भारतीय चिन्तन-दृष्टि (मीमांसा)- में अर्थवाद विधेय अर्थ की प्रशंसा करता है। तथा निषिद्ध अर्थ की निन्दा। किंतु इस कार्य (प्रशंसा और निन्दा)- में अर्थवाद मुख्यार्थद्वारा अपने तात्पर्यार्थ की अभिव्यक्ति नहीं करता, अपितु शब्द की लक्षणा शक्ति का आश्रय ग्रहण करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मीमांसक-दृष्टि से समस्त वेद क्रियापरक है। तथा यागादि क्रिया द्वारा ही अभीष्ट-प्राप्ति एवं अनिष्टका परिहार किया जा सकता है। यतः 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इस विधान से वेद के अन्तर्गत ही अर्थवाद भी है, अतः उनको भी क्रियापरक मानना उचित है। जैसा कि पहले कहा गया

है कि अर्थवाद का प्रयोजन विधेयकी प्रशंसा एवं निषिद्ध की निन्दा में प्रकट होता है। विधान एवं निषेध क्रिया का ही होता है, अत: परम्परया अर्थवाद-वाक्य क्रिया (याग या धर्म) परक होते हैं, अतएव उनका प्रामाण्य एवं उपादेयता सर्वथा सिद्ध है। इसी बात को आचार्य जैमिनि ने इन शब्दों में कहा है- विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्यु:। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध के बाद से पाश्चात्य नव्य वेदार्थ-विचार कों- बर्गाइन आदि ने भारतीय चिन्तन की इस दृष्टि को समझा तथा उसके आलोक में नये सिरे से वेदार्थ-विचार में दृष्टि डाली।

प्राशस्त्य और निन्दा से सम्बन्धित अर्थवाद-वाक्य क्रमश: विधिशेष एवं निषेधशेष-रूप से अभिहित किये गये हैं। विधि अर्थात विधायक वाक्य, शेष- अर्थवाद-वाक्य दोनों मिलकर एक समग्र वाक्य की रचना करते हैं, जो कि विशिष्ट प्रभावोत्पादक बनता है। उदाहरणार्थ-'वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकाम:' यह विधि-वाक्य है। इसका शेष- अर्थवाद वाक्य है- 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता'। यहाँ वायु की प्रशंसा विधिशेषात्मक अर्थवाद से गयी है। उपर्युक्त दोनों वाक्यों की एकवाक्यता करके लक्षणा द्वारा यह विदित होता है कि वायुदेवता शीघ्रगामी हैं, अत: वे ऐश्वर्य भी शीघ्र प्रदान करते हैं। अब इस विशिष्ट प्रभावोत्पादक अर्थ को सुनकर अधिकारी व्यक्ति की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार निषेध-शेषात्मक अर्थवाद का भी साफल्य जानना चाहिये।

अर्थवाद द्वारा प्रतिपादित विषय-परीक्षण की दृष्टि से शास्त्र में इसके तीन भेद माने गये हैं-

गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद।

गुणवाद नामक अर्थवाद में प्रतिपाद्य अर्थ का प्रमाणान्तर से विरोध होता है। यथा- 'आदित्यो यूप:'। यहाँ यूप का आदित्य के साथ अभेद प्रतिपादित है, जो कि प्रत्यक्षतया बाधित है। अत: अर्थ सिद्धि के लिये ऐसे स्थलों पर लक्षणा का आश्रय लेकर यूप का 'उज्ज्वलवादिगुणयोगेनादित्यात्मकत्वम्' अर्थ किया जाता है।

अनुवाद-संज्ञक अर्थवाद में पूर्वपरिज्ञात या पूर्वानुभूत प्रमाण से अर्थ का बोध होता है, जबकि प्रतिपाद्य विषय में केवल उसका 'अनुवाद' मात्र रहता है। उदारणार्थ- 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इस वाक्य में प्रत्यक्षतया सिद्ध है कि अग्नि शैत्य का औषध है। इस पूर्वपरिज्ञात या पूर्वानुभूत विषय (यत्र यत्राग्निस्तत्र तत्र हिमनिरोध:) - का प्रकाशन इस दृष्टान्त में है, अत: यह अनुवाद है।

तृतीय भूतार्थवाद में भूतार्थ का अर्थ पूर्वघटित किसी यथार्थ वस्तु के ज्ञापन से है। यहाँ गुणवाद अर्थवाद की भाँति न तो किसी प्रमाणान्तर से विरोध होता है और न ही अनुवाद अर्थवाद की भाँति प्रमाणान्तरावधारण होता है। अतएव शास्त्र में इसका लक्षण किया गया है- 'प्रमाणान्तर विरोधतत्प्राप्तिरहितार्थबोधकोऽर्थवादो भूतार्थवाद:।' इसका दृष्टान्त है-'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्।' कहीं भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं होता जिससे इस कथन का विरोध हो, अत: प्रमाणान्तर-अविरोध है, साथ ही ऐसा भी प्रमाण नहीं है जिससे इसका समर्थन हो, अत: प्रमाणान्तरावधारण भी नहीं है। इस प्रकार उभय पक्ष के अभाव में यह वाक्य भूतार्थवाद का उदाहरण है।

अर्थवाद- भाग को आचार्य पारस्करने 'तर्क' शब्द से अभिहित किया है। आचार्य कर्कने 'तर्क' पद की व्याख्या करते हुए कहा कि जिसके द्वारा संदिग्ध अर्थ का निश्चय किया जा सके, वह तर्क अर्थात

अर्थवाद है। इसका उदाहरण देते हुए कहा कि–'अक्ता शर्करा उपदधाति तेजो वै घृतम्' इस वाक्य में प्राप्त अञ्जन, तैल तथा वसा आदि द्रव्यों से भी सम्भव है, किंतु 'तेजो वै घृतम्' इस घृतसंस्तावक अर्थवाद–वाक्य से संदेह निराकृत होकर घृत से अञ्जन करना यह स्थिर होता है। इस प्रकार अर्थवाद भाग महदुपकारक है। आपस्तम्ब, पारस्कर आदि आचार्यों ने वेद के तीन ही भाग माने हैं– विधि, मन्त्र और अर्थवाद। अर्थ– संग्रहकारने वेद के पाँच भाग माने हैं– विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद। नामधेय– जैसा कि संज्ञा से स्पष्ट हैं, नामधेय–प्रकरण में कतिपय नामों से जुड़े हुए विशेष भागों की आलोचना होती है। इनमें 'उद्भिदा यजेत पशुकामः','चित्रया यजेत पशुकामः','अग्निहोत्रं जुहोति', 'श्येनेनाभिचरन् यजेत'- ये चार वाक्य ही प्रमुख हैं। नामधेय विजातीय की निवृत्तिपूर्वक विधेयार्थ का निश्चय कराता है। यथा– 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इस वाक्य में पशु–रूप फल के लिये याग का विधान किया गया है। यह याग वाक्यान्तर से अप्राप्त है और इस वाक्य द्वारा विहित किया जा रहा है। यदि इस वाक्य से 'उद्भिद्' शब्द हटा दिया जाय तो 'यजेत पशुकामः' यह वाक्य होगा, जिसका अर्थ है–'यागेन पशुं भावयेत्', किंतु इससे याग–सामान्य का विधान होगा जो कि अविधेय है, क्योंकि याग विशेष का नाम अभिहित किये बिना अनुष्ठान सम्भव नहीं है। 'उद्भिदा' पदद्वारा इस प्रयोजन की पूर्ति होती है, अतः 'उद्भिद्' याग का नाम हुआ तथा याग–विशेष का निर्देशक होने से विधेयार्थ–परिच्छेद भी हुआ। नामधेयत्व चार कारणों से होता है–

मत्वर्थ–लक्षणा के भय से, वाक्य भेद के भय से, तत्प्रख्यशास्त्र से और तद्व्यपदेश से।

निषेध– जो वाक्य पुरुष को किसी क्रिया को करने से निवृत्त कराता है, उसे 'निषेध' कहते हैं। शास्त्रों ने नरकादिको अनर्थ माना है। इस नरक–प्राप्ति का हेतु कलञ्जभक्षणादि है, अतः पुरुष को ऐसे कार्यों से 'निषेध–वाक्य' निवर्तित करते हैं इस प्रकार अनर्थ उत्पन्न करने वाली क्रियाओं से पुरुष का निवर्तन कराना ही निषेध–वाक्यों का प्रयोजन है। मन्त्र–ब्राह्मणात्मक (विधिमन्त्र–नामधेय–निषेधार्थवाद–रूप) वेद में कतिपय विचारकों ने ब्राह्मणभाग को वेद नहीं माना है। उनके प्रधान तर्क ये हैं–

ब्राह्मण–ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी है।

एक कात्यायन को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी है।

ब्राह्मण–भाग को भी यदि वेद माना जाय तो 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' इत्यादि पाणिनि–सूत्र में 'छन्दः' शब्द के ग्रहण से ही ब्राह्मणों का भी ग्रहण हो जाने से अलग से 'ब्राह्मण' शब्द का उल्लेख करना व्यर्थ होगा।

ब्राह्मण–ग्रन्थ चूँकि मन्त्रों के व्याख्यान हैं, अतः ईश्वरोक्त नहीं हैं, अपितु महर्षि लोगों द्वारा प्रोक्त हैं।

इसके समाधान में यह कहना अत्यन्त संगत है कि ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मणों को पुराण अथवा इतिहास नहीं कहा जाता; रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण आदि को ही इतिहास, पुराण कहा जाता है। यदि पुरातन अर्थ के प्रतिपादक होने से तथा ऐतिहासिक अर्थ के प्रतिपादक होने से इनको पुराण–इतिहास कहा जायगा तो इस तरह की संज्ञा से 'वेद' संज्ञा का कोई विरोध नहीं है, 'वेद' संज्ञा के रहते हुए भी ब्राह्मण–भाग की पुराण–इतिहास संज्ञा भी हो सकती है। भारतीय दृष्टि से–भूत, भविष्य और

वर्तमान सब कुछ वेद से ज्ञात होता है। अत: जिस प्रकार कम्बु-ग्रीवादि से युक्त एक ही पदार्थ के घट, कलश आदि अनेक नामधेय होने से कोई विरोध उपस्थित नहीं होता, उसी तरह एक ही ब्राह्मण-ग्रन्थ के वेद होने में और पुराण-इतिहास होने में कोई विरोध नहीं है।

कात्यायनको छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने ब्राह्मणभाग के वेद होने में प्रमाण नहीं दिया है- यह कथन भी आधार रहित है, क्योंकि भारतीय दृष्टि से किसी भी आप्त ऋषि का प्रामाण्य अव्याहत है। फिर ऐसी बात भी नहीं है कि अन्य ऋषियों ने ब्राह्मण-भाग के वेदत्व को नहीं स्वीकारा है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, सत्याषाढ श्रौतसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थों में तत्तत् आचार्यों ने मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद माना है। अत: यह शंका निर्मूल सिद्ध होती है।

पाणिनि के 'छन्दोब्राह्मणानि0' इत्यादि सूत्रों में 'छन्द:' शब्द से ही ब्राह्मण का ग्रहण मानने पर 'ब्राह्मणानि' यह पद व्यर्थ होगा, अत: यह कथन भी तर्क-संगत नहीं है। आचार्य पाणिनि ने 'छन्दस्' पद से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ग्रहण किया है, क्योंकि 'छन्दस्' इस अधिकार में जो-जो आदेश, प्रत्यय, स्वर आदि का विधान किया गया है, वे दोनों में पाये जाते हैं। जो कार्य केवल मन्त्र-भाग में इष्ट था, उनके लिये सूत्रों में 'मन्त्रे' पद तथा जो ब्राह्मण में इष्ट था उनके लिये 'ब्राह्मण' पद दिया है। यह भी ध्यातव्य है कि 'छन्द:' पर यद्यपि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद का बोधक है, किंतु कभी-कभी वे इनमें से किसी एक अवयव के भी बोधक होते हैं। महाभाष्य पस्पशाह्निक एवं ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य में यह स्पष्ट किया गया है कि समुदायार्थक शब्दों की कभी-कभी उनके अवयवों के लिये भी प्रवृत्ति देखी जाती है। यथा-'पूर्वपाञ्चाल, उत्तरपाञ्चाल आदि का प्रयोग।' अत: शास्त्र में छन्द अथवा वेद शब्द केवल मन्त्रभाग, केवल ब्राह्मण-भाग अथवा दोनों भागों के लिये प्रसंगानुसार प्रयुक्त होते हैं।

ब्राह्मण-भाग मन्त्रों के व्याख्यान हैं, अत: वे वेदान्तर्गत नहीं हो सकते- यह कथन भी सर्वथा असंगत है। मीमांसा एवं न्यायशास्त्र में वेद के जो विषय-विभाग किये गये हैं- विधि, अर्थवाद, नामधेय और निषेध, वे सभी मुख्यतया ब्राह्मण में ही घटित होते हैं। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता आदि में तो मन्त्र और ब्राह्मण सम्मिलित-रूप में ही हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह विचार उठाया है कि व्याकरण केवल सूत्रों को कहना चाहिये या व्याख्यासहित सूत्रों को? इसका सिद्धान्त यही दिया गया है कि व्याख्यासहित सूत्र ही व्याकरण है। इसी प्रकार व्याख्या (ब्राह्मण)-सहित मन्त्र वेद है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण-भाग मात्र मन्त्रों का व्याख्यान नहीं करता; अपितु यज्ञादि कर्मों की विधि, इतिकर्तव्यता, स्तुति तथा ब्रह्मविद्या आदि का स्वतन्त्रतया विधान करता है। अत: ब्राह्मण-भाग का वेदत्व सर्वथा अव्याहत है।

मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद के विषय-सम्बन्धी तीन भेद परम्परा से चले आ रहे हैं। इनमें कर्मकाण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम 'ब्राह्मण', उपासनाकाण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम 'आरण्यक' तथा ज्ञानकाण्ड के प्रतिपादक भाग का नाम 'उपनिषद' है।

वेद का विभाजन

भारतीय वाङ्मय में बतलाया गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ऋग्यजु:साम-अथर्वात्मक वेद एकत्र संकलित था। सत युग, त्रेता युग तथा द्वापर युग की लगभग समाप्ति तक एकरूप वेद का ही अध्ययन-अध्यापन यथाक्रम चलता रहा।

द्वापर युग की समाप्ति के कुछ वर्षों-पूर्व महर्षि व्यास ने भावी कलि युग के व्यक्तियों की बुद्धि, शक्ति और आयुष्य के ह्रास की स्थिति को दिव्य-दृष्टि से जानकर ब्रह्मपरम्परा से प्राप्त एकात्मक वेद का यज्ञ-क्रियानुरूप चार विभाजन किया। इन चार विभाजनों में उन्होंने होत्र कर्म के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन ऋग्वेद के नाम से, यज्ञ के आध्वर्यव कर्म (आन्तरिक मूलस्वरूप-निर्माण) के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन यजुर्वेद के नाम से, औद्गात्र कर्म के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन सामवेद के नाम से और शान्तिक-पौष्टिक अभिलाषाओं (जातविद्या)- के उपयोगी मन्त्र एवं क्रियाओं का संकलन अथर्ववेद के नाम से किया। इस विभाजन में भगवती श्रुति के वचन को ही आधार रखा गया। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सम्प्रति प्रवर्तमान वेद-शब्दराशि का वैवस्वत मन्वन्तर में कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास द्वारा यह 28वाँ विभाजन है। अर्थात् पौराणिक मान्यता के अनुसार इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक चतुर्युगी के अन्तर्गत द्वापरयुग की समाप्ति में विशिष्ट तप:सम्पन्न महर्षि के द्वारा एकात्मक वेद का चार विभाजन अनवरत होता रहता है। यह विभाजन कलि युग के लिये होता है और कलि युग के अन्त तक ही रहता है। सम्प्रति मन्वन्तरों में सप्तम वैवस्वत नामक मन्वन्तर का यह 28वाँ कलि युग है। इसके पूर्व 27 कलियुग एवं 27 ही वेद विभाग कर्ता वेदव्यास (विभिन्न नामों के) हो चुके हैं। वेदों का यह 28वाँ उपलब्ध विभाजन महर्षि पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन के द्वारा किया गया है। वेदों का विभाजन करने के कारण ही उन महर्षि को 'वेदव्यास' शब्द से जाना जाता है।

चार वेद और उनकी यज्ञपरकता

वेदविभागकर्ता व्यासोपाधि-विभूषित महर्षि कृष्णद्वैपायन ने यज्ञ-प्रयोजन की दृष्टि से वेद का ऋग्वेद-यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-यह विभाजन प्रसारित किया; क्योंकि भारतीय चिन्तन में वेदों का अभिप्रवर्तन ही यज्ञ एवं उसके माध्यम से समस्त ऐहिकामुष्मिक फलसिद्धि के लिये हुआ है। वैदिक यज्ञों का रहस्यात्मक स्वरूप क्या है एवं साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने किन बीजों द्वारा प्रकृति से अभिलषित पदार्थों का दोहन इस भौतिक यज्ञ के माध्यम से आविष्कृत किया, यह पृथक् विवेचनीय विषय है। यहाँ स्थूलदृष्टया यह जानना है कि प्रत्येक छोटे (इष्टि) और बड़े (सोम, अग्निचयन) यज्ञों में मुख्य चार ऋत्विक्- होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा होते हैं। बड़े यज्ञों में एक-एक के तीन सहायक और होकर सोलह ऋत्विक् हो जाते हैं, किंतु वे तीन सहायक उसी मुख्य के अन्तर्गत मान लिये जाते हैं। इनमें 'अध्वर्यु' नामक ऋत्विक् द्रव्य-देवतात्यागात्मक यज्ञस्वरूप का निर्माण यजुर्वेद से करता है। 'होता' नामक ऋत्विक् यज्ञ के अपेक्षित शस्त्र (अप्रगीत मन्त्रसाध्य स्तुति) एवं अन्य अंगकलापों का अनुष्ठान ऋग्वेद द्वारा तथा 'उद्गाता' नामक ऋत्विक् स्तोत्र (गेय मन्त्रसाध्य स्तुति) और उसके अंगकलापों का अनुष्ठान सामवेद द्वारा करता है।'ब्रह्मा' नामक चतुर्थ ऋत्विक् यज्ञिय कर्मों के न्यूनादि दोषों का परिहार एवं शान्तिक-पौष्टिक-आभिचारिकादि सर्वविध अभिलाषा-सम्पूरक कर्म अथर्ववेद द्वारा सम्पादित करता है। वेद-त्रयी- कतिपय अर्वाचीन वेदार्थ-विचारक 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति', 'त्रयी वै विद्या', 'इति वेदास्त्रयस्त्रयी' इत्यादि वचनों के द्वारा वेद वस्तुत: तीन हैं तथा कालान्तर में अथर्ववेद को चतुर्थ वेद के रूप में मान्यता दी गयी-ऐसी कल्पना करते हैं, किंतु यह कल्पना भारतीय परम्परा से सर्वथा विपरीत है। भारतीय आचार्यों ने रचना-भेद की दृष्टि से वेदचतुष्टयी का त्रित्वमें अन्तर्भाव कर उसे लक्षित किया है।

रचना-शैली

रचना-शैली तीन ही प्रकार की होती है- गद्य, पद्य और गान। इस दृष्टि से-छन्द में आबद्ध, पादव्यवस्था से युक्त मन्त्र 'ऋक्' कहलाते हैं; वे ही गीति-रूप होकर 'साम' कहलाते हैं तथा वृत्त एवं गीति से रहित प्रश्लिष्टपठित (-गद्यात्मक) मन्त्र 'चजुष्' कहलाते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि छन्दोबद्ध ऋग्विशेष मन्त्र ही अथर्वांगिरस हैं, अत: उनका ऋग्रूपा (पद्यात्मिका) रचना-शैली में ही अन्तर्भाव हो जाता है और इस प्रकार वेदत्रयी की अन्वर्थता होती है।

4 -- वैदिक ऋषियों का सामान्य परिचय

1 महर्षि व्यास का योगदान

व्यास अथवा वेदव्यास हिंदू धर्म ग्रंथों के अनुसार भगवान नारायण के ही कलावतार थे। व्यास जी के पिता का नाम पराशर ऋषि तथा माता का नाम सत्यवती था। जन्म लेते ही इन्होंने अपने पिता-माता से जंगल में जाकर तपस्या करने की इच्छा प्रकट की। प्रारम्भ में इनकी माता सत्यवती ने इन्हें रोकने का प्रयास किया, किन्तु अन्त में इनके माता के स्मरण करते ही लौट आने का वचन देने पर उन्होंने इनको वन जाने की आज्ञा दे दी। प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अट्ठाईस बार वेदों का विभाजन किया गया। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरे में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य , चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए। इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, धनजंय, कृष्ण द्वैपायन अश्वत्थामा आदि अट्ठाईस वेदव्यास हुए। समय-समय पर वेदों का विभाजन किस प्रकार से हुआ, इसके लिए यह एक उदाहरण प्रस्तुत है। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने ब्रह्मा की प्रेरणा से चार शिष्यों को चार वेद पढ़ाये-

मुनि पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद तथा सुमंतु को अथर्ववेद पढ़ाया।

व्यास का अर्थ है । यह उपाधि अनेक पुराने ग्रन्थकारों को प्रदान की गयी है, किन्तु विशेषकर वेदव्यास उपाधि वेदों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने वाले उन महर्षि को दी गयी है जो चिरंजीव होने के कारण 'आश्वत' कहलाते हैं। यही नाम महाभारत के संकलनकर्ता, वेदान्तदर्शन के स्थापनकर्ता तथा पुराणों के व्यवस्थापक को भी दिया गया है। ये सभी व्यक्ति वेदव्यास कहे गये है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि ये सभी एक ही व्यक्ति थे अथवा विभिन्न। भारतीय परम्परा इन सबको एक ही व्यक्ति मानती है। महाभारतकार व्यास ऋषि पराशर एवं सत्यवती के पुत्र थे, ये साँवले रंग के थे तथा यमुना के बीच स्थित एक द्वीप में उत्पन्न हुए थे। अतएव ये साँवले रंग के कारण 'कृष्ण' तथा जन्मस्थान के कारण 'द्वैपायन' कहलाये। इनकी माता ने बाद में शान्तनु से विवाह किया, जिनसे उनके दो पुत्र हुए, जिनमें बड़ा चित्रांगद युद्ध में मारा गया और छोटा विचित्रवीर्य संतानहीन मर गया। कृष्ण द्वैपायन ने धार्मिक तथा वैराग्य का जीवन पसंद किया, किन्तु माता के आग्रह पर इन्होंने विचित्रवीर्य की दोनों सन्तानहीन रानियों द्वारा नियोग के नियम से दो पुत्र उत्पन्न किये जो धृतराष्ट्र तथा पाण्डु कहलाये, इनमें तीसरे विदुर भी थे। पुराणों में अठारह व्यासों का उल्लेख है जो ब्रह्मा या विष्णु के अवतार कहलाते हैं एवं पृथ्वी पर विभिन्न युगों में वेदों की व्याख्या व प्रचार करने के लिए अवतीर्ण होते हैं।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविस्वसेत्।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति॥

जो विश्वास्पात्र न हो, उस पर कभी विश्वास न करें और जो विश्वास्पात्र हो उस पर भी अधिक विश्वास न करें क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मनुष्य का मूलोच्छेद कर देता है।

- वेदव्यास (महाभारत शांति पर्व, 138।

अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष

भगवान् वेदव्यास एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे। इनका जन्म एक द्वीप के अन्दर हुआ था और वर्ण श्याम था, अत: इनका एक नाम कृष्णीद्वैपायन भी है। वेदों का विस्तार करने के कारण ये वेदव्यास तथा बदरीवन में निवास करने कारण बादरायण भी कहे जाते हैं। इन्होंने वेदों के विस्तार के साथ महाभारत, अठारह महापुराणों तथा ब्रह्मसूत्र का भी प्रणयन किया। शास्त्रों की ऐसी मान्यता है कि भगवान् ने स्वयं व्यास के रूप में अवतार लेकर वेदों का विस्तार किया। अत: व्यासजी की गणना भगवान् के चौबीस अवतारों में की जाती है। व्यासस्मृति के नाम से इनके द्वारा प्रणीत एक स्मृतिग्रन्थ भी है। भारतीय वांड्मय एवं हिन्दू-संस्कृति व्यासजी की ऋणी है। संसार में जब तक हिन्दू-जाति एवं भारतीय संस्कृति जीवित है, तब तक व्यासजी का नाम अमर रहेगा। महर्षि व्यास त्रिकालदर्शी थे। जब पाण्डव एकचक्रा नगरी में निवास कर रहे थे, तब व्यासजी उनसे मिलने आये। उन्होंने पाण्डवों को द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाकर कहा कि 'यह कन्या विधाता के द्वारा तुम्हीं लोगों के लिये बनायी गयी है, अत: तुम लोगों को द्रौपदी-स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिये अब पांचाल नगरी की ओर जाना चाहिये।' महाराज द्रुपद को भी इन्होंने द्रौपदी के पूर्वजन्म की बात बताकर उन्हें द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों से विवाह करने की प्रेरणा दी थी।

विभिन्न नाम

यमुना के द्वीप में जन्म होने के कारण व्यास जी को कृष्णद्वैपायन तथा बदरीवन में तपस्या करने के कारण बदरायण व्यास भी कहा जाता है। इन्हें अंगों सहित सम्पूर्ण वेद, पुराण, इतिहास और परमात्मतत्त्व का ज्ञान स्वत: प्राप्त हो गया था। मनुष्यों की आयु क्षीण होते हुए देखकर इन्होंने वेदों का विस्तार किया। इसीलिये ये वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए। वेदान्त-दर्शन की शक्ति के साथ अनादि पुराण को लुप्त होते देखकर भगवान कृष्णद्वैपायन ने अठारह पुराणों का प्रणयन किया। इनके द्वारा प्रणीत महाभारत को पंचम वेद कहा जाता है। श्रीमद्भागवत के रूप में भक्ति का सार-सर्वस्व इन्होंने मानव मात्र को सुलभ कराया और ब्रह्मसूत्र के रूप में तत्त्वज्ञान का अनुपम ग्रन्थ-रत्न प्रदान किया।

महाभारत में

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर व्यासजी अपने शिष्यों के साथ इन्द्रप्रस्थ पधारे। वहाँ इन्होंने युधिष्ठिर को बताया कि-'आज से तेरह वर्ष बाद क्षत्रियों का महासंहार होगा, उसमें दुर्योधन के विनाश में तुम्हीं निमित्त बनोगे।' पाण्डवों के वनवासकाल में भी जब दुर्योधन दु:शासन तथा शकुनि की सलाह से उन्हें मार डालने की योजना बना रहा था, तब व्यासजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से उसे जान

लिया। इन्होंने तत्काल पहुँचकर कौरवों को इस दुष्कृत्य से अवगत किया। इन्होंने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा–'तुमने जुए में पाण्डवों का सर्वस्व छीनकर और उन्हें वन भेजकर अच्छा नहीं किया। दुरात्मा दुर्योधन पाण्डवों को मार डालना चाहता है। तुम अपने लाडले बेटे को इस काम से रोको, अन्यथा इसे पाण्डवों के हाथ से मरने से कोई नहीं बचा पायगा।' भगवान व्यास जी ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की, जिससे युद्ध-दर्शन के साथ उनमें भगवान् के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूप के दर्शन की भी योग्यता आ गयी। उन्होंने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्दसे नि:सृत श्रीमद्भगवद्गीता का श्रवण किया, जिसे अर्जुन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया।

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।

परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलम्यते ॥

मनुष्य को दो प्रकार की व्याधियां होती हैं – एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों की उत्पत्ति एक दूसरे के आश्रित हैं, एक के बिना दूसरी का होना सम्भव नहीं है।

– वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व । 16 । 8)

एक बार जब धृतराष्ट्र वन में रहते थे, तब महाराज युधिष्ठिर अपने परिवार सहित उनसे मिलने गये। व्यासजी भी वहाँ आये। धृतराष्ट्र ने उनसे जानना चाहा कि महाभारत के युद्ध में मारे गये वीरों की क्या गति हुई? उन्होंने व्यासजी से एक बार अपने मरे हुए सम्बन्धियों का दर्शन कराने की प्रार्थना की। धृतराष्ट्र के प्रार्थना करने पर व्यासजी ने अपनी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से गंगाजी में खड़े होकर युद्ध में मरे हुए वीरों का आवाहन किया युधिष्ठिर, कुन्ती तथा धृतराष्ट्र के सभी सम्बन्धियों का दर्शन कराया। वैशम्पायन के मुख से इस अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर राजा जनमेजय के मन में भी अपने पिता महाराज परीक्षित का दर्शन करने की लालसा पैदा हुई। व्यासजी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने महाराज परीक्षित को वहाँ बुला दिया। जनमेजय ने यज्ञान्त स्नान के समय अपने पिता को भी स्नान कराया। तदनन्तर महाराज परीक्षित वहाँ से चले गये। अलौकिक शक्ति से सम्पन्न तथा महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास के चरणों में शत-शत नमन है।

सहृदय व्यास

शुद्धात्मा व्यास जी विपत्ति ग्रस्त पाण्डवों की समय-समय पर पूरी सहायता करते रहे। इन्होंने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे संजय ने महाभारत का युद्ध प्रत्यक्ष देखने के साथ-साथ श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि:सृत श्रीमद्भगवद् गीता का भी श्रवण किया। महर्षि व्यास की शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब ये वन में धृतराष्ट्र और गान्धारी से मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्टिर भी वहाँ उपस्थित थे। धृतराष्ट्र पुत्र शोक से अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने श्रीव्यास जी से अपने मरे हुए कुटुम्बियों और स्वजनों को देखने की इच्छा प्रकट की। महर्षि व्यास के आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गंगातट पर पहुँचे। व्यास जी ने गंगा जल में प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओं को पुकारा। जल में युद्धकाल-जैसा कोलाहल सुनायी देने लगा। देखते-ही-देखते भीष्म और द्रोण के साथ दोनों पक्षों के योद्धा निकल आये। सबकी वेष-भूषा और वाहनादि पूर्ववत थे। सभी ईर्ष्या-द्वेष से शून्य और दिव्य देहधारी थे। वे सभी लोग रात्रि में अपने पूर्व सम्बन्धियों से मिले और सूर्योदय से पूर्व भागीरथी गंगा में

प्रवेश करके अपने दिव्य लोकों को चले गये। भगवान व्यास के इस चमत्कारिक प्रभाव को देखकर धृतराष्ट्र आदि आश्चर्यचकित रह गये।

भगवान व्यास आज भी अमर हैं। समय-समय पर प्रकट होकर ये अधिकारी पुरुषों को अपना दर्शन देकर कृतार्थ किया करते हैं। भगवान आद्य शंकराचार्य और मण्डन मिश्र को उनके दर्शन हुए थे। मनुष्य जाति पर भगवान वेदव्यास के अनन्त उपकार हैं। सम्पूर्ण संसार उनका आभारी है।

प्रारम्भावस्था में वेद केवल एक ही था; एक ही वेद में अनेकों ऋचाएँ थीं, जो "वेद-सूत्र" कहलाते थे; वेद में यज्ञ-विधि का वर्णन है; सम (गाने योग्य) पदावलियाँ है तथा लोकोपकारी अनेक ही छन्द हैं। इन समस्त विषयों से सम्पन्न एक ही वेद सत्युग और त्रेतायुग तक रहा; द्वापरयुग में महर्षि कृष्णद्वैपायन ने वेद को चार भागों में विभक्त किया। इस कारण महर्षि कृष्णद्वैपायन "वेदव्यास" कहलाने लगे। संस्कृत में विभाग को "व्यास" कहते हैं, अतः वेदों का व्यास करने के कारण कृष्णद्वैपायन "वेदव्यास" कहलाने लगे। महर्षि व्यास के पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु- यह चार शिष्य थे। महर्षि व्यास ने पैल को ऋग्वेद, वैशम्यापन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद की शिक्षा दी।

2 वैदिक ऋषि पुलस्त

पुलस्त्य को हिन्दू धार्मिक मान्यता और ग्रंथों के अनुसार ब्रह्मा के छह मानस पुत्रों में से एक माना जाता है। इनकी गणना शक्तिशाली महर्षियों में की जाती है। कर्दम प्रजापति की कन्या हविर्भुवा से इनका विवाह हुआ था। इन्हें दक्ष का दामाद और शंकर का साढू भी बताया गया है। दक्ष के यज्ञ-ध्वंस के समय ये जलकर मर गए थे। वैवस्वत मन्वंतर में ब्रह्मा के सभी मानस पुत्रों के साथ पुलस्त्य का भी पुनर्जन्म हुआ था।

अप्सराओं को शाप

एक बार पुलस्त्य मेरु पर्वत पर तपस्या कर रहे थे तो बार-बार परेशान करने वाली अप्सराओं को इन्होंने शाप दे दिया कि जो इनके सामने आएगी, वह गर्भवती हो जाएगी। वैशाली के राजा की कन्या इडविला असावधानी से इनके सामने आकर गर्भवती हो गई। बाद में उसका पुलस्त्य से विवाह हुआ और उसने 'विश्रवा' नामक पुत्र को जन्म दिया। रावण इन्हीं विश्रवा का पुत्र और पुलस्त्य का पौत्र था। विश्रवा पश्चिम भारत में नर्मदा के किनारे रहता था। इससे अनुमान लगाया जाता है कि पुलस्त्य का निवास भी वहीं रहा होगा।

धर्मवक्ता

वृद्ध-याज्ञवल्क्य के अनुसार पुलस्त्य एक धर्मवक्ता हैं। विश्वरूप ने शरीर-शौच के सिलसिले में उनका एक श्लोक उद्धृत किया है। 'मिताक्षरा' ने एक उद्धरण में कहा है कि श्राद्ध में ब्राह्मण को मुनि का भोजन, क्षत्रिय एवं वैश्य को माँस तथा शूद्र को मधु खाना चाहिए। सन्ध्या, श्राद्ध, अशौच, यति-धर्म, प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में 'अपरार्क' ने पुलस्त्य से बहुत उद्धरण लिये हैं। आह्निक एवं श्राद्ध पर 'स्मृतिचन्द्रिका' ने पुलस्त्य का उल्लेख किया है। 'दानरत्नाकर' ने मृगचर्म-दान के बारे में पुलस्त्य का उद्धरण दिया है।

पुराणों में बताया गया है कि महर्षि अंगिरा ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं तथा ये गुणों में ब्रह्मा जी के ही समान हैं। इन्हें प्रजापति भी कहा गया है और सप्तर्षियों में वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा मरीचि आदि के साथ इनका भी परिगणन हुआ है। इनके दिव्य अध्यात्मज्ञान, योगबल, तप-साधना एवं मन्त्रशक्ति की विशेष प्रतिष्ठा है। इनकी पत्नी दक्ष प्रजापति की पुत्री स्मृति (मतान्तर से श्रद्धा) थीं, जिनसे इनके वंश का विस्तार हुआ।

इनकी तपस्या और उपासना इतनी तीव्र थी कि इनका तेज और प्रभाव अग्नि की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया। उस समय अग्निदेव भी जल में रहकर तपस्या कर रहे थे। जब उन्होंने देखा कि अंगिरा के तपोबल के सामने मेरी तपस्या और प्रतिष्ठा तुच्छ हो रही है तो वे दु:खी हो अंगिरा के पास गये और कहने लगे- 'आप प्रथम अग्नि हैं, मैं आपके तेज़ की तुलना में अपेक्षाकृत न्यून होने से द्वितीय अग्नि हूँ। मेरा तेज़ आपके सामने फीका पड़ गया है, अब मुझे कोई अग्नि नहीं कहेगा।' तब महर्षि अंगिरा ने सम्मानपूर्वक उन्हें देवताओं को हवि पहुँचाने का कार्य सौंपा। साथ ही पुत्र रूप में अग्नि का वरण किया। तत्पश्चात् वे अग्नि देव ही बृहस्पति नाम से अंगिरा के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए। उतथ्य तथा महर्षि संवर्त भी इन्हीं के पुत्र हैं। महर्षि अंगिरा की विशेष महिमा है। ये मन्त्रद्रष्टा, योगी, संत तथा महान् भक्त हैं। इनकी 'अंगिरा-स्मृति' में सुन्दर उपदेश तथा धर्माचरण की शिक्षा व्याप्त है।

सम्पूर्ण ऋग्वेद में महर्षि अंगिरा तथा उनके वंशधरों तथा शिष्य-प्रशिष्यों का जितना उल्लेख है, उतना अन्य किसी ऋषि के सम्बन्ध में नहीं हैं। विद्वानों का यह अभिमत है कि महर्षि अंगिरा से सम्बन्धित वेश और गोत्रकार ऋषि ऋग्वेद के नवम मण्डल के द्रष्टा हैं। नवम मण्डल के साथ ही ये अंगिरस ऋषि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अनेक मण्डलों के तथा कतिपय सूक्तों के द्रष्टा ऋषि हैं। जिनमें से महर्षि कुत्स, हिरण्यस्तूप, सप्तगु, नृमेध, शंकपूत, प्रियमेध, सिन्धुसित, वीतहव्य, अभीवर्त, अंगिरस, संवर्त तथा हविर्धान आदि मुख्य हैं।

ऋग्वेद का नवम मण्डल जो 114 सूक्तों में निबद्ध हैं, 'पवमान-मण्डल' के नाम से विख्यात है। इसकी ऋचाएँ पावमानी ऋचाएँ कहलाती हैं। इन ऋचाओं में सोम देवता की महिमापरक स्तुतियाँ हैं, जिनमें यह बताया गया है कि इन पावमानी ऋचाओं के पाठ से सोम देवताओं का आप्यायन होता है। महर्षि अत्रि वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद दस मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल के मन्त्रों के ऋषि अलग-अलग हैं। उनमें से ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा महर्षि अत्रि हैं। इसीलिये यह मण्डल 'आत्रेय मण्डल' कहलाता है। इस मण्डल में 87 सूक्त हैं। जिनमें महर्षि अत्रि द्वारा विशेष रूप से अग्नि, इन्द्र, मरूत, विश्वेदेव तथा सविता आदि देवों की महनीय स्तुतियाँ ग्रथित हैं। इन्द्र तथा अग्निदेवता के महनीय कर्मों का वर्णन है। अत्रि ब्रह्मा के पुत्र थे जो उनके नेत्रों से उत्पन्न हुए थे। ये सोम के पिता थे जो इनके नेत्र से आविर्भूत हुए थे। इन्होंने कर्दम की पुत्री अनुसूया से विवाह किया था। इन दोनों के पुत्र दत्तात्रेय थे। इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदि को अन्वीक्षकी की शिक्षा दी थी। भीष्म जब शर-शैय्या पर पड़े थे, उस समय ये उनसे मिलने गये थे। परीक्षित जब प्रायोपवेश का अभ्यास कर रहे थे, तो ये उन्हें देखने गये थे। पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वत पर पत्नी के साथ तप किया था। इन्होंने त्रिमूर्तियों की प्रार्थना की थी जिनसे त्रिदेवों के अशं रूप में दत्त (विष्णु) दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए थे। इन्होंने दो बार पृथु को घोड़े चुराकर भागते हुए इन्द्र को दिखाया था तथा हत्या करने को कहा था। ये वैवस्वत युग के मुनि थे। मन्त्रकार के रूप में इन्होंने उत्तानपाद को अपने

पुत्र के रूप में ग्रहण किया था। इनके ब्रह्मावादिनी नाम की कन्या थी। परशुराम जब ध्यानावस्थित रूप में थे उस समय ये उनके पास गये थे। इन्होंने श्राद्ध द्वारा पितरों की अराधना की थी और सोम की राजक्ष्मा रोग से मुक्त किया था। ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि की रचना के लिए नियुक्त किये जाने पर इन्होंने 'अनुत्तम' तक किया था जब कि शिव इनसे मिले थे। सोम के राजसूय यज्ञ में इन्होंने होता का कार्य किया था। त्रिपुर के विनाश के लिए इन्होंने शिव की आराधना की थी। बनवास के समय राम अत्रि के आश्रम भी गये थे

वैदिक मन्त्रद्रष्टा

पुराणों में इनके आविर्भाव का तथा उदात्त चरित्र का बड़ा ही सुन्दर वर्णन हुआ है। वहाँ के वर्णन के अनुसार महर्षि अत्रि ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र हैं और उनके चक्षु भाग से इनका प्रादुर्भाव हुआ। सप्तर्षियों में महर्षि अत्रि का परिगणन है। साथ ही इन्हें 'प्रजापति' भी कहा गया है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया जी हैं, जो कर्दम प्रजापति और देवहूति की पुत्री हैं। देवी अनुसूया पतिव्रताओं की आदर्शभूता और महान् दिव्यतेज से सम्पन्न हैं। महर्षि अत्रि जहाँ ज्ञान, तपस्या, सदाचार, भक्ति एवं मन्त्रशक्ति के मूर्तिमान स्वरूप हैं; वहीं देवी अनुसूया पतिव्रता धर्म एवं शील की मूर्तिमती विग्रह हैं। भगवान श्री राम अपने भक्त महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया की भक्ति को सफल करने स्वयं उनके आश्रम पर पधारे। माता अनुसूया ने देवी सीता को पतिव्रत का उपदेश दिया। उन्होंने अपने पतिव्रत के बल पर शैव्या ब्राह्माणी के मृत पति को जीवित कराया तथा बाधित सूर्य को उदित कराकर संसार का कल्याण किया। देवी अनुसूया का नाम ही बड़े महत्त्व का है। अनुसूया नाम है परदोष-दर्शन का –गुणों में भी दोष-बुद्धि का और जो इन विकारों से रहित हो, वही 'अनुसूया' है। इसी प्रकार महर्षि अत्रि भी 'अ+त्रि' हैं अर्थात् वे तीनों गुणों (सत्त्व, रजस, तमस) - से अतीत है- गुणातीत हैं। इस प्रकार महर्षि अत्रि-दम्पति एवं विध अपने नामानुरूप जीवन यापन करते हुए सदाचार परायण हो चित्रकूट के तपोवन में रहा करते थे। अत्रि पत्नी अनुसूया के तपोबल से ही भागीरथी गंगा की एक पवित्र धारा चित्रकूट में प्रविष्ट हुई और 'मंदाकिनी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

सृष्टि के प्रारम्भ में जब इन दम्पति को ब्रह्मा जी ने सृष्टिवर्धन की आज्ञा दी तो इन्होंने उस ओर उन्मुख न हो तपस्या का ही आश्रय लिया। इनकी तपस्या से ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया और दम्पति की प्रार्थना पर इनका पुत्र बनना स्वीकार किया। अत्रि-दम्पति की तपस्या और त्रिदेवों की प्रसन्नता के फलस्वरूप विष्णु के अंश से महायोगी दत्तात्रेय, ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा तथा शंकर के अंश से महामुनि दुर्वासा महर्षि अत्रि एवं देवी अनुसूया के पुत्र रूप में आविर्भूत हुए।

वेदों में उपर्युक्त वृत्तान्त यथावत नहीं मिलता है, कहीं-कहीं नामों में अन्तर भी है। ऋग्वेद में 'अत्रि:सांख्य:' कहा गया है। वेदों में यह स्पष्ट रूप से वर्णन है कि महर्षि अत्रि को अश्विनीकुमारों की कृपा प्राप्त थी। एक बार जब ये समाधिस्थ थे, तब दैत्यों ने इन्हें उठाकर शतद्वार यन्त्र में डाल दिया और आग लगाकर इन्हें जलाने का प्रयत्न किया, किंतु अत्रि को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं था। उस समय अश्विनीकुमारों ने वहाँ पहुँचकर इन्हें बचाया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 51वें तथा 112वें सूक्त में यह कथा आयी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में महर्षि अत्रि के दीर्घ तपस्या के अनुष्ठान का वर्णन आया है और बताया गया है कि यज्ञ तथा तप आदि करते-करते जब अत्रि वृद्ध हो गये, तब अश्विनीकुमारों ने इन्हें नवयौवन प्रदान किया।

ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अत्रि के वसूयु, सप्तवध्रि नामक अनेक पुत्रों का वृत्तान्त आया है, जो अनेक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि रहे हैं। इसी प्रकार अत्रि के गोत्रज आत्रेयगण ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के द्रष्टा हैं।

ऋग्वेद के पंचम 'आत्रेय मण्डल' का 'कल्याण सूक्त' ऋग्वेदीय 'स्वस्ति-सूक्त' है, वह महर्षि अत्रि की ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही हमें प्राप्त हो सका है यह सूक्त 'कल्याण-सूक्त', 'मंगल-सूक्त' तथा 'श्रेय-सूक्त' भी कहलाता है। जो आज भी प्रत्येक मांगलिक कार्यों, शुभ संस्कारों तथा पूजा, अनुष्ठानों में स्वस्ति-प्राप्ति, कल्याण-प्राप्ति, अभ्युदय-प्राप्ति, भगवत्कृपा-प्राप्ति तथा अमंगल के विनाश के लिये सस्वर पठित होता है।

इस मांगलिक सूक्त में अश्विनी, भग, अदिति, पूषा, द्यावा, पृथिवी, बृहस्पति, आदित्य, वैश्वानर, सविता तथा मित्रा वरुण और सूर्य-चंद्रमा आदि देवताओं से प्राणिमात्र के लिये स्वस्ति की प्रार्थना की गयी है। इससे महर्षि अत्रि के उदात्त-भाव तथा लोक-कल्याण की भावना का किंचित स्थापना होता है।

इसी प्रकार महर्षि अत्रि ने मण्डल की पूर्णता में भी सविता देव से यही प्रार्थना की है कि 'हे सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण दु:खों को-अनिष्टों को, शोक-कष्टों को दूर कर दें और हमारे लिये जो हितकर हो, कल्याणकारी हो, उसे उपलब्ध करायें'।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की भावना अत्यन्त ही कल्याणकारी थी और उनमें त्याग, तपस्या, शौच, संतोष, अपरिग्रह, अनासक्ति तथा विश्व कल्याण की पराकष्ठा विद्यमान थी। एक ओर जहाँ उन्होंने वैदिक ऋचाओं का दर्शन किया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी प्रजा को सदाचार और धर्माचरणपूर्वक एक उत्तम जीवनचर्या में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित किया है तथा कर्तव्या-कर्तव्य का निर्देश दिया है। इन शिक्षोपदेशों को उन्होंने अपने द्वारा निर्मित आत्रेय धर्मशास्त्र में उपनिबद्ध किया है। वहाँ इन्होंने वेदों के सूक्तों तथा मन्त्रों की अत्यन्त महिमा बतायी है। अत्रिस्मृति का छठा अध्याय वेदमन्त्रों की महिमा में ही पर्यवसित है। वहाँ अघमर्षण के मन्त्र, सूर्योपस्थान का यह 'उदु त्यं जातवेदसं, मन्त्र, पावमानी ऋचाएँ, शतरुद्रिय, गो-सूक्त, अश्व-सूक्त एवं इन्द्र-सूक्त आदि का निर्देश कर उनकी महिमा और पाठ का फल बताया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि महर्षि अत्रि की वेद मन्त्रों पर कितनी दृढ़ निष्ठा थी। महर्षि अत्रि का कहना है कि वैदिक मन्त्रों के अधिकारपूर्वक जप से सभी प्रकार के पाप-क्लेशों का विनाश हो जाता है। पाठ कर्ता पवित्र हो जाता है, उसे जन्मान्तरीय ज्ञान हो जाता है- जाति-स्मरता प्राप्त हो जाती है और वह जो चाहता है, वह प्राप्त कर लेता है।

अपनी स्मृति के अन्तिम 9वें अध्याय में महर्षि अत्रि ने बहुत सुन्दर बात बताते हुए कहा है कि यदि विद्वेष भाव से वैरपूर्वक भी दमघोष के पुत्र शिशुपाल की तरह भगवान का स्मरण किया जाय तो उद्धार होने में कोई संदेह नहीं; फिर यदि तत्परायण होकर अनन्य भाव से भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याण में क्या संदेह?

इस प्रकार महर्षि अत्रि ने अपने द्वारा द्रष्ट मन्त्रों में, अपने धर्मसूत्रों में अथवा अपने सदाचरण से यही बात बतायी है कि व्यक्ति को सत्कर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

अदिति संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ 'असीम' है। दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं और कश्यप ऋषि को ब्याही थीं। अदिति को 'देवमाता' कहा गया है । मित्र - वरुण, आदित्य, रुद्र, इन्द्र आदि इन्हीं की संतान

बताए गये हैं। आधुनिक दृष्टि से देखें तो अंतरिक्ष से इनका बोध होता है जिसमें सभी आदित्य भ्रमण किया करते हैं।

पौराणिक कथा

हिन्दू पौराणिक कथाओं के वैदिक युग में असीम या अनंत का मानवीकृत रूप और आदित्य नामक स्वर्ण के देवताओं के समूह की माता आदिम देवी के रूप में इन्हें विष्णु सहित कई देवताओं की जननी माना गया है। अदिति आकाश को अवलंब प्रदान करती हैं, सभी जीवों का पालन और पृथ्वी का पोषण करती हैं। पृथिवी को वैदिक भाषा में अदिती कहते है, सूर्य को आदित्य के मान से जानते है ।इस रूप में इन्हें कभी-कभी गाय के रूप में भी दर्शाया जाता है।

अदिति के पुत्र

आमतौर पर उनके पुत्र आदित्यों की संख्या 12 बताई जाती है। (जिन्हें आदित्य देवता के रूप में जानते है जो बारह महिने के रूप में जानते है।) वरुण इनमें प्रमुख हैं। और उनकी ही तरह उन्हें ऋतु (दैवी श्रेणी) का रक्षक माना जाता है। एक श्लोक में उनके नाम वरुण, मित्र आर्यमन, दक्ष, भग और अंश बताए गए हैं। इनमें से कई बार दक्ष को हटाकर इन्द्र, सवितृ (सूर्य) और धातृ को शामिल कर लिया जाता है। कभी-कभी इस शब्द के व्यापक अर्थ में सभी देवताओं को शामिल कर लिया जाता है। जहाँ आदित्यों की संख्या 12 मानी गई है, वहाँ उन्हें वर्ष के 12 सौर महीनों से जोड़ा जाता है। एकवचन के रूप में आदित्य, सूर्य का एक नाम है।

वेदों में

वेद में अदिति को सीमाहीन बताया गया है। पुराण तो आकाश, वायु, माता, पिता, सर्व देवता, सर्व मानव, भूत, वर्तमान, भविष्य सब कुछ अदिति को ही बताते हैं। कश्यप ऋषि की दो पत्नियाँ थीं- अदिति और दिति। अदिति के गर्भ से देव और दिति के गर्भ से दैत्य उत्पन्न हुए। श्रीकृष्ण की माता देवकी 'अदिति का अवतार' बताई जाती हैं।

सती अनुसूया महर्षि अत्रि की पत्नी थीं। अनुसूया का स्थान भारतवर्ष की सती-साध्वी नारियों में बहुत ऊँचा है। इनका जन्म अत्यन्त उच्च कुल में हुआ था। ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को इन्होंने पति के रूप में प्राप्त किया था। अपनी सतत सेवा तथा प्रेम से इन्होंने महर्षि अत्रि के हृदय को जीत लिया था। अत्रि मुनि की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की चौबीस कन्याओं में से एक थीं। इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को तपस्या करके प्रसन्न किया और ये त्रिदेव क्रमशः सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा के नाम से उनके पुत्र बने। अनुसूया पतिव्रत धर्म के लिए प्रसिद्ध हैं। वनवास काल में जब राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचे तो अनुसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी थी।

कथा

भगवान को अपने भक्तों का यश बढ़ाना होता है तो वे नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। श्री लक्ष्मी जी, श्री सती जी और श्री सरस्वती जी को अपने पातिव्रत्य का बड़ा अभिमान था।

सती अनुसूया ने उनसे पूछा-मुनियो! मुझसे कौन-सा ऐसा अपराध हो गया, जो आप लोग मेरे द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण नहीं कर रहे हैं? मुनियों ने कहा-देवि! यदि आप बिना वस्त्र के हमारा आतिथ्य करें तो हम आपके यहाँ भिक्षा ग्रहण करेंगे। यह सुनकर सती अनुसूया सोच में पड़ गयीं। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया।

तीनों देवियों के अंहकार को नष्ट करने के लिये भगवान ने नारद जी के मन में प्रेरणा की। फलत: वे श्री लक्ष्मी जी के पास पहुँचे। नारद जी को देखकर लक्ष्मी जी का मुख-कमल खिल उठा। लक्ष्मी जी ने कहा- 'आइये, नारद जी! आप तो बहुत दिनों बाद आये। कहिये, क्या हाल है?' नारद जी बोले-'माताजी! क्या बताऊँ, कुछ बताते नहीं बनता। अब की बार मैं घूमता हुआ चित्रकूट की ओर चला गया। वहाँ मैं महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचा। माताजी! मैं तो महर्षि की पत्नी अनुसूया जी का दर्शन करके कृतार्थ हो गया। तीनों लोकों में उनके समान पतिव्रता और कोई नहीं है।' लक्ष्मी जी को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने पूछा-'नारद! क्या वह मुझसे भी बढ़कर पतिव्रता है?' नारद जी ने कहा-'माताजी!' आप ही नहीं, तीनों लोकों में कोई भी स्त्री सती अनुसूया की तुलना में किसी भी गिनती में नहीं है।' इसी प्रकार देवर्षि नारद ने सती और सरस्वती के पास जाकर उनके मन में भी सती अनुसूया के प्रति ईर्ष्या की अग्नि जला दी। अन्त में तीनों देवियों ने त्रिदेवों से हठ करके उन्हें सती अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिये बाध्य कर दिया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। तीनों देव मुनि वेष में थे। उस समय महर्षि अत्रि अपने आश्रम पर नहीं थे। अतिथि के रूप में आये हुए त्रिदेवों का सती अनुसूया ने स्वागत-सत्कार करना चाहा, किन्तु त्रिदेवों ने उसे अस्वीकार कर दिया।

त्रिदेव बन गए शिशु

सती अनुसूया ने उनसे पूछा- 'मुनियो! मुझसे कौन-सा ऐसा अपराध हो गया, जो आप लोग मेरे द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण नहीं कर रहे हैं? मुनियों ने कहा- देवि! यदि आप बिना वस्त्र के हमारा आतिथ्य करें तो हम आपके यहाँ भिक्षा ग्रहण करेंगे।' यह सुनकर सती अनुसूया सोच में पड़ गयीं। उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया। वे बोलीं- 'मैं आप लोगों का विवस्त्र होकर आतिथ्य करूँगी। यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ और मैंने कभी भी काम-भाव से किसी पर-पुरुष का चिन्तन नहीं किया हो तो आप तीनों छ:-छ: माह के बच्चे बन जाएँ।' पतिव्रता का इतना कहना था कि त्रिदेव छ:-छ: माह के बच्चे बन गये। माता अनुसूया ने विवस्त्र होकर उन्हें अपना स्तनपान कराया और उन्हें पालने में खेलने के लिये डाल दिया। इस प्रकार त्रिदेव माता अनुसूया के वात्सल्य प्रेम के बन्दी बन गये। इधर जब तीनों देवियों ने देखा कि हमारे पति तो आये ही नहीं तो वे चिन्तित हो गयीं। आख़िर तीनों अपने पतियों का पता लगाने के लिये चित्रकूट गयीं। संयोग से वहीं नारद जी से उनकी मुलाक़ात हो गयी। त्रिदेवियों ने उनसे अपने पतियों का पता पूछा। नारद ने कहा कि वे लोग तो आश्रम में बालक बनकर खेल रहे हैं। त्रिदेवियों ने अनुसूया जी से आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा माँगी। अनुसूया जी ने उनसे उनका परिचय पूछा। त्रिदेवियों ने कहा- 'माता जी! हम तो आपकी बहुएँ हैं। आप हमें क्षमा कर दें और हमारे पतियों को लौटा दें।' अनुसूया जी का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने बच्चों पर जल छिड़ककर उन्हें उनका पूर्व रूप प्रदान किया और अन्तत: उन त्रिदेवों की पूजा-स्तुति की। त्रिदेवों ने प्रसन्न होकर अपने-अपने अंशों से अनुसूया के यहाँ पुत्र रूप में प्रकट होने का वरदान दिया।

संवरण हस्तिनापुर के प्रतापी राजा थे। वे राजा अजमीढ़ के वंशज थे। सुदास का संवरण से युद्ध हुआ था, जिसे कुछ विद्वान ऋग्वेद में वर्णित 'दाशराज्ञ युद्ध' मानते हैं। राजा सुदास के समय पंचाल राज्य का समुचित विस्तार हुआ था। बाद में संवरण के पुत्र 'कुरु' ने शक्ति बढ़ाकर पंचाल राज्य को अपने अधीन कर लिया, तभी से यह राज्य संयुक्त रूप से 'कुरु-पंचाल' कहलाया।

परिचय

हिन्दू धार्मिक ग्रंथ 'महाभारत' के अनुसार हस्तिनापुर में एक प्रतापी राजा था, जिसका नाम संवरण था। संवरण वेदों को मानने वाला और सूर्यदेव का उपासक था। वह जब तक सूर्यदेव की उपासना नहीं कर लेता था, जल का एक घूंट भी कंठ के नीचे नहीं उतारता था।

ताप्ती से भेंट

एक दिन संवरण हिम पर्वत पर हाथ में धनुष-बाण लेकर आखेट के लिए भ्रमण कर रहा था, तभी उसे एक अत्यंत सुंदर युवती दिखाई दी। वह युवती इतनी सुंदर थी कि संवरण उस पर आसक्त हो गया। वह उसके पास जाकर बोला- "तन्वंगी, तुम कौन हो? तुम देवी हो, गंधर्व हो या किन्नरी हो? तुम्हें देखकर मेरा चित्त चंचल और व्याकुल हो उठा। क्या तुम मेरे साथ गंधर्व विवाह करोगी? मैं सम्राट हूँ, तुम्हें हर तरह से सुखी रखूँगा।" युवती ने एक क्षण संवरण को देखा और फिर वह अदृश्य हो गई। युवती के अदृश्य हो जाने पर संवरण अत्यधिक व्याकुल हो गया। वह धनुष-बाण फेंककर उन्मत्तों की भांति विलाप करने लगा।

उसके विलाप के बाद युवती पुनः प्रकट हुई। वह संवरण की ओर देखती हुई बोली- "राजन! मैं स्वयं आप पर मुग्ध हूँ, किंतु मैं अपने पिता की आज्ञा के वश में हूँ। मैं सूर्यदेव की छोटी पुत्री हूँ। मेरा नाम ताप्ती है। जब तक मेरे पिता आज्ञा नहीं देंगे, मैं आपके साथ विवाह नहीं कर सकती। यदि आपको मुझे पाना है तो मेरे पिता को प्रसन्न कीजिए।" युवती अपने कथन को समाप्त करती हुई पुनः अदृश्य हो गई। संवरण पुनः विलाप करने लगा। वह बेसुध होकर ताप्ती को पुकारते-पुकारते गिर पड़ा और बेहोश हो गया। होश में आने पर उसे ताप्ती के द्वारा कही गई बातें याद आईं और वह मन ही मन सोचता रहा कि वह ताप्ती को पाने के लिए सूर्यदेव की आराधना करेगा।

सूर्यदेव द्वारा परीक्षा

संवरण उसी स्थान पर सूर्यदेव की आराधना करने लगा। धीरे-धीरे वर्षों बीत गए, संवरण तप करता रहा। अंत में सूर्यदेव के मन में संवरण की परीक्षा लेने का विचार उत्पन्न हुआ। रात्रि के समय संवरण आंखें बंद किए हुए ध्यानमग्न बैठा था। चारों ओर सन्नाटा था। तभी उसके कानों में किसी का स्वर सुनाई दिया- "संवरण, तू यहाँ तप में संलग्न है। तेरी राजधानी अग्नि में जल रही है।" संवरण बिल्कुल शांत अपनी जगह पर बैठा रहा। उसके मन में रंचमात्र भी दुःख पैदा नहीं हुआ। उसके कानों में पुनः दूसरा स्वर गूँजा- "संवरण, तेरे कुटुंब के सभी लोग अग्नि में जलकर मर गए।" किंतु फिर भी वह हिमालय सा दृढ़ होकर अपनी जगह पर बैठा रहा। उसके कानों में पुनः तीसरी बार कंठ-स्वर पड़ा- "संवरण, तेरी प्रजा अकाल की अग्नि में जलकर भस्म हो रही है। तेरे नाम को सुनकर लोग थू-थू रहे हैं।" फिर भी वह दृढ़तापूर्वक तप में लगा रहा। उसकी दृढ़ता पर सूर्यदेव प्रसन्न हो उठे और

उन्होंने प्रकट होकर कहा- "संवरण, मैं तुम्हारी दृढ़ता पर मुग्ध हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?" संवरण सूर्यदेव को प्रणाम करता हुआ बोला- "देव! मुझे आपकी पुत्री ताप्ती को छोड़कर और कुछ नहीं चाहिए। कृपा करके मुझे ताप्ती को देकर मेरे जीवन को कृतार्थ कीजिए।" सूर्यदेव ने प्रसन्नता की मुद्रा में उत्तर दिया, 'तथास्तु।'

कुरु का जन्म

संवरण अपनी पत्नी ताप्ती के साथ उसी दूसरे राज्य के सुंदर क्षेत्र में रहने लगा और राग-रंग में अपनी प्रजा और राज्य को भी भूल गया। उधर संवरण के राज्य में भीषण अकाल पैदा हुआ और जैसा-जैसा सूर्यदेव ने कहा था, वैसा-वैसा होने लगा। संवरण के मंत्री ने अपने राजा की खोज की और उन्हें राज्य का संपूर्ण हाल बताया। मंत्री ने अपनी बुद्धिमानी से संवरण को स्वप्नलोक से बाहर निकाला और अपने राज्य के प्रति जिम्मेदारी का अहसास कराया। मंत्री की बातें सुनकर संवरण का हृदय कांप गया और उसे इस बात का बोध होने लगा की मैंने एक स्त्री के प्रति आसक्त होकर अपनी प्रजा और राज्य को छोड़ दिया। संवरण ने कहा- "मंत्रीजी। मैं आपका कृतज्ञ हूँ, आपने मुझे जगाकर बहुत अच्छा किया।" संवरण ताप्ती के साथ अपनी राजधानी पहुँचा। उसके राजधानी में पहुँचते ही जोरों की वर्षा हुई। सूखी हुई पृथ्वी हरियाली से ढंक गई। अकाल दूर हो गया। प्रजा सुख और शांति के साथ जीवन व्यतीत करने लगी। वह संवरण को परमात्मा और ताप्ती को देवी मानकर दोनों की पूजा करने लगी। संवरण और ताप्ती से ही 'कुरु' का जन्म हुआ।

3 वैदिक ऋषि महर्षि अगस्त

महर्षि अगस्त्य वैदिक ऋषि थे। ये वशिष्ठ मुनि के बड़े भाई थे। उनका जन्म श्रावण शुक्ल पंचमी को काशी में हुआ था। वर्तमान में यह स्थान अगस्त्यकुंड के नाम से प्रसिद्ध है। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा विदर्भ देश की राजकुमारी थीं। अगस्त्य को सप्तर्षियों में से एक माना जाता है। देवताओं के अनुरोध पर उन्होंने काशी छोड़कर दक्षिण की यात्रा की और बाद में वहीं बस गये थे। ब्रह्मतेज के मूर्तिमान स्वरूप महामुनि अगस्त्य जी का पावन चरित्र अत्यन्त उदात्त तथा दिव्य है। वेदों में उनका वर्णन आया है।

ऋग्वेद का कथन है कि मित्र तथा वरुण नामक वेदताओं का अमोघ तेज एक दिव्य यज्ञिय कलश में पुंजीभूत हुआ और उसी कलश के मध्य भाग से दिव्य तेज:सम्पन्न महर्षि अगस्त्य का प्रादुर्भाव हुआ-

"सत्रे ह जाताविषिता नमोभि: कुंभे रेत: सिषिचतु: समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो ज्ञातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥"

यहां पर यह स्पस्ट रूप से कहा जारहा है कि यह विज्ञान का एक तरिका है जिसको क्लोनिग के नाम से जानते है इसी प्रकार से सर्व प्रथम श्रृष्ठि के प्रारम्भ में सभी स्त्री पुरुष का जन्म हुआ यहां कुम्भ का मतलब है वैज्ञानिक प्रयोग शाला जो परखनली से कुछ उच्य गुणवत्ता वाली होती है। वेदों में किसी प्रकार का कोई इतिहास नहीं है वेद के प्रत्येक मंत्र में सुक्ष्म विज्ञान है वेदों के मंत्रों का अर्थ तिन प्रकार के निकलते है भौतिक, दैविक, और आध्यत्मिक वेदों के शब्दों के आधार पर सभी वस्तुओं का नाम करण किया गया है।

इस ऋचा के भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा है-

"ततो वासतीवरात् कुंभात् मध्यात् अगस्त्यो शमीप्रमाण उदियाप प्रादुर्बभूव। तत एव कुंभाद्वसिष्ठमप्यृषिं जातमाहु:॥"

इस प्रकार कुंभ से अगस्त्य तथा महर्षि वसिष्ठ का प्रादुर्भाव हुआ।

एक यज्ञ सत्र में उर्वशी भी सम्मिलित हुई थ।(ज्ञान की कमी और बिना सोध के कारण अर्थ का अनर्थ कर दिया है उर्वशि का एक वैदिक आर्थ में पृथिवी भी होता है और मित्र वरुण सूर्य के द्वारा निकलने वाली विद्युतिय किरणें है जिन्हे हम सब एसी और डीसी के रूप में जानते है यह शक्ति का उर्जा का नाम करण है इनसे ही पृथिवी पर जीवन है इसको अस्लिल बनाया गया है ऐसे ही बहुत सारी पुराणों की कहानि के पिछे वैज्ञानिक जाकारियां है) मित्र वरुण ने उसकी ओर देखा तो इतने आसक्त हुए कि अपने वीर्य को रोक नहीं पाये। उर्वशी ने उपहासात्मक मुस्कराहट बिखेर दी। मित्र वरुण बहुत लज्जित हुए। कुंभ का स्थान, जल तथा कुंभ, सब ही अत्यंत पवित्र थे। यज्ञ के अंतराल में ही कुंभ में स्खलित वीर्य (विर्य को उर्जा या शक्ती भी कहते है) के कारण कुंभ से अगस्त्य, स्थल में वसष्टि तथा जक (जैविक प्रक्रिया का कारण जीन से) में मत्स्य का जन्म हुआ। उर्वशी इन तीनों की मानस जननी मानी गयी।

पुराणों में यह कथा आयी है कि महर्षि अगस्त्य (पुलस्त्य) की पत्नी महान् पतिव्रता तथा श्री विद्या की आचार्य हैं, जो 'लोपामुद्रा' के नाम से विख्यात हैं। आगम-ग्रन्थों में इन दम्पत्ति की देवी साधना का विस्तार से वर्णन आया है।

महर्षि अगस्त्य महातेजा तथा महातपा ऋषि थे। समुद्रस्थ राक्षसों के अत्याचार से घबराकर देवता लोग इनकी शरण में गये और अपना दु:ख कह सुनाया। फल यह हुआ कि ये सारा समुद्र पी गये, जिससे सभी राक्षसों का विनाश हो गया। इसी प्रकार इल्वल तथा वातापि नामक दुष्ट दैत्यों द्वारा हो रहे ऋषि-संहार को इन्होंने बंद किया और लोक का महान् कल्याण हुआ। (यहां वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से समन्दर के जल को कुछ समय के लिये वास्पित किया गया यह सम्भव था। उस समय क्योंकि अगस्त ने यह कार्य करोणों साल पहले किया था, उस वक्त समन्दर का इतना विस्तार जमिन पर नहीं था। आज जितना जमिन सहारा का रेगिस्तान है उतना ही हिस्सा समन्दर का था। बाकि सभी जमिन बर्फ से ढकी थी और वह भी बहुत कठोर स्थिती में थी जो पिघत नहीं रही थी यद्यपि तिब्रता से पानी जम रहा था। उस समय जो दुस्ट प्रकृति के राक्षस लोग इतने वैज्ञानिक सुबिधा सम्पन्न थे जो समन्दर के अन्दर रहते थे । और वह देवताओं पर आक्रमण करते थे जिनसे देवता परेशान बहुत अधिक हो चुके थे । उनके आग्रह से अगस्त ऋषि ने पानी को सुखा कर उनके आतंक को खत्म किया। जैसा कि एक समय पर जर्मनि और जापान से इतना अधिक अमेरिका और इग्लैण्ड की सरकारें परेशान थी। तो उन्होने आंइस्टिन को अपने यहां पनाह दिया और परमाणु के बहुत छोटे बम्ब को बनवा कर जापान को शान्त किया आज तो बहुत खतरनाक बम है। इनकी ताकत को बढ़ा कर समन्दर के पानी को गरम करके वास्पित कर सकते है।) इस प्रकार के अनेक असम्भव कार्य महर्षि अगस्त्य ने अपनी मन्त्र शक्ति से सहज ही कर दिखाया और लोगों का कल्याण किया। भगवान श्रीराम वनगमन के समय इनके आश्रम पर पधारे थे। भगवान ने उनका ऋषि-जीवन कृतार्थ किया। भक्ति की प्रेम महामुनि सुतीक्ष्ण इन्हीं अगस्त्य जी के शिष्य थे। अगस्त्य संहिता आदि अनेक ग्रन्थों का इन्होंने प्रणयन किया, जो तान्त्रिक साधकों के लिये महान् उपादेय है। यह अगस्त ऋषि जो राम से मिले यह वह वहीं थे जो समन्गर को सुखाया था जो वेद के मंत्रो का साक्षात्कार किया

था ऐसे बहुत ऋषि हुए इनके नाम कि परम्परा दूर तक आइ है जैसे व्यास, वषिष्ठ, अग्नी, आदित्य, अंगिरा, वायु, पुलुस्त, इत्यादि।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि महर्षि अगस्त्य ने अपनी तपस्या से अनेक ऋचाओं के स्वरूपों का दर्शन किया था, इसलिये ये मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेद के अनेक मन्त्र इनके द्वारा दृष्ट हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 165 सूक्त से 191 तक के सूक्तों के द्रष्टा ऋषि महर्षि अगस्त्य जी हैं। साथ ही इनके पुत्र दृढच्युत तथा दृढच्युत के पुत्र इध्मवाह भी नवम मण्डल के 25वें तथा 26वें सूक्त के द्रष्टा ऋषि हैं। महर्षि अगस्त्य और लोपामुद्रा आज भी पूज्य और वन्द्य हैं, नक्षत्र-मण्डल में ये विद्यमान हैं। दूर्वाष्टमी आदि व्रतोपवासों में इन दम्पति की आराधना-उपासना की जाती है।

महर्षि अगस्त्य का समुंद्र पान

इल्वल और वातापि

वैशम्पायन जी कहते हैं- जनमेजय! तदनन्तर प्रचुर दक्षिणा देने वाले कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर ने गया से प्रस्थान किया और अगस्त्याश्रम में जाकर दुर्जय मणिमती नगरी में निवास किया। वहीं वक्ताओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने महर्षि लोमश से पूछा- "ब्रह्मन्! अगस्त्य जी ने यहाँ वातापि को किसलिये नष्ट किया? मनुष्यों का विनाश करने वाले उस दैत्य का प्रभाव कैसा था? और महात्मा अगस्त्यजी के मन में क्रोध का उदय कैसे हुआ।"

लोमश जी ने कहा- पांडुनन्दन! पूर्वकाल की बात है, इस मणिमती नगरी में इल्वल नामक दैत्य रहता था वातापि उसी का छोटा भाई था। एक दिन दितिनन्दन इल्वल ने एक तपस्वी ब्राह्मण से कहा- "भगवन! आप मुझे ऐसा पुत्र दें, जो इन्द्र के समान पराक्रमी हो।" उन ब्राह्मण देवता ने इल्वल को इन्द्र के समान पुत्र नहीं दिया। इससे वह असुर उन ब्राह्मण देवता पर बहुत कुपित हो उठा। राजन! तभी से इल्वल दैत्य क्रोध में भरकर ब्राह्मणों की हत्या करने लगा।

वह मायावी अपने भाई वातापि को माया से बकरा बना देता था। वातापि भी इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ था! अत: वह क्षणभर में मेंड़ा और बकरा बन जाता था। फिर इल्वल उस भेड़ या बकरे को पकाकर उसका मांस राँधता और किसी ब्राह्मण को खिला देता था। इसके बाद वह ब्राह्मण को मारने की इच्छा करता था। इल्वल में यह शक्ति थी कि वह जिस किसी भी यमलोक में गये हुए प्राणी को उसका नाम लेकर बुलाता, वह पुन: शरीर धारण करके जीवित दिखायी देने लगता था। उस दिन वातापि दैत्य को बकरा बनाकर इल्वल ने उसके मांस का संस्कार किया और उन ब्राह्मण देव को वह मांस खिलाकर पुन: अपने भाई को पुकारा। राजन! इल्वल के द्वारा उच्च स्वर से बोली हुई वाणी सुनकर वह अत्यन्त मायावी ब्राह्मणशत्रु बलवान महादैत्य वातापि उस ब्राह्मण की पसली को फाड़कर हँसता हुआ निकल आया। राजन! इस प्रकार दुष्टहृदय इल्वल दैत्य बार-बार ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने भाई द्वारा उनकी हिंसा करा देता था।

विवाह

एक बार अगस्त्य मुनि कहीं चले जा रहे थे। उन्होंने एक जगह अपने पितरों को देखा, जो एक गड्ढे में नीचे मुँह किये लटक रहे थे। तब उन लटकते हुए पितरों से अगस्त्य जी ने पूछा- "आप लोग यहाँ किसलिये नीचे मुँह किये काँपते हुए से लटक रहे है।" यह सुनकर उन वेदवादी पितरों ने उत्तर दिया- "संतान परम्परा के लोप की सम्भावना के कारण हमारी यह दुर्दशा हो रही है।" अपने पितरों की यह दुर्दशा देखने के बाद अगस्त्य मुनि ने विवाह करने का निश्चय किया। अगस्त्य ने एक अनुपम शिशु की रचना की और उन्हीं दिनों विदर्भ-नरेश भी सन्तान-प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या करने में लीन थे। मैंने जिस शिशु की रचना की है, वही इस नरेश की पुत्री के रूप में जन्म लेगी। छः महीनों बाद रानी ने एक कन्या को जन्म दिया। राजा की खुशी का ठिकना न रहा। ब्राह्मण श्रेष्ठ! मेरी तपस्या सफल हुई। मुझे एक कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई है।

बालिका का सौन्दर्य देखकर ब्राह्मणगण मुग्ध रह गये। यह बालिका लोपामुद्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई। लोपामुद्रा बड़ी होकर अद्वितीय सुन्दरी और परम चरित्रवती के रूप में विकसित हुई। अगस्त्य मुनि राजा के पास पहुँचे और उन्होंने कहा कि मैं आपकी पुत्री से विवाह करना चाहता हूँ। राजा ये बात सुनकर चिन्ता में डूब गए। उसी समय लोपामुद्रा राजा के पास आयी और बोली- "पिता जी, आप दुविधा में क्यों पड़ गये? मैं ऋषिवर से विवाह करने के लिए प्रस्तुत हूँ।" लोपामुद्रा और अगस्त्य मुनि का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह के पश्चात् अगस्त्य मुनि ने लोपामुद्रा से कहा कि- "तुम्हारे ये राजकीय वस्त्र ऋषि-पत्नी को शोभा नहीं देते। इनका परित्याग कर दो।" लोपामुद्रा ने कहा- "जो आज्ञा, स्वामी! अब से मैं छाल, चर्म और वल्कल ही धारण करूँगी।" कुछ समय बाद लोपामुद्रा ने कहा- "स्वामी मेरी एक इच्छा है।" ऋषि बोले- "कहो, क्या इच्छा है तुम्हारी?" लोपामुद्रा ने कहा- "हम ठहरे गृहस्थ! हमारे लिए धन से सम्पन्न होना कोई अपराध न होगा। प्रभु, मै उसी तरह रहना चाहती हूँ, जैसे अपने पिता के घर रहती थी।" ऋषि बोले- "अच्छा तो मैं धन-प्राप्ति के लिए जाता हूँ। तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करना।" अगस्त्य चल पड़े। मैं राजा श्रुतर्वा के पास चलूँ। कहते हैं, वे अत्यन्त समृद्ध हैं।

जब अगस्त्य राजा श्रुतर्वा के दरबार में पहुँचे तो महाराज श्रुतर्वा ने पूछा- "महात्मन, बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" अगस्त्य बोले- "मैं तुमसे कुछ धन माँगने आया हूँ। तुम अपनी सामर्थ्य के अनुसार मुझे धन प्रदान करो।" राजा ने कहा- "मेरे पास देने को अतिरिक्त धन नहीं है। फिर भी जो है, उसमें से आप इच्छानुसार ले सकते हैं।" अगस्त्य ऋषि नीतिवान थे। अगर मैं इस राजा से कुछ लेता हूँ, तो दूसरों को उससे वंचित होना पड़ेगा। उन्होंने श्रुतर्वा से कहा- "मैं तुमसे कुछ नहीं ले सकता। आओ, हम राजा बृहदस्थ के पास चलें।" लेकिन रजा बृहदस्थ के पास भी देने लायक़ अतिरिक्त धन नहीं था। ऋषि अगस्त्य ने कहा- "शायद, राजा त्रसदस्यु मेरी कुछ सहायता कर सकें। आओ, हम सब उनके पास चलें।" लेकिन जब वे लोग राजा त्रसदस्यु के यहाँ पहुँचे तो राजा त्रसदस्यु भी उनको धन देने में असमर्थ रहे। तीनों राजा एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। अन्त में उन्होंने समवेत स्वर में कहा- "यहाँ इल्वल नामक एक असुर रहता है, जिसके पास अथाह धन है। आइये, हम उसके पास चलें।" इल्वल महाधूर्त राक्षस था। उसका एक भाई भी था, जिसका नाम वातापि था। वे दोनों ही ब्राह्मणों से घृणा करते थे और ब्राह्मणों की हत्या का उन्होंने संकल्प ले रखा था। जब अगस्त्य तीनों राजाओं के साथ इल्वल के साम्राज्य में पहुँचे, वह उनके स्वागत के लिए तैयार बैठा था। उनके वहाँ पहुँचते ही उसने कहा- "आइये, आप सबका स्वागत है। मैंने आपके लिए विशेष भोजन तैयार करवाया

है।" तीनों राजाओं को आशंका हुई। हमें अगस्त्य मुनि को सावधान कर देना चाहिए। जब उन्होंने ऋषि को बताया तो ऋषि ने कहा- "चिन्ता मत करो। मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा।" अगस्त्य ने भोजन शुरू किया। सचमुच ऐसा स्वादिष्ट भोजन पहली बार खाने को मिला।

जब ऋषि अगस्त्य ने अन्तिम कौर ग्रहण किया तो इल्वल ने वातापि को आवाज़ दी। वातापि बाहर आओ। इल्वल क्रोध से पागल हो उठा। अगस्त्य बोले- "अब वह कैसे बाहर आ सकता है? मैं तो उसे खाकर पचा भी गया।" इल्वल ने अपनी हार स्वीकार कर ली। उसने अगस्त्य से कहा- "आपका किस उद्देश्य से आना हुआ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" अगस्त्य बोले- "हमें पता है कि तुम बड़े धनवान हो। इन राजाओं को और मुझे धन चाहिए। औरों को वंचित किए बिना जो भी दे सकते हो हमें दे दो।" इल्वल पल-भर को चुप रहा। फिर उसने कहा कि- "मैं हर एक राजा को दस-दस हज़ार गायें और उतनी ही मुहरें दूँगा और अगस्त्य ऋषि को बीस हज़ार गायें और उतनी ही मुहरें दूँगा, इसके अलावा मैं उनकी सेवा में अपना सोने का रथ और घोड़े भी अर्पित कर दूँगा। आप ये सारी वस्तुएँ स्वीकार करें।" इल्वल के घोड़े धरती पर वायु-वेग से दौड़ते हैं। वे लोग पल-भर में ही ऋषि अगस्त्य के आश्रम पहुँच गये। अब राजाओं ने ऋषि अगस्त्य से जाने की आज्ञा माँगी और ऋषि ने उन्हें जाने की आज्ञा दे दी। उन लोगों के जाने के बाद ऋषि अगस्त्य लोपामुद्रा के पास गये और कहा कि- "लोपामुद्रा, जो तुम चाहती थीं वह मैं ले आया। अब हम तुम्हारी इच्छानुसार जीवन बिताएँगे।" कई वर्षों बाद लोपामुद्रा ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस प्रकार ऋषि अगस्त्य ने अपने पितरों को दिया हुआ वचन पूरा किया।

4 – वैदिक ऋषि अंगिरस

अंगिरस अथवा अंगिरा नाम के ऋषि का उल्लेख वेदों से लेकर अनेक पुराणों में मिलने से अनुमान लगाया जाता है कि यह एक नहीं, अनेक व्यक्तियों का नाम है। इन्हें ऋग्वेद के अनेक मंत्रों का द्रष्टा बताया जाता है। अथर्ववेद के पाँच कल्पों में से अंगिरस कल्प के दृष्टा भी यही हैं। इसलिए इनका एक नाम अथर्वा भी है। एक उल्लेख के अनुसार अग्नि को भी सर्वप्रथम अंगिरा ने ही उत्पन्न किया था। वाणी और छंद के प्रथम ज्ञाता भी यही बताए गए हैं। यह भी उल्लेख मिलता है कि, पहले ये मनुष्य योनि में थे, जो बाद में देवता बन गए।

अथर्ववेद, वैष्णव सम्प्रदाय, गीता कर्म जिज्ञासा, चार्वाक दर्शन, बृहदारण्यकोपनिषद, भृगु, छान्दोग्य उपनिषद, ऋभुगण एवं राष्ट्रकूट वंश

उत्पत्ति

अंगिरस शब्द का निर्माण उसी धातु से हुआ है, जिससे अग्नि का और एक मत से इनकी उत्पत्ति भी आग्नेयी (अग्नि की कन्या) के गर्भ से मानी जाती है। मतांतर से इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से मानी जाती है। श्रद्धा, शिवा, सुरूपा मारीची एवं दक्ष की स्मृति, स्वधा तथा सती नामक कन्याएँ इसकी पत्नियाँ मानी जाती हैं, परंतु ब्रह्मांड एवं वायु पुराणों में सुरूपा मारीची, स्वराट् कार्दमी और पथ्या मानवी को अथर्वन की पत्नियाँ कहा गया है। अथर्ववेद के प्रारंभकर्ता होने के कारण इनकी अथर्वा भी कहते हैं।

मनुस्मृति के अनुसार

मनुस्मृति में भी यह कथा है कि आंगिरस नामक एक ऋषि को छोटी अवस्था में ही बहुत ज्ञान हो गया था; इसलिए उसके काका–मामा आदि बड़े बूढ़े नातीदार उसके पास अध्ययन करने लग गए थे। एक दिन पाठ पढ़ाते–पढ़ाते आंगिरस ने कहा पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्। बस, यह सुनकर सब वृद्धजन क्रोध से लाल हो गए और कहने लगे कि यह लड़का मस्त हो गया है! उसको उचित दण्ड दिलाने के लिए उन लोगों ने देवताओं से शिकायत की। देवताओं ने दोनों ओर का कहना सुन लिया और यह निर्णय लिया कि 'आंगिरस ने जो कुछ तुम्हें कहा, वही न्याय है।' इसका कारण यह है किः–

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।

यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः।।

'सिर के बाल सफ़ेद हो जाने से ही कोई मनुष्य वृद्ध नहीं कहा जा सकता; देवगण उसी को वृद्ध कहते हैं जो तरुण होने पर भी ज्ञानवान हो'

स्वायंभुव मन्वंतर

स्वायंभुव मन्वंतर में अंगिरा को ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न बताया गया है। दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री स्मृति का इनसे विवाह किया था। वैवस्वत मन्वंतर में ये शंकर के वरदान से उत्पन्न हुए और अग्नि ने अपने पुत्र के समान इनका पालन–पोषण किया। चाक्षुष मन्वंतर में दक्ष प्रजापति की कन्याएँ सती और स्वधा इनकी पत्नियाँ थीं। भागवत में स्यमंतक मणि की चोरी के प्रसंग में इनके श्री कृष्ण से मिलने का भी उल्लेख आया है। शर–शैया पर पड़े भीष्म पितामह के दर्शनों के लिए भी अपने शिष्यों के साथ गए थे। स्मृतिकारों ने अंगिरस के धर्मशास्त्र का उल्लेख किया है। महाभारत में भी 'अंगिरस स्मृति' का उल्लेख मिलता है। उपनिषद में इनको ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है, जिन्हें ब्रह्म विद्या प्राप्त हुई। शौनक को इन्होंने विद्या के दो रूपों परा (वेद, व्याकरण आदि का ज्ञान) तथा अपरा (अक्षर का ज्ञान) से परिचित कराया था। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक में एक नाम का उल्लेख सिद्ध करता है कि इस नाम की या तो कोई वंश परम्परा थी या कोई गद्दी। इनका कुल जिसमें भारद्वाज और गौतम भी हुए, 'आग्नेय' नाम से प्रसिद्ध था।

जीवनसार

अथर्ववेद का प्राचीन नाम अथर्वांनिरस है। इनके पुत्रों के नाम हविष्यत्, उतथ्य, बृहस्पति, बृहत्कीर्ति, बृहज्ज्योति, बृहद्ब्रह्मन् बृहत्मंत्र; बृहद्भास, मार्कंडेय और संवर्त बताए गए हैं और भानुमती, रागा (राका), सिनी वाली, अर्चिष्मती (हविष्मती), महिष्मती, महामती तथा एकानेका (कुहू) इनकी सात कन्याओं के भी उल्लेख मिलते हैं। नीलकंठ के मत से उपर्युक्त बृहत्कीत्यादि सब बृहस्पति के विशेषण हैं। आत्मा, आयु, ऋतु, गविष्ठ, दक्ष, दमन, प्राण, सद, सत्य तथा हविष्मान् इत्यादि को अंगिरस के देवपुत्रों की संज्ञा से अभिहित किया गया है। भागवत के अनुसार रथीतर नामक किसी निस्संतान क्षत्रिय को पत्नी से इन्होंने ब्राह्मणोपम पुत्र उत्पन्न किए थे। याज्ञवल्क्य स्मृति में अंगिरसकृत धर्मशास्त्र का भी उल्लेख है। अंगिरा की बनाई आंगिरसी श्रुति का महाभारत में उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के ऋषि अंगिरा हैं।

5 – वैदिक ऋषि मनु महाराज

मनु जो एक धर्मशास्त्रकार थे, धर्मग्रन्थों के बाद धर्माचरण की शिक्षा देने के लिये आदिपुरुष स्वयंभुव मनु ने स्मृति की रचना की जो मनुस्मृति के नाम से विख्यात है। ये ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से थे जिनका विवाह ब्रह्मा के दाहिने भाग से उत्पन्न शतरूपा से हुआ था। उत्तानपाद जिसके घर में ध्रुव पैदा हुआ था, इन्हीं का पुत्र था। मनु स्वायंभुव का ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत पृथ्वी का प्रथम क्षत्रिय माना जाता है। इनके द्वारा प्रणीत 'स्वायंभुव शास्त्र' के अनुसार पिता की संपत्ति में पुत्र और पुत्री का समान अधिकार है। इनको धर्मशास्त्र का और प्राचेतस मनु अर्थशास्त्र का आचार्य माना जाता है। मनुस्मृति ने सनातन धर्म को आचार संहिता से जोड़ा था।

परिचय

आपव नामक प्रजापति के धर्म से अयोनिज कन्या शतरूपा का जन्म हुआ। आपव (जो कि बाद में स्वायंभुव मनु कहलाये) ने प्रजा की रचना करने के उपरांत शतरूपा को अपनी पत्नी बना लिया। उसके पुत्र का नाम वीर हुआ। वीर ने प्रजापति कर्दम की कन्या काम्या से विवाह किया तथा दो पुत्रों को जन्म दिया- (1) प्रियव्रत तथा (2) उत्तानपाद। मनु की विस्तृत संतति में ही ध्रुव, वेन इत्यादि हुए। वेन से मनुगण बहुत रुष्ट थे क्योंकि वह अनाचारी था। मुनियों ने उसके दाहिने हाथ का मंथन किया, जिससे राजा पृथु का जन्म हुआ। वे राजसूय यज्ञ करने वाले राजाओं में सर्वप्रथम था। प्रजाओं को जीविका देने की इच्छा से उसने पृथ्वी से अन्न तथा दूध का दोहन आरंभ किया जा सके। साथ-साथ राक्षस, पितर, देवता, अप्सरा, नाग इत्यादि सब इस कर्म में लग गये। कालांतर में उसके दो पुत्र हुए अंतर्धान तथा पातिन। अंतर्धान से शिखंडिनी ने हविर्धान को जन्म दिया। अग्नि की पुत्री धिषणा से हविर्धान ने छह पुत्रों को जन्म दिया- प्राचीनवर्हिस्, शुक्र, गय, कृष्ण, ब्रज और अजिन। प्राचीनवर्हिस ने घोर तप करके समुद्र-कन्या सवर्णा से विवाह किया। उसके दस पुत्र हुए जो एक ही धर्म का पालन करते थे। वे प्रचेता नाम से विख्यात हुए।

ब्रह्मा चिंतातुर थे। 'संभवत: देव ही नहीं चाहता कि सृष्टि का विस्तार हो, अन्यथा इतने प्रयत्न के उपरांत भी मैं सृष्टि का विस्तार नहीं कर पा रहा हूं।' उनके ऐसा सोचते ही उनका शरीर 'क' कहलाता है। अत: दोनों भाग काय (शरीर) कहलाये। उनमें से एक मनु (पुरुष) था, दूसरी शतरूपा (स्त्री) थी। स्वायंभुव मनु ने शतरूपा से पांच संतान प्राप्त कीं: दो पुत्र- प्रियव्रत, उत्तानपाद तथा तीन कन्याएं- आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। मनु ने ब्रह्मा से पूछा कि वे प्रजा के निवास के लिए कौन-सा स्थान ठीक समझते हैं? ब्रह्मा ने चिंतन आरंभ किया, अत: जल में डूबी हुई पृथ्वी को जल के ऊपर लाने का कार्य विष्णु (बाराह) ने किया।

मनु का उल्लेख ऋग्वेद काल से ही मानव सृष्टि के आदि प्रवर्तक और समस्त मानव जाति के आदि-पिता के रूप में किया जाता रहा है। इन्हें 'आदिपुरुष' भी कहा गया है। आरंभ में मनु और यम का अस्तित्व अभिन्न था। बाद में मनु को जीवित मनुष्यों का और यम को दूसरे लोक में, मृत मनुष्यों का आदिपुरुष माना गया।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार एक मछली ने मनु से प्रलय की बात कही थी और बाद में इन्हीं से सृष्टि चली। अन्यत्र ये विराट के पुत्र बताए गए हैं जिनसे प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। मत्स्य पुराण मनु को 'मनुस्मृति' का रचयिता और एक शास्त्र प्रवर्तक मानता है। पुराणों के अनुसार मनु चौदह हुए हैं।

वैदिक संहिताओं में मनु को ऐतिहासिक व्यक्ति माना गया है। ये सर्वप्रथम मानव था जो मानव जाति के पिता तथा सभी क्षेत्रों में मानव जाति के पथ प्रदर्शक स्वीकृत हैं। वैदिक कालीन जलप्लावन की कथा के नायक मनु ही है।

मनु को विवस्वान [5] या वैवस्वत [6], विवस्वन्त (सूर्य) का पुत्र; सावर्णि (सवर्णा का वंशज) एवं सांवर्णि [7]संवरण का वंशज) कहते हैं। प्रथम नाम पौराणिक है, जबकि दूसरे नाम ऐतिहासिक हैं। सावर्णि को लुड्विग तुर्वसुओं का राजा कहते हैं, किन्तु यह मान्यता सन्देहपूर्ण है। पुराणों में मनु को मानव जाति का गुरु तथा प्रत्येक मन्वन्तर में स्थित कहा गया है। वे जाति के कर्त्तव्यों (धर्म) के ज्ञाता है।

भगवद्गीता (10.6) भी मनुओं का उल्लेख करती है। मनु नामक अनेक उल्लेखों से प्रतीत होता है कि यह नाम न होकर उपाधि है। मनु शब्द का मूल मन् धातु (मनन करना) से भी यही प्रतीत होता है। मेधातिथि, जो मनुस्मृति के भाष्यकार हैं, मनु को उस व्यक्ति की उपाधि कहते हैं, जिसका नाम प्रजापति है। वे धर्म के प्रकृत रूप के ज्ञाता थे एवं मानव जाति को उसकी शिक्षा देते थे। इस प्रकार यह विदित होता है कि मनु एक उपाधि है।

मनुरचित 'मानव धर्मशास्त्र' भारतीय धर्मशास्त्र में आदिम व मुख्य ग्रंथ माना जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ मानव धर्मशास्त्र के अवतरण आये हैं वे सूत्र रूप में हैं और प्रचलित मनुस्मृति के श्लोकों से नहीं मिलते। वह सूत्रग्रन्थ 'मानव धर्मशास्त्र' अभी तक देखने में नहीं आया। वर्तमान मनुस्मृति को उन्हीं मूल सूत्रों के आधार पर लिखी हुई कारिका मान सकते हैं। वर्तमान सभी स्मृतियों में यह प्रधान समझी जाती है।

5-- वैदिक महापुरुष

1नल दमयन्ती की सुक्ष्म कथा

निषध देश में वीरसेन के पुत्र नल नाम के एक राजा थे। बहुत सुन्दर और गुणवान थे। वे सभी तरह की अस्त्र विद्या में भी बहुत निपुण थे। उन्हें जूआ खेलने का भी थोड़ा शौक था। उन्हीं दिनों विदभग् देश में भीमक नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे भी नल के समान ही सर्वगुण सम्पन्न थे। उन्होंने दमन ऋषि को प्रसन्न करके उनके वरदान से चार संतान प्राप्त की थी- तीन पुत्र और एक कन्या । पुत्रों के नाम थे दम,दान्त व दमन पुत्री का नाम था दमयन्ती। दमयन्ती लक्ष्मी के समान रूपवन्ती थी। बड़ी-बड़ी आंखे थी। उस समय देवताओं और यक्षों मे कोई भी कन्या इतनी रूपवती नहीं थी।

उन दिनों कितने ही लोग उस देश में आते और राजा नल से दमयन्ती के गुणों का बखान करते। एक दिन राजा नल ने अपने महल के उद्यान में कुछ हंसों को देखा। उन्होंने एक हंसे को पकड़ लिया। हंस ने कहा आप मुझे छोड़ दीजिए तो हम लोग दमयन्ती के पास जाकर आपके गुणों का ऐसा वर्णन करेंगे कि वह आपको जरूर वर लेगी। वे सब हंस उड़कर राजकुमारी दमयन्ती के पास गए। दमयन्ती उन्हें देखकर बहुत खुश हुई। हंसों को पकडने के लिए

दौडऩे लगी। दमयन्ती जिस हंस को पकड़कर दौड़ती। वही हंस बोल उठता- रानी दमयन्ती निषध देश का एक नल नाम का राजा है। वह राजा बहुत सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। वह मानो साक्षात कामदेव का स्वरूप है। यदि तुम उसकी पत्नी बन जाओ तो तुम्हारा जन्म और रूप दोनों सफल हो जाए। वह अश्विनी कुमार के समान सुन्दर है। मनुष्यों में उसके समान सुंदर और कोई नहीं है। जैसे तुम स्त्रियों में रत्न हो, वैसे ही नल पुरुषों को भूषण है। तुम दोनों की जोड़ी बहुत सुंदर है। दमयन्ती ने कहा- हंस तुम नल से भी ऐसी ही बात कहना। हंस ने लौटकर राजा नल को उनका संदेश दिया। दमयन्ती हंस के मुंह से राजा नल की कीर्ति सुनकर उनसे प्रेम करने लगी। उसकी आसक्ति इतनी बढ़ गई कि वह रात दिन उनका ही ध्यान करती रहती। शरीर धूमिल और दुबला हो गया। वे कमजोर सी दिखने लगी। सहेलियों ने दमयन्ती के मन के भाव जानकर राजा से निवेदन किया कि आपकी पुत्री अस्वस्थ्य हो गई हैं। राजा ने बहुत विचार किया और अंत में इस निर्णय पर पहुंचा कि मेरी पुत्री विवाह योग्य हो गई है। दमयन्ती के पिता ने सभी देशों के राजा को स्वयंवर के लिए निमंत्रण पत्र भेज दिया और सूचित कर दिया। सभी देश के राजा हाथी व घोड़ों के रथों से वहां पहुंचने लगे। नारद और पर्वत से सभी देवताओं को भी दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार मिल गया। इन्द्र और सभी लोकपाल भी अपने वाहनों सहित रवाना हुए। राजा नल को भी संदेश मिला तो वे भी दमयन्ती से स्वयंवर के लिए वहां पहुंचे। नल के रूप को देखकर इंद्र ने रास्ते में अपने विमान को खड़ा कर दिया और नीचे उतरकर कहा कि राजा नल आप बहुत सत्यव्रती हैं।

आप हम लोगों के दूत बन जाइए। नल ने प्रतिज्ञा कर ली और कहा कि करूंगा। फिर पूछा कि आप कौन है तो इन्द्र ने कहा हम लोग देवता है। हम लोग दमयन्ती के लिए यहां आएं हैं। आप हमारे दूत बनकर दमयन्ती के पास जाइए और कहिए कि इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम देवता तुम्हारे पास आकर तुमसे विवाह करना चाहते हैं। इनमें से तुम चाहो उस देवता को अपना पति स्वीकार कर लो।

नल ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि देवराज वहां आप लोगों का और मेरे जाने का एक ही प्रायोजन है। इसलिए आप मुझे वहां दूत बनाकर भेजे यह उचित नहीं है। जिसकी किसी स्त्री को पत्नी के रूप में पाने की इच्छा हो चुकी हो वह भला उसको कैसे छोड़ सकता है और उसके पास जाकर ऐसी बात कह ही कैसे सकता है? आप लोग कृपया इस विषय में मुझे क्षमा कीजिए। देवताओं ने कहा नल तुम पहले हम लोगों से प्रतिज्ञा कर चुके हो कि मैं तुम्हारा काम करूंगा। अब प्रतिज्ञा मत तोड़ो। अविलम्ब वहां चले जाओ। नल ने कहा- राजमहल में निरंतर कड़ा पहरा रहता है मैं कैसे जा सकुंगा? और राजकुमारी ने कह दी अपने दिल की बात इन्द्र की आज्ञा से नल ने राजमहल में बिना रोक टोक के प्रवेश किया। दमयन्ती और उसकी सहेलियां भी उसे देखकर मुग्ध हो गयी और लज्जित होकर कुछ बोल न सकी। तुम देखने में बड़े सुंदर और निर्दोष जान पड़ते हो। पहले यहां आते समय द्वारपालों ने तुम्हे देखा क्यों नहीं? उनसे तनिक भी चूक हो जाने पर मेरे पिता बहुत कड़ा दण्ड देते हैं। नल ने कहा- मैं नल हूं। लोकपालों का दूत बनकर तुम्हारे पास आया हूं।

सुन्दरी ये देवता तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं। तुम इनमें से किसी एक देवता के साथ विवाह कर लो। यही संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूं। उन देवताओं के प्रभाव से जब मैंने तुम्हारे महल में प्रवेश किया तो मुझे कोई देख नहीं पाया। मैंने तुमसे देवताओं का संदेश कह दिया है अब जो कहना है कह दो। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो। दमयन्ती ने बड़ी श्रृद्धा के साथ देवताओं को प्रणाम करके मन्द मुस्कान के साथ कहा स्वामी मैं तो आपको ही अपना सर्वस्व मानकर अपने आप को आपके चरणों में सौंपना चाहती हूं। जिस दिन से मैंने हंसों की बात सुनी तभी से मैं आपके लिए व्याकुल हूं। आपके लिए ही मैंने राजाओं की भीड़ इकट्ठी की है। यदि आप मुझ दासी की प्रार्थना अस्वीकार कर देंगे तो मैं जहर खाकर मर जाऊंगी।

दमयन्ती की खुशी का ठिकाना ना रहा जब राजा नल ने दमयन्ती से कहा- जब बड़े-बड़े लोकपाल तुमसे शादी करना चाहते हैं फिर तुम मुझ मनुष्य से क्यों शादी करना चाहती हो? मैं तो उन देवताओं के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूं। तुम अपना मन उन्हीं में लगाओ। देवताओं का अप्रिय करने पर इंसान की मृत्यु हो सकती है। तुम मेरी रक्षा करो और उनको वरण कर लो। नल की बात सुनकर दमयन्ती घबरा गई। उसकी आंखों में आंसु छलक आए। उस समय दमयन्ती का शरीर कांप रहा था हाथ जुड़े हुए थे। उसने कहा मैं आपको वचन देती हूं कि मैं आपको ही पति के रूप में वरण करूंगी।

राजा नल ने कहा-अच्छा तब तो तुम ऐसा ही करो परंतु यह बतलाओ कि मैं यहां उनका दूत बनकर आया हूं। अगर इस समय मैं अपने स्वार्थ की बात करने लगूं तो यह कितनी बुरी बात है। मैं तो अपना स्वार्थ तभी बना सकता हूं जब वह धर्म के विरूद्ध ना हो। तब दमयन्ती ने गदगद कण्ठ से कहा राजा इसके लिए एक निर्दोष उपाय है। उसके अनुसार काम करने पर आपको दोष नहीं लगेगा। वह यह उपाय है कि आप सभी लोकपालों के साथ स्वयंवर मंडप में आए। मैं आपको वर लुंगी। तब आपको दोष भी नहीं लगेगा। देवताओं के पूछने पर उन्होंने कहा मैं दमयन्ती के पास गया तो मुझे देखकर वे और उनकी सखियां सभी मुझ पर मोहित हो गई और आप लोगों के प्रस्ताव को उनके सामने रखने के बाद भी वे मुझे ही वरण करने पर तुली हैं।

दमयन्ती ने कैसे पहचाना असली राजा नल को? स्वयंवर की घड़ी आई। राजा भीमक ने सभी को बुलवाया। शुभ मुहूर्त में स्वयंवर रखा। सब राजा अपने-अपने निवास स्थान से आकर स्वयंवर में यथास्थान बैठ गए। तभी दमयन्ती वहां आई। सभी राजाओं का परिचय दिया जाने लगा। दमयन्ती एक-एक को देखकर आगे बढऩे दिया जाने लगा। आगे एक ही स्थान पर नल के समान ही वेषभुषा वाले पांच राजकुमार खड़े दिखाई दिए। यह देखकर दमयन्ती को संदेह हो गया, वह जिसकी और देखती उन्हें सिर्फ राजा नल ही दिखाई देते। इसलिए विचार करने लगी कि मैं देवताओं को कैसे पहचानूं और ये राजा है यह कैसे जानूं? उसे बड़ा दुख हुआ। अन्त में दमयन्ती ने यही निश्चय किया कि देवताओं की शरण में जाना ही उचित है। हाथ जोड़कर प्रणामपूर्वक स्तुति करने लगी। देवताओं हंसों के मुंह से नल का वर्णन सुनकर मैंने उन्हें पतिरूपण से वरण कर लिया है।

मैंने नल की आराधना के लिए ही यह व्रत शुरू कर लिया है। आप लोग अपना रूप प्रकट कर दें, जिससे में राजा नल को पहचान लूं। देवताओं ने दमयन्ती की बात सुनकर उसके दृढ़-निश्चय को देखकर उन्होंने उसे ऐसी शक्ति दी जिससे वह देवता और मनुष्य में अंतर कर सके। दमयन्ती ने देखा कि शरीर पर पसीना नहीं है। पलके गिरती नहीं हैं। माला कुम्हलाई नहीं है। शरीर स्थिर है। शरीर पर धूल व पसीना भी नहीं है। दमयन्ती ने इन लक्षणों को देखकर ही दमयन्ती ने राजा नल को पहचान लिया।

और कलयुग नल के शरीर में प्रवेश कर गया

जिस समय दमयंती के स्वयंवर से लौटकर इन्द्र व अन्य लोकपाल अपने-अपने लोकों को जा रहे थे। उस समय उनकी मार्ग में ही कलयुग और द्वापर से भेंट हो गई। इन्द्र ने पूछा कलयुग कहा जा रहे हो? कलियुग ने कहा-मैं दमयन्ती के स्वयंवर में उससे विवाह करने के लिए जा रहा हूं। इन्द्र ने कहा अरे स्वयंवर तो कब का पूरा हो गया। दमयन्ती ने राजा नल का वरण कर लिया है।

हम लोग देखते ही रह गए। कलयुग ने क्रोध में भरकर कहा – तब तो यह अनर्थ हो गया। उसने देवताओं की उपेक्षा करके मनुष्य को अपनाया, इसलिए उसको दण्ड देना चाहिए। देवताओं ने कहा- दमयन्ती ने हमारी आज्ञा

प्राप्त करके ही नल को वरण किया है। वास्तव में नल सर्वगुण सम्पन्न और उसके योग्य है। वे समस्त धर्मों के जानकार हैं।

उन्होंने इतिहास पुराणों सहित वेदों का भी अध्ययन किया है। उनको शाप देना तो नरक में धधकती आग में गिरने के समान है। अब कलयुग ने द्वापर से कहा मैं अपने क्रोध को शान्त नहीं कर सकता। इसलिए मैं नल के शरीर में निवास करूंगा। मैं उसे राज्यच्युत कर दूंगा। तब वह दमयन्ती के साथ नहीं रह सकेगा। इसलिए तुम भी जूए के पासों में प्रवेश करके मेरी सहायता करना।

द्वापर ने उसकी बात स्वीकार ली। द्वापर और कलयुग दोनों ही नल की राजधानी में आ बसे। बारह वर्ष तक वे इस बात की प्रतीक्षा में रहे कि नल में कोई दोष दिख जाए। एक दिन राजा नल संध्या के समय लघुशंका से निवृत होकर पैर धोए बिना ही आचमन करके संध्यावंदन करने बैठ गए। यह अपवित्र अवस्था देखकर कलियुग उनके शरीर में प्रवेश कर गया।

जूए में राजा नल सबकुछ हार गए तब

कलयुग दूसरा रूप धारण करके वह पुष्कर बनकर उसकी बात स्वीकार करके वह पुष्कर के पास गया और बोला तुम नल के साथ जुआं खेलो मेरी सहायता करो। जूए में जीतकर निषध राज का राज्य प्राप्त कर लो। पुष्कर उसकी बात स्वीकार करके नल के के पास गया। द्वापर भी पासे का रूप धारण करके उसके साथ चला। जब पुष्कर ने राजा नल को जूआ खेलने का आग्रह किया। तब राजा नल दमयन्ती के सामने अपने भाई की बार – बार की ललकार सह ना सके। उन्होंने पासे खेलने का निश्चय किया। उस समय नल के शरीर में कलयुग घुसा हुआ था, इसीलिए नल जो कुछ भी जूए में लगाते हार जाते। प्रजा और मंत्रियों ने राजा को रोकना चाहा लेकिन जब वे नहीं माने तो मंत्रियों ने द्वारपाल को रानी दमयंती तक राजा को रोकने का संदेश पहुंचवाया। तब रानी नल दमयन्ती को बोली आपकी पूरी प्रजा आपके दुख के कारण अचेत हुई जा रही है। इतना कहकर दमयंती भी रोने लगी। लेकिन राजा नल कलयुग के प्रभाव में थे।

इसीलिए जो पासे फेंकते वही उनके प्रतिकुल पड़ते। जब दमयंती ने यह सब देखा तो उसने धाय को बुलवाया और उसके द्वारा राजा नल के सारथि वाष्र्णेय को बुलवाया। उन्होंने ने उससे कहा सारथि तुम जानते हो कि महाराज बहुत संकट में है। अब यह बात तुम से छिपी नहीं है। तुम रथ जोड़ लो और मेरे बच्चों को रथ में बैठाकर कुंडिनगर ले जाओ। उसके बाद पुष्कर ने राजा नल का सारा धन ले लिया और बोला तुम्हारे पास दावं पर लगाने के लिए और कुछ है या नहीं। यदि तुम दमयंती को दावं पर लगाने के लायक समझो तो उसे लगा दो।

क्योंकि पत्नी का यही धर्म है

एक दिन राजा नल ने देखा कि बहुत से पक्षी उनके पास ही बैठे है। उनके पंख सोने के समान दमक रहे हैं। नल ने सोचा कि इनकी पांख से कुछ धन मिलेगा। ऐसा सोचकर उन्हें पकडऩे के लिए नल ने उन पर अपना पहनने का वस्त्र डाल दिया। पक्षी उनका वस्त्र लेकर उड़ गए। अब नल नंगे होकर बड़ी दीनता के साथ मुंह नीचे करके खड़ा हो गए।

पक्षियों ने कहा तु नगर से एक वस्त्र पहनकर निकला था। उसे देखकर हमें बड़ा दुख हुआ था ले अब हम तेरे शरीर का वस्त्र लिए जा रहे है। हम पक्षी नहीं जूए के पासे हैं। नल ने दमयन्ती से पासे की बात कह दी। तुम देख रही

हो, यहां बहुत से रास्ते है। एक अवन्ती की ओर जाता है। दूसरा पर्वत होकर दक्षिण देश को। सामने विन्ध्याचल पर्वत है। यह पयोष्णी नदी समुद्र में मिलती है। सामने का रास्ता विदर्भ देश को जाता है। यह कौसल देश का मार्ग है।

इस प्रकार राजा नल दुख और शोक से भरकर बड़ी ही सावधानी के साथ दमयन्ती को भिन्न-भिन्न आश्रम मार्ग बताने लगे। दमयन्ती की आंखें आंसु से भर गई। दमयन्ती ने राजा नल से कहा क्या आपको लगता है कि मैं आपको छोड़कर अकेली कहीं जा सकती हूं। मैं आपके साथ रहकर आप के दुःख को दूर करूंगी। दुःख के अवसरो पर पत्नी पुरुष के लिए औषधी के समान है। वह धैर्य देकर पति के दुःख को कम करती है।

राजा नल ने क्यों किया दमयंती को छोडने का फैसला?

उस समय नल के शरीर पर वस्त्र नहीं था। धरती पर बिछाने के लिए एक चटाई भी नहीं थी। शरीर पर धूल से लथपथ हो रहा था। भूख-प्यास से परेशान राजा नल जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती भी उनके साथ ये सारे दुख झेल रही थी। राजा नल भी जमीन पर ही सो गए। दमयन्ती के सो जाने पर राजा नल की नींद टूटी। सच्ची बात तो यह थी कि वे दुख और शोक की के कारण सुख की नींद सो भी नहीं सकते थे। वे सोचने लगे कि दमयंती मुझ से बड़ा प्रेम करती है। प्रेम के कारण ही उसे इतना दुख झेलना पड़ेगा। यदि मैं इसे छोड़कर चला जाऊं तो संभव है कि इसे सुख भी मिल जाए। अन्त में राजा नल ने यही निश्चय कि इसे सुख भी मिल जाए।

दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है। इसके सतीत्व को कोई भंग नहीं कर सकता। इस प्रकार त्यागने का निश्चय करके और सतीत्व की ओर से निश्चिन्त होकर राजा नल ने यह विचार किया कि मैं नंगा हूं और दमयन्ती के शरीर पर भी केवल एक वस्त्र है। फिर भी इसके वस्त्रों में से आधा फाड़ लेना ही श्रेयस्कर है लेकिन फांडू कैसे? शायद यह जाग जाए? राजा नल ने यह सोचकर दमयंती को धीरे से उठाकर उसके शरीर का आधा वस्त्र फाड़कर शरीर ढक लिया। दमयंती नींद में थी। राजा नल उसे छोड़कर निकल पड़े। थोड़ी देर बाद वे शांत हुए और वे फिर धर्मशाला लौट आए।

और मगर ने रानी को निगलने के लिए जकड़ लिया

थोड़ी देर बाद जब राजा नल का हृदय शांत हुआ ,तब वे फिर धर्मशाला में इधर-उधर घूमने लगे और सोचने लगे कि अब तक दमयन्ती परदे में रहती थी, इसे कोई छू भी नहीं सकता था। आज यह अनाथ के समान आधा वस्त्र पहने धूल में सो रही है। यह मेरे बिना दुखी होकर वन में कैसे रहेगी? मैं तुम्हे छोड़कर जा रहा हूं सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें। उस समय राजा नल का दिल दुख के मारे टुकड़े- टुकड़े हुआ जा रहा था।

शरीर में कलियुग का प्रवेश होने के कारण उनकी बुद्धि नष्ट हो गई थी। इसीलिए वे अपनी पत्नी को वन में अकेली छोड़कर वहां से चले गए। जब दमयंती की नींद टूटी, तब उसने देखा कि राजा नल वहां नहीं है। यह देखकर वे चौंक गई और राजा नल को पुकारने लगी। जब दमयंती को राजा नल बहुत देर तक नहीं दिखाई पड़ें तो वे विलाप करने लगी। वे भटकती हुई जंगल के बीच जा पहुंची। वहां अजगर दमयंती को निगलने लगा। दमयंती मदद के लिए चिल्लाने लगी तो एक व्याध के कान में पड़ी। वह उधर ही घूम रहा था। वह वहां दौड़कर आया और यह देखकर दमयंती को अजगर निगल रहा है। अपने तेज शस्त्र से उसने अजगर का मुंह चीर डाला। उसने दमयन्ती को छुड़ाकर नहलाया, आश्वासन देकर भोजन करवाया।

रानी ने क्यों दिया मुसीबत से बचाने वाले को ही शाप?

दमयन्ती जब कुछ शांत हुई। व्याध ने पूछा सुन्दरी तुम कौन हो? किस कष्ट में पड़कर किस उद्देश्य से तुम यहां आई हो? दमयन्ती की सुन्दरता, बोल-चाल और मनोहरता देखकर व्याध मोहित हो गया। वह दमयंती से मीठी-मीठी

बातें करके उसे अपने बस में करने की कोशिश करने लगा। दमयन्ती उसके मन के भाव समझ गई। दमयंती ने उसके बलात्कार करने की चेष्टा को बहुत रोकना चाहा लेकिन जब वह किसी प्रकार नहीं माना तो उसने शाप दे दिया कि मैंने राजा नल के अलावा किसी और का चिंतन कभी नहीं किया हो तो यह व्याध मरकर गिर पड़े। दमयंती के इतना कहते ही व्याध के प्राण पखेरू उड़ गए। व्याध के मर जाने के बाद दमयंती एक निर्जन और भयंकर वन में जा पहुंची।

राजा नल का पता पूछती हुई वह उत्तर की ओर बढऩे लगी। तीन दिन रात दिन रात बीत जाने के बाद दमयंती ने देखा कि सामने ही एक बहुत सुन्दर तपोवन है। जहां बहुत से ऋषि निवास करते हैं। उसने आश्रम में जाकर बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। ऋषियों को प्रणाम किया। ऋषियों ने दमयन्ती का सत्कार किया और उसे बैठने को कहा- दमयन्ती ने एक भद्र स्त्री के समान सभी के हालचाल पूछे। फिर ऋषियों ने पूछा आप कौन है? तब दमयंती ने अपना पूरा परिचय दिया और अपनी सारी कहानी ऋषियों को सुनाई। तब सारे तपस्वी उसे आर्शीवाद देते हैं कि थोड़े ही समय में निषध के राजा को उनका राज्य वापस मिल जाएगा। उसके शत्रु भयभीत होंगे व मित्र प्रसन्न होंगे और कुटुंबी आनंदित होंगे। इतना कहकर सभी ऋषि अंर्तध्यान हो गए।

रानी ने मुश्किल समय में भी रख दी शर्त क्योंकि....

दमयंती रोती हुई एक अशोक के वृक्ष के पास पहुंचकर बोली तू मेरा शोक मिटा दे। शोक रहित अशोक तू मेरा शोक मिटा दे। क्या कहीं तूने राजा नल को शोक रहित देखा है। तू अपने शोकनाशक नाम को सार्थक कर।दमयन्ती ने अशोक की परिक्रमा की और वह आगे बढ़ी। उसके बाद आगे बड़ी तो बहुत दूर निकल गई। वहां उसने देखा कि हाथी घोड़ों और रथों के साथ व्यापारियों का एक झुंड आगे बढ़ रहा है। व्यापारियों के प्रधान से बातचीत करके दमयंती को जब यह पता चला कि वे सभी चेदीदेश जा रहे हैं तो वह भी उनके साथ हो गई। कई दिनों तक चलने के बाद वे व्यापारी एक भयंकर वन में पहुंचे। वहा एक बहुत सुंदर सरोवर था। लंबी यात्रा के कारण वे लोग थक चुके थे। इसलिए उन लोगों ने वहीं पड़ाव डाल दिया। रात के समय जंगली हाथियों का झुंड आया। आवाज सुनकर दमयंती की नींद टूट गई। वह इस मांसाहार के दृश्य को देखकर समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या करे? वे सभी व्यापारी मर गए वो वहां से भाग निकली और दमयंती भागकर उन ब्राह्मणों के पास पहुंची और उनके साथ चलने लगी शाम के समय वह राजा सुबाहु के यहां जा पहुंची। वहां उसे सब बावली समझ रहे थे। उसे बच्चे परेशान कर रहे थे।

उस समय राज माता महल के बाहर खिड़की से देख रही थी उन्होंने अपनी दासी से कहा देखो तो वह स्त्री बहुत दुखी मालुम होती है। तुम जाओ और मेरे पास ले आओ। दासी दमयंती को रानी के पास ले गई। रानी ने दमयंती स पूछा तुम्हे डर नहीं लगता ऐसे घुमते हुए। तब दमयंती ने बोला में एक पतिव्रता स्त्री हूं। मैं हूं तो कुलीन पर दासी का काम करती हूं। तब रानी ने बोला ठीक है तुम महल में ही रह जाओ। तब दमयंती कहती है कि मैं यहां रह तो जाऊंगी पर मेरी तीन शर्त है मैं झूठा नहीं खाऊंगी, पैर नहीं धोऊंगी और परपुरुष से बात नहीं करुंगी। रानी ने कहा ठीक है हमें आपकी शर्ते मंजुर है।

जैसे ही राजा ने कहा दश सांप ने डंस दिया...

जिस समय राजा नल दमयन्ती को सोती छोड़कर आगे बढ़े, उस समय वन में आग लग रही थी। तभी नल को आवाज आई। राजा नल शीघ्र दौड़ो। मुझे बचाओ। नागराज कुंडली बांधकर पड़ा हुआ था। उसने नल से कहा- राजन मैं कर्कोटक नाम का सर्प हूं। मैंने नारद मुनि को धोखा दिया था। उन्होंने शाप दिया कि जब तक राजा नल तुम्हे न उठावे, तब तक यहीं पड़े रहना। उनके उठाने पर तू शाप से छूट जाएगा। उनके शाप के कारण मैं यहां से

एक भी कदम आगे नहीं बढ़ सकता। तुम इस शाप से मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हे हित की बात बताऊंगा और तुम्हारा मित्र बन जाऊंगा। मेरे भार से डरो मत मैं अभी हल्का हो जाता हूं वह अंगूठे के बराबर हो गया। नल उसे उठाकर दावानल से बाहर ले आए। कार्कोटक ने कहा तुम अभी मुझे जमीन पर मत डालो। कुछ कदम गिनकर चलो। राजा नल ने ज्यो ही पृथ्वी पर दसवां कदम चला और उन्होंने कहा दश तो ही कर्कोटक ने उन्हें डस लिया। उसका नियम था कि जब कोई बोले दश तभी वह डंसता था।

आश्चर्य चकित नल से उसने कहा महाराज तुम्हे कोई पहचान ना सके इसलिए मैंने डस के तुम्हारा रूप बदल दिया है। कलियुग ने तुम्हे बहुत दुःख दिया है। अब मेरे विष से वह तुम्हारे शरीर में बहुत दुःखी रहेगा। तुमने मेरी रक्षा की है। अब तुम्हे हिंसक पशु-पक्षी शत्रु का कोई भय नहीं रहेगा। अब तुम पर किसी भी विष का प्रभाव नहीं होगा और युद्ध में हमेशा तुम्हारी जीत होगी।

और राजा बन गया सारथी

यह कहकर कर्कोटक ने दो दिव्य वस्त्र दिए और वह अंर्तध्यान हो गया। राजा नल वहां से चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्ण की राजधानी अयोध्या में पहुंच गया। उन्होंने वहां राजदरबार में निवेदन किया कि मेरा नाम बाहुक है। मैं घोड़ों को हांकने और उन्हें तरह-तरह की चालें सिखाने का काम करता हूं। घोड़ो की विद्या मेरे जैसा निपुण इस समय पृथ्वी पर कोई नहीं है। रसोई बनाने में भी में बहुत चतुर हूं, हस्तकौशल के सभी काम और दूसरे कठिन काम करने की चेष्ठा करूंगा। आप मेरी आजीविका निश्चित करके मुझे रख लीजिए। उसकी सारी बात सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने कहा बाहुक मैं सारा काम तुम्हें सौंपता हूं। लेकिन मैं शीघ्रगामी सवारी को विशेष पसंद करता हूं। तुम्हे हर महीने सोने की दस हजार मुहरें मिला करेंगी। लेकिन तुम कुछ ऐसा करो कि मेरे घोड़ों कि चाल तेज हो जाए। इसके अलावा तुम्हारे साथ वाष्र्णेय और जीवल हमेशा उपस्थित रहेंगें। राजा नल रोज दमयन्ती को याद करते और दुःखी होते कि दमयन्ती भूख-प्यास से परेशान ना जाने किस स्थिति में होगी। इसी तरह राजा नल ने दमयंती के बारे में सोचते हुए कई दिन बिता दिए। ऋतुपर्ण के पास रहते हुए उन्हें कोई ना पहचान सका। जब राजा विदर्भ को यह समाचार मिला कि मेरे दामाद नल और पुत्री राज पाठ विहिन होकर वन में चले गए हैं।

राजमाता ने कैसे पहचाना रानी को?

तब उन्होंने सुदेव नाम के एक ब्राह्मण को नल-दमयंती का पता लगाने के लिए चेदिनरेश के राज्य में भेजा। उसने एक दिन राज महल में दमयंती को देख लिया। उस समय राजा के महल में पुण्याहवाचन हो रहा था। दमयंती-सुनन्दा एक साथ बैठकर ही वह कार्यक्रम देख रही थी। सुदेव ब्राह्मण ने दमयंती को देखकर सोचा कि वास्तव में यही भीमक नन्दिनी है। मैंने इसका जैसा रूप पहले देखा था। वैसा अब भी देख रहा हूं। बड़ा अच्छा हुआ, इसे देख लेने से मेरी पुरी यात्रा सफल हो गई। सुदेव दमयंती के पास गया और उससे बोला दमयंती मैं तुम्हारे भाई का मित्र सुदेव हूं। मैं तुम्हारें भाई की आज्ञा से तुम्हे ढूढने यहां आया हूं। दमयंती ने ब्राह्मण को पहचान लिया। वह सबका कुशल-मंगल पूछने लगी और पूछते ही पूछते रो पड़ी।

सुनन्दा दमयंती को रोता देख घबरा गई। उसने अपनी माता के पास जाकर उन्हें सारी बात बताई। राज माता तुरंत अपने महल से बाहर निकल कर आयी। ब्राह्मण के पास जाकर पूछने लगी महाराज ये किसकी पत्नी है? किसकी पुत्री है? अपने घर वालों से कैसे बिछुड़ गए? तब सुदेव ने उनका पूरा परिचय उसे दिया। सुनन्दा ने अपने हाथों से दमयंती का ललाट धो दिया। जिससे उसकी भौहों के बीच का लाल चिन्ह चन्द्रमा के समान प्रकट हो गया।

उसके ललाट का वह तिल देखकर सुनन्दा व राजमाता दोनों ही रो पड़े। राजमाता ने कहा मैंने इस तिल को देखकर पहचान लिया कि तुम मेरी बहन की पुत्री हो। उसके बाद दमयंती अपने पिता के घर चली गई।

तब खत्म हुई रानी की खोज

अपने पिता के घर एक दिन विश्राम करके दमयंती अपनी माता से कहा कि मां मैं आपसे सच कहती हूं। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहती हैं तो आप मेरे पतिदेव को ढूंढवा दीजिए। रानी ने उनकी बात सुनकर नल को ढूंढवाने के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया। ब्राह्मणों से दमयंती ने कहा आप लोग जहां भी जाए वहां भीड़ में जाकर यह कहे कि मेरे प्यारे छलिया, तुम मेरी साड़ी में से आधी फाड़कर अपनी दासी को उसी अवस्था में आधी साड़ी में आपका इंतजार कर रही है। मेरी दशा का वर्णन कर दीजिएगा और ऐसी बात कहिएगा।

जिससे वे प्रसन्न हो और मुझ पर कृपा करे। बहुत दिनों के बाद एक ब्राह्मण वापस आया। उसने दमयंती से कहा मैंने राजा ऋतुपर्ण के पास जाकर भरी सभा में आपकी बात दोहराई तो किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। जब मैं चलने लगा तब बाहुक नाम के सारथि ने मुझे एकान्त में बुलाया उसके हाथ छोटे व शरीर कुरूप है। वह लम्बी सांस लेकर रोता हुआ मुझसे कहने लगा।

उच्च कुल की स्त्रियों के पति उन्हें छोड़ भी देते हैं तो भी वे अपने शील की रक्षा करती हैं। त्याग करने वाला पुरुष विपत्ति के कारण दुःखी और अचेत हो रहा था। इसीलिए उस पर क्रोध करना उचित नहीं है। लेकिन वह उस समय बहुत परेशान था।जब वह अपनी प्राणरक्षा के लिए जीविका चाह रहा था। तब पक्षी उसके वस्त्र लेकर उड़ गए। जब ब्राह्मण ने यह बात बताई तो दमयंती समझ गई कि वे राजा नल ही हैं।

इसलिए रानी ने फिर से रचाया स्वयंवर..

ब्राह्मण की बात सुनकर दमयंती की आंखों में आंसु भर आए। उसने अपनी माता को सारी बात बताई। तब उन्होंने कहा आप यह बात अब अपने पिताजी से ना कहे। मैं सुदैव ब्राह्मण को इस काम के लिए नियुक्त करती हूं। तब दमयंती ने सुदेव से कहा- ब्राह्मण देवता आप जल्दी से जल्दी अयोध्या नगरी पहुंचे। राजा ऋतुपर्ण से यह बात कहिए कि दमयंती ने फिर से स्वेच्छानुसार पति का चुनाव करना चाहती है।

बड़े-बड़े राजा और राजकुमार जा रहे हैं। स्वयंवर की तिथि कल ही है। इसलिए यदि आप पहुंच सकें तो वहां जाइए। नल के जीने अथवा मरने का किसी को पता नहीं है, इसलिए वह इसीलिए कल वे सूर्योदय पूर्व ही पति वरण करेंगी। दमयंती की बात सुनकर सुदेव अयोध्या गए और उन्होंने राजा ऋतुपर्ण से सब बातें कह दी। सुदेव की बातें सुनाकर बाहुक को बुलाया और कहा बाहुक कल दमयंती का स्वयंवर है और हमें जल्दी से जल्दी वहां पहुंचना है। यदि तुम मुझे जल्दी वहां पहुंच जाना संभव समझो तभी मैं वहां जाऊंगा।

ऋतुपर्ण की बात सुनकर नल का कलेजा फटने लगा। सोचा कि दमयंती ने दुःखी और अचेत होकर ही ऐसा किया होगा। संभव है वह ऐसा करना चाहती हो। नल ने शीघ्रगामी रथ में चार श्रेष्ठ घोड़े जोत लिए। राजा ऋतुपर्ण रथ पर सवार हो गए। रास्ते में ऋतुपर्ण ने उसे पासें पर वशीकरण की विद्या सिखाई क्योंकि उसे घोड़ों की विद्या सीखने का लालच था। जिस समय राजा नल ने यह विद्या सीखी उसी समय कलियुग राजा नल के शरीर से बाहर आ गया।

रानी ने राजा को पहचानने के लिए क्या किया?

कलियुग ने नल का पीछा छोड़ दिया था। लेकिन अभी उनका रूप नहीं बदला था। उन्होंने अपने रथ को जोर से हांका और शाम होते-होते वे विदर्भ देश में पहुंचे। राजा भीमक के पास समाचार भेजा गया। उन्होंने ऋतुपर्ण को अपने यहां बुला लिया ऋतुपर्ण के रथ की गुंज से दिशाएं गुंज उठी। दमयंती रथ की घरघराहट से समझ गई कि जरूर इसको हांकने वाले मेरे पति देव हैं। यदि आज वे मेरे पास नहीं आएंगे तो मैं आग में कुद जाऊंगी।

उसके बाद अयोध्या नरेश ऋतुपर्ण जब राजा भीमक के दरबार में पहुंचे तो उनका बहुत आदर सत्कार हुआ। भीमक को इस बात का बिल्कुल पता नहीं था कि वे स्वयंवर का निमंत्रण पाकर यहां आए हैं। जब ऋतुपर्ण ने स्वयंवर की कोई तैयारी नहीं देखी तो उन्होंने स्वयंवर की बात दबा दी और कहा मैं तो सिर्फ आपको प्रणाम करने चला आया। भीमक सोचने लगे कि सौ-योजन से अधिक दूर कोई प्रणाम कहने तो नहीं आ सकता। लेकिन वे यह सोच छोड़कर भीमक के सत्कार में लग गए। बाहुक वाष्र्णेय के साथ अश्वशाला में ठहरकर घोड़ो की सेवा में लग गया। दमयंती आकुल हो गई कि रथ कि ध्वनि तो सुनाई दे रही है पर कहीं भी

मेरे पति के दर्शन नहीं हो रहे। हो ना हो वाष्र्णेय ने उनसे रथ विद्या सीख ली होगी। तब उसने अपनी दासी से कहा हे दासी तु जा और इस बात का पता लगा कि यह कुरूप पुरुष कौन है? संभव है कि यही हमारे पतिदेव हों। मैंने ब्राह्मणों द्वारा जो संदेश भेजा था। वही उसे बतलाना और उसका उत्तर मुझसे कहना। तब दासी ने बाहुक से जाकर पूछा राजा नल कहा है क्या तुम उन्हें जानते हो या तुम्हारा सारथि वाष्र्णेय जानता है? बाहुक ने कहा मुझे उसके संबंध में कुछ भी मालुम नहीं है सिर्फ इतना ही पता है कि इस समय नल का रूप बदल गया है। वे छिपकर रहते हैं। उन्हें या तो दमयंती या स्वयं वे ही पहचान सकते हैं या उनकी पत्नी दमयंती क्योंकि वे अपने गुप्त चिन्हों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहते हैं।

इस तरह हुआ अमर प्रेम कहानी का सुखद अंत

अब दमयंती की आशंका और बढ़ गई और दृढ़ होने लगी कि यही राजा नल है। उसने दासी से कहा तुम फिर बाहुक के पास जाओ और उसके पास बिना कुछ बोले खड़ी रहो। उसकी चेष्टाओं पर ध्यान दो। अब आग मांगे तो मत देना जल मांगे तो देर कर देना। उसका एक-एक चरित्र मुझे आकर बताओ। फिर वह मनुष्यों और देवताओं से उसमें बहुत से चरित्र देखकर वह दमयंती के पास आई और बोली बाहुक ने हर तरह से अग्नि, जल व थल पर विजय प्राप्त कर ली है। मैंने आज तक ऐसा पुरुष नहीं देखा। तब दमयंती को विश्वास हो जाता है कि वह बाहुक ही राजा नल है। अब दमयंती ने सारी बात अपनी माता को बताकर कहा कि अब मैं स्वयं उस बाहुक की परीक्षा लेना चाहती हूं। इसलिए आप बाहुक को मेरे महल में आने की आज्ञा दीजिए। आपकी इच्छा हो तो पिताजी को बता दीजिए। रानी ने अपने पति भीमक से अनुमति ली और बाहुक को रानीवास बुलवाने की आज्ञा दी। दमयंती ने बाहुक के सामने फिर सारी बात दोहराई। तब दमयंती के आखों से आंसू टपकते देखकर नल से रहा नहीं गया। नल ने कहा मैंने तुम्हे जानबुझकर नहीं छोड़ा। नहीं जूआ खेला यह सब कलियुग की करतूत है। दमयंती ने कहा कि मैं आपके चरणों को स्पर्श करके कहती हूं कि मैंने कभी मन से पर पुरुष का चिंतन नहीं किया हो तो मेरे प्राणों का नाश हो जाए।

ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर राजा नल ने अपना संदेह छोड़ दिया और कार्कोटक नाग के दिए वस्त्र को अपने ऊपर ओढ़कर उसका स्मरण करके वे फिर असली रूप में आ गए। दोनों ने सबका आर्शीवाद लिया दमयंती के मायके से उन्हें खुब धन देकर विदा किया गया। उसके बाद नल व दमयंती अपने राज्य में पहुंचे। राजा नल ने पुष्कर से फिर जूआं खेलने को कहा तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया और नल ने जूए की हर बाजी को जीत लिया। इस तरह नल व दमयंती को फिर से अपना राज्य व धन प्राप्त हो गया।

2--वैदिक महापुरुष सत्यवादि राजा हरिश्चन्द

राजा हरिश्चंद्र धार्मिक, सत्यप्रिय तथा न्यायी थे। एक बार उन्होंने स्त्रियों का आर्त्तनाद सुना। वे रक्षा के लिए पुकार रही थीं। हरिश्चंद्र ने उनकी रक्षा के निमित्त पग पढ़ाया तो उसके हृदय में विघ्नराज (संपूर्ण कार्यों में बाधा स्वरूप) ने प्रवेश किया, क्योंकि वह आर्त्तनाद उन विधाओं का ही था, जिनका विश्वामित्र अध्ययन करते थे। मौन और आत्मसंयम से जिन विधाओं को वे पहले सिद्ध नहीं कर पाये थे, वह नारी-रूप में उनके भय से पीड़ित होकर रो रही थीं। रुद्रकुमार विघ्नराज ने उनकी सहायता के निमित्त ही राजा के हृदय में प्रवेश किया था। हरिश्चंद्र ने अभिमान पूर्वक कहा—'वह कौन पापात्मा है जो हमारे राज्य में किसी को सता रहा है?' विश्वामित्र ने उसके अभिमान से रुष्ट होकर उससे पूछा—'दान किसे देना चाहिए? किसकी रक्षा करनी चाहिए और किससे युद्ध करना चाहिए?' राजा ने तीनों प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिया।

ब्राह्मण अथवा आजीविका विहीन को,

भयभीत प्राणी को शत्रु से।

विश्वामित्र ने ब्राह्मण होने के नाते राजा से उसका समस्त दानस्वरूप ले लिया। तदनंतर उसे उस राज्य की सीमाएं छोड़कर चले जाने को कहा और यह भी कहा कि एक माह के उपरांत हरिश्चंद्र उनके राजसूय यज्ञ के लिए दीक्षास्वरूप धन (दक्षिणा) भी प्रदान करे। राजा अपनी पत्नी तारामती (शैव्या) तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ ले पैदल ही काशी की ओर चल दिया। तारामती धीरे-धीरे चल रही थी, अतः क्रुद्ध मुनि ने उस पर डंडे से प्रहार किया। कालांतर में वे लोग काशी पहुंचे। वहां विश्वामित्र दक्षिणा लेने के निमित्त पहले से ही विद्यमान थे। कोई और मार्ग न देख राजा ने शैव्या और रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथों बेच दिया। दक्षिणा के लिए धन पर्याप्त न होने के कारण स्वयं चांडाल के हाथों बिक गया। वास्तव में धर्म ने ही चांडाल का रूप धारण कर रखा था। हरिश्चंद्र का कार्य शवों के वस्त्र आदि एकत्र करना था। उसे श्मशान भूमि में ही रहना भी पड़ता था। कुछ समय उपरांत किसी सर्प ने रोहिताश्व का दंशन कर लिया। उसका शव लेकर शैव्या श्मशान पहुँची। हरिश्चंद्र और शैव्या ने परस्पर पहचाना तो अपने-अपने कष्ट की गाथा कह सुनायी। तदनंतर चिता तैयार करके बालक रोहिताश्व के साथ ही हरिश्चंद्र और शैव्या ने आत्मदाह का निश्चय कर किया। धर्म ने प्रकट होकर उन्हें प्राण त्यागने से रोका।

इन्द्र ने प्रकट होकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें स्वर्ग-लोक चलने के लिए कहा किंतु चांडाल की आज्ञा के बिना हरिश्चंद्र कहीं भी जाने के लिए तैयार नहीं था। रोहिताश्व चिता से जीता-जागता उठ खड़ा हुआ। धर्म ने बताया कि उसी ने चांडाल का रूप धारण किया था। तदुपरांत विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर रोहिताश्व को अयोध्या का राजा घोषित कर उसका राज्य-तिलक किया। राजा हरिश्चंद्र ने शैव्या तथा अपने राज्य के अन्य अनेक व्यक्तियों सहित स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

हरिश्चंद्र के पुरोहित वसिष्ठ थे। वे बारह वर्ष तक जल में रहने के बाद बाहर निकले तो हरिश्चंद्र के ऐहिक कष्ट तथा स्वर्ग गमन के विषय में सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने विश्वामित्र को तिर्यक-योनि प्राप्त करने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी वसिष्ठ को वही शाप दिया, दोनो ने क्रमशः चील और

बगुले का रूप प्राप्त किया। वे दोनों परस्पर लड़ने लगे, जिससे समस्त पृथ्वी तहस-नहस होने लगी। ब्रह्मा ने दोनों का पक्षी-रूप वापस ले लिया और उन्हें शांत कर फिर से मित्रता के सूत्र से आबद्ध किया।

देवी भागवत

एक बार इन्द्रलोक में विश्वामित्र वसिष्ठ से मिले। विश्वामित्र ने उनसे पूछा कि उन्हें इन्द्रलोक पहुंचने का पुण्य कैसे प्राप्त हुआ। वसिष्ठ ने कहा—'हरिश्चंद्र अत्यंत सत्यवादी हैं—उन्हीं के पुण्यों से इन्द्रलोक की प्राप्ति हुई है।' विश्वामित्र ने शेष घटना को स्मरण करके हरिश्चंद्र को मिथ्यावादी कहा। घर लौटकर उन्होंने अपना कथन सिद्ध करने का निश्चय किया। एक दिन राजा मृगया के लिए वन गये, वहां एक सुंदरी रो रही थी। उससे ज्ञात हुआ कि वह सिद्धिरुपिणी थी। उसे प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र घोर तप कर रहे थे, अतः वह क्लेश पा रही थी। राजा ने उसका दुःख हरने के लिए विश्वामित्र को तपस्या छोड़ने के लिए कहा।

विश्वामित्र तपस्या भंग होने से बहुत क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक भंयकर दानव को शूकर का रूप देकर राजा के राज्य में भेजा। प्रजा के त्रास की निवृति के लिए राजा धनुष-वाण लेकर उसका पीछा करते हुए जंगल में गंगा तटीय एक तीर्थ स्थान पर पहुंच गये। नगर का मार्ग पूछते हुए राजा को विश्वामित्र ने तीर्थस्थान करने के लिए प्रेरित किया। तदनंतर दक्षिणा स्वरूप अपने मायावी पुत्र के विवाह में राजा ने समस्त राज्य देने को कहा। राजा दान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। अतः उन्होंने राज्य प्रदान किया। विश्वामित्र ने ब्राह्मण के रूप ही फिर ढाई भार स्वर्ण की दक्षिणा मांगी। राजा ने दक्षिणा देना का वायदा तो कर लिया किंतु अब उसके पास स्वर्ण अथवा मुद्रा नहीं थी। अतः उसने पत्नी के कहने पर उसे बेचने का निश्चय किया।

विश्वामित्र ने एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर उसकी पत्नी तथा बालक रोहिताश्व को ख़रीद लिया तथा एक चांडाल के हाथों राजा को बेचकर पर्याप्त मुद्रा प्राप्त कर ली। चांडाल का नाम वीरबाहु था। उसने राजा को श्मशान में मृत व्यक्तियों के वस्त्र लेने के लिए नियुक्त कर दिया। एक दिन रोहिताश्व बच्चों के साथ खेल रहा था। सांप के डंस लेने से उसका निधन हो गया। माँ अत्यंत दीनहीन स्थिति में विलाप करने लगी। नगर के लोग एकत्र हो गये। उनके परिचय पूछने पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, अतः सबने उसे मायावी राक्षसी जानकर चांडाल से कहा कि उसका वध कर दे। चांडाल ने पाशबद्ध करके हरिश्चंद्र को वध करने के निमित्त बुलाया।

शैव्या ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करने तक उसे रुकने के लिए कहा। रोहिताश्व को देखने किए उपरांत राजा ने रानी को तथा शैव्या ने चांड़ाल वेशी राजा को पहचाना। दोनों ने विलाप करते हुए बालक का शव चिता पर रखा। तभी इन्द्र, विष्णु तथा विश्वामित्र सहित समस्त देवताओं ने वहां प्रकट होकर उन दोनों को सहनशीलता की सराहना की। धर्म ने हरिश्चंद्र को स्वर्ग प्रदान किया। राजा चांडाल से आज्ञा लेना नहीं भूले। धर्म ने कहा—'वास्तव में तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैंने ही ब्राह्माण, चांडाल तथा सर्प का रूप धारण किया था।' उनके आशीर्वाद से रोहिताश्व भी पुनर्जीवित हो उठा। राजा के कहने से उसकी समस्त प्रजा को भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

महाभारत

इक्ष्वाकु वंश में त्रिशंकु नामक राजा तथा उनकी पत्नी सत्यवती के पुत्र का नाम हरिश्चंद्र था। हरिश्चंद्र ने समस्त पृथ्वी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया।

3 -- वैदिक महापुरुष मर्यदा पुरुषत्तम श्री राम

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम हिन्दू धर्म में विष्णु के 10 अवतारों में से एक हैं। राम का जीवनकाल एवं पराक्रम, महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित, संस्कृत महाकाव्य रामायण के रूप में लिखा गया है। उनके उपर तुलसीदास ने भक्ति काव्य श्री रामचरितमानस रचा था। ख़ास तौर पर उत्तर भारत में राम बहुत अधिक पूज्यनीय माने जाते हैं। रामचन्द्र हिन्दुत्ववादियों के भी आदर्श पुरुष हैं। राम, अयोध्या के राजा दशरथ और रानी कौशल्या के सबसे बड़े पुत्र थे। राम की पत्नी का नाम सीता था (जो लक्ष्मी का अवतार मानी जाती है) और इनके तीन भाई थे, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। हनुमान, भगवान राम के, सबसे बड़े भक्त माने जाते हैं। राम ने राक्षस जाति के राजा रावण का वध किया।

मर्यादापुरुषोत्तम

अनेक विद्वानों ने उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' की संज्ञा दी है। वाल्मीकि रामायण तथा पुराणादि ग्रंथों के अनुसार वे आज से कई लाख वर्ष पहले त्रेता युग में हुए थे। पाश्चात्य विद्वान् उनका समय ईसा से कुछ ही हज़ार वर्ष पूर्व मानते हैं। अपने शील और पराक्रम के कारण भारतीय समाज में उन्हें जैसी लोकपूजा मिली वैसी संसार के अन्य किसी धार्मिक या सामाजिक जननेता को शायद ही मिली हो। भारतीय समाज में उन्होंने जीवन का जो आदर्श रखा, स्नेह और सेवा के जिस पथ का अनुगमन किया, उसका महत्व आज भी समूचे भारत में अक्षुण्ण बना हुआ है। वे भारतीय जीवन दर्शन और भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतीक थे। भारत के कोटि कोटि नर नारी आज भी उनके उच्चादर्शों से अनुप्राणित होकर संकट और असमंजस की स्थितियों में धैर्य एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ते हुए कर्त्तव्यपालन का प्रयत्न करते हैं। उनके त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवन से भारत ही नहीं, विदेशों के भी मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, बरान्निकोव आदि विद्वान् आकर्षित हुए हैं। उनके चरित्र से मानवता मात्र गौरवान्वित हुई है।

जीवन परिचय, जन्म

हिन्दू धर्म के कई त्योहार, जैसे दशहरा और दीपावली, राम की जीवन-कथा से जुडे हुए है। माना जाता है कि राम का जन्म प्राचीन भारत में हुआ था। उनके जन्म के समय का अनुमान सही से नहीं लगाया जा सका है। आज के युग में राम का जन्म, रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। राम चार भाईयो में से सबसे बड़े थे, इनके भाइयो के नाम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे। राम बचपन से ही शान्त स्वभाव के वीर पुरुष थे। उन्होने मर्यादाओं को हमेशा सर्वोच्च स्थान दिया था। इसी कारण उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम से जाना जाता है। उनका राज्य न्यायप्रिय और ख़ुशहाल माना जाता था, इसलिए भारत में जब भी सुराज की बात होती है, रामराज या रामराज्य का उद्धरण दिया जाता है। धर्म के मार्ग पर चलने वाले राम ने अपने तीनो भाइयों के साथ गुरु वसिष्ठ से शिक्षा प्राप्त की।

राम के बचपन की विस्तार-पूर्वक विवरण स्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस के बालकाण्ड से मिलती है। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीः कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। राम कौशल्या के पुत्र थे, सुमित्रा के दो पुत्र, लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे और कैकेयी के पुत्र भरत थे। कैकेयी चाहती थी उनके पुत्र

भरत राजा बनें, इसलिए उन्होंने राम को, दशरथ द्वारा 14 वर्ष का वनवास दिलाया। राम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया। राम की पत्नी सीता, और उनके भाई लक्ष्मण भी वनवास गये थे।

रामायण

रूप और सौंदर्य

अपनी छवि और कांति से अगणित कामदेवों को लज्जित करने वाले राम के सौंदर्य का वर्णन भी रामायणादि ग्रंथों में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। तुलसी के रामचरितमानस में तो स्थल स्थल पर इस तरह के विवरण भरे पड़े हैं। राजा जनक जब विश्वामित्र मुनि से मिलने गए तो वहाँ राम की सुंदर छवि देखकर वह अपनी सुध वुध ही भूल गए, वे सचमुच ही विदेह हो गए। उके अलौकिक सौंदर्य का यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि 'बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।' जनक की पुष्पवाटिका में सीता की एक सखी ने राम को जब देखा तो वह भौंचक रह गई। सीता के निकट आकर वह केवल इतना ही कह सकी 'स्याम गौर किमि कहौं वखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।' उनके अंग प्रत्यंग का जो वर्णन किया गया है, वह अद्वितीय है। मखभूमि में तथा विवाहमंडप में भी राम के नखशिख का ऐसा ही सुंदर वर्णन मानस में दिया गया है। सामान्य लोगों की तो बात ही क्या, परशुराम जैसे दुर्धर्ष वीर को भी राम के अलौकिक सौंदर्य ने हक्का बक्का बना दिया। वे निर्निमेष नेत्रों से उन्हें देखते रह गए। ऐसा ही एक प्रसंग उस समय आया जब खर दूषण की सेना के वीर राम का रूप देखकर हथियार चलाना ही भूल गए। उनके नेता को स्वीकार करना पड़ा कि अपने जीवन में आज तक हमने ऐसा सौंदर्य कहीं देखा नहीं, इसलिए 'यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा, वध लायक़ नहिं पुरुष अनूपा।

आदर्श चरित्र

राम के चरित्र में भारत की संस्कृति के अनुरूप पारिवारिक और सामाजिक जीवन के उच्चतम आदर्श पाए जाते हैं। उनमें व्यक्तित्वविकास,लोकहित तथा सुव्यवस्थित राज्यसंचालन के सभी गुण विद्यमान थे। उन्होंने दीनों, असहायों, संतों और धर्मशीलों की रक्षा के लिए जो कार्य किए, आचारव्यवहार की जो परंपरा क़ायम की, सेवा और त्याग का जो उदाहरण प्रस्तुत किया तथा न्याय एवं सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वे जिस तरह अनवरत प्रयत्नवान् रहे, जिससे उन्हें भारत के जन-जन के मानस मंदिर में अत्यंत पवित्र और उच्च आसन पर आसीन कर दिया है।

आदर्श पुत्र

राम के पराक्रम सौंदर्य से भी अधिक व्याक प्रभाव उनके शील और आचार व्यवहार का पड़ा जिसके कारण उन्हें अपने जीवनकाल में ही नहीं, वरन् अनुवर्ती युग में भी ऐसी लोकप्रियता प्राप्त हुई जैसी विरले ही किसी व्यक्ति को प्राप्त हुई हो। वे आदर्श पुत्र, आदर्श पति, स्नेहशील भ्राता और लोकसेवानुरक्त, कर्तव्यपरायण राजा थे। माता पिता का वे पूर्ण समादर करते थे।

हनुमान, राम और लक्ष्मण को ले जाते हुए

प्रातः काल उठकर पहले उन्हें प्रणाम करते, फिर नित्यकर्म स्नानादि से निवृत्त होकर उनकी आज्ञा ग्रहण कर अपने काम काज में जुट जाते थे। विवाह हो जाने के बाद राजा ने उन्हें युवराज बनाना चाहा, किंतु मंथरा दासी के बहकाने से विमाता कैकेयी ने जब उन्हें 14 वर्ष का वनवास देने का वर

राजा से माँगा तो विरोध में एक शब्द भी न कहकर वे तुरंतवन जाने को तैयार हो गए। उन्होंने कैकेयी से कहा 'सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी, जो पितृ मातु वचन अनुरागी।' वाल्मीकि के अनुसार राम ने यहाँ तक कह दिया कि दिया कि 'राजा यदि अग्नि में कूदने को कहें तो कूदूँगा, विष खाने को कहें तो खाऊँगा।' निदान समस्त राजवैभव, उत्तुंग प्रासाद और बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का परित्याग कर लक्ष्मण तथा सीता के साथ वे सहर्ष वन के लिए चल पड़े। जाने के पहले उन्होंने गुरु से कहलाकर ब्राह्मणों तथा विद्वानों के वर्षाशन की व्यवस्था करा दी और भरत के लिए संदेश दिया कि 'नीति न तजहिं राजपद पाये'। पिता और माताओं की सुख सुविधा का ध्यान रखने की प्रार्थना पुरजनों हितेच्छुओं से करते हुए उन्होंने कहा

'सोइ सब भाँति मोर हितकारी, जाते रहैं भुआल सुखारी' तथा 'मातु सकल मोरे विरह जेहि न होयँ दुखदीन, सो उपाय तुम करह सब पुरजन प्रजा प्रवीना'

आदर्श पति ,जंगल में राम, सीता और लक्ष्मण

राम जानते थे कि सीता अत्यंत सुकुमार हैं अत: उन्होंने उन्हें अयोध्या में ही रहने को बहुत समझाया पर जब वे नहीं मानीं तब उन्होंने उन्हें अपने साथ ले लिया और गर्मी, वर्षा, थकान आदि का बराबर ध्यान रखते हुए सहृदय, स्नेही पति के रूप में उन्हें भरसक कोई कष्ट नहीं होने दिया।

आदर्श भाई

राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भी पिता, माता ओर बड़े भाई का अनुराग देकर इस तरह आप्यायित करते रहे कि उन्हें अयोध्या तथा परिजनों के वियोगका दु:ख तनिक भी खलने नहीं पाया। मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण के आहत होने पर राम को मर्मांताक पीड़ा हुई और वे फूट फूटकर रो पड़े। नारी के पीछे भाई का प्राण जाने की आशंका से उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। धैर्यवान् होते हुए भी वे इस समय परम व्याकुल हो उठे। किंतु तभी संजीवनी बूटी लेकर हनुमान के लौट आने से किसी तरह लक्ष्मण की प्राणरक्षा हो सकी। भरत पर भी राम का ऐसा ही स्नेह उनकी साधुता एवं निश्छलता पर राम का पूरा विश्वास था। इसी से भरत भी उनका पूर्ण समादर करते थे और सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन करते थे। भरत जब इन्हें लौट लाने के लिए चित्रकूट पहुँचे तब राम ने उन्हें सत्य और कर्तव्यनिष्ठा का उपदेश देते हुए बड़े प्रेम से समझाया और सहारे के लिए अपनी खड़ाउँ देकर सहृदयतापूर्वक विदा किया। वनवास की अवधि बीतने में केवल एक दिन शेष रहने पर भरत की दशा का स्मरण कर राम अत्यंत व्याकुल हो उठे और उन्होंने विभीषण से पुष्प विमान की याचना की, जिससे वे यथा समय अयोध्या पहुँच सकें।

राम के इन्हीं गुणों के कारण समस्त अयोध्यावासी और पशुपक्षी तक उनमें अनुरक्त थे। वनवास के लिए प्रस्थान करने पर भारी संख्या में लोग तमसा नदी तक उनके साथ साथ दौड़ गए। राम को आधी रात के समय उन्हें सोते छोड़कर लुक छिपकर वहाँ से कूच कर देना पड़ा। जागने पर लोगों को बड़ा पछतावा हुआ। अत्यंत दु:खित होकर वे अयोध्या लौट आए वनवास की अवधि भर राम की मंगलकामना के उद्देश्य से नेमव्रत, देवोपासना आदि करते रहे। उधर नाव में बैठकर राम के गंगा पार चले जाने पर सुमंत्र मूर्छित हो गया और उसके रथ के घोड़े भी रामवियोग में व्याकुल हो उठे। उस समय यदि कोई व्यक्ति राम लक्ष्मण का नामोल्लेख कर देता था तो वे पशु विस्फारित नेत्रों से उसकी

ओर देखने लगते थे–'जे कहि रामलखन वैदेही, हिकरि हिकरि पशु चितवहिं तेही।' पिता दशरथ ने तो पहले ही कह दिया था कि राम के बिना मेरा जीना संभव नहीं, और यही हुआ भी। माता कौशल्या को इस बात का उतना दु:ख न था कि राम वन गमन की बात सुनकर भी मेरी वज्र की छाती विदीर्ण नहीं हुई, जितनी उन्हें इस बात की ग्लानि थी कि राम जैसे आज्ञाकारी, सुशील पुत्र की मुझ जैसी माता हुई। मतिभ्रम से पूर्व कैकेयी का भी राम से पूर्ण विश्वास था। इसी से उनके राज्याभिषेक की बात सुनकर उसने प्रसन्नता करते हुए कहा था।

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।

तस्मात्तृष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति।[1]

आदर्श राजा

राम प्रजा को हर तरह से सुखी रखना राजा का परम कर्तव्य मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस राजा के शासन में प्रजा दु:खी रहती है, वह नृप अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। जनकल्याण की भावना से ही उन्होंने राज्य का संचालन किया, जिससे प्रजा धनधान्य से पूर्ण, सुखी, धर्मशील एवं निरामय हो गई–'प्रहृष्ट मुदितो लोकस्तुष्ट: पुष्ट: सुधार्मिक:। निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जित:।'

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में रामराज्य की विशद चर्चा की है। लोकानुरंजन के लिए वे अपने सर्वस्व का त्याग करने को तत्पर रहते थे। इसी से भवभूति ने उनके के मुँह से कहलाया है

'स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुंचतोनास्ति मे व्यथा'।

अर्थात् 'यदि आवश्यकता हुई तो जानकी तक का परित्याग मैं कर सकता हूँ।' प्रजानुरंजन के लिए इतना बड़ा त्याग करने पर उन्हें कितनी मर्मांतक व्यथा हुई, सीता–विरह–कातर होकर किस तरह वे मुमूर्षुवत् हो गए, इसका अत्यंत करुणोत्पादक चित्रण महाकवि भवभूति की कुशल लेखनी ने 'उत्तररामचरित' में किया है

महापराक्रमी योद्धा

राम अद्वितीय महापुरुष थे। वे अतुल्य बलशाली, सौंदर्यनिधान तथा उच्च शील के व्यक्ति थे। किशोरावस्था में ही उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों में रत विश्वामित्र मुनि के परित्राणार्थ ताड़का और सुबाहु राक्षस का वध किया। राजा जनक की स्वयंवर सभा में उन्होंने शिव का वह विशाल धनुष अनायास ही तोड़ डाला जिसके सामने बड़े बड़े वीरपुंगवों को भी नतमस्तक होना पड़ा था। दंडक वन में शूर्पणखा के भड़काने से जब खर, दूषण, त्रिशिरादि ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया तो अकेले ही युद्ध करते हुए उन्होंने थोड़े समय में ही उनका विनाश कर डाला। किष्किंधा में एक ही बाण से राम ने सात तालवृक्षों का छेदन कर दिया और बाद में बड़े भाई के त्रास से उत्पीड़ित सुग्रीव की रक्षा के लिए बालि जैसे महापराक्रमी योद्धा को भी धराशायी कर दिया। लंका में रावण, कुंभकर्ण आदि से हुआ

उनका युद्ध तो पराक्रम की पराकाष्ठा का ऐसा उदाहरण है जिसकी मिसाल अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी।

परमधाम

जब प्रभु श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न ने सरयू नदी के 'गोप्रतार घाट' पर विष्णु स्वरूप में प्रवेश किया तो उनके साथ गया समस्त समूह, अर्थात राक्षस, मनुज, रीछ, पक्षी, वानर और ब्रह्माजी ये सब देखकर बहुत आह्लादित हुए और अपने धाम को चले गए। ऐसा मना जाता है कि राम 1100 सौ सालों तक जीवित थे क्योकि वैदिक ऐसी मान्यता है कि कोई भी चक्रवती राजा सौ सालों मे केवल एक बार अश्वमेध यज्ञ कर सकता है राम ने अपने जीवन में कुल 11 बार अश्वमेंध यज्ञ किया था।

4-- वैदिक महापुरुष योगेश्वर कृष्ण

ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय बड़े महत्त्व का है। इसी समय में प्रजातंत्र और नृपतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए। मगध राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और भारत का वह महान् भीषण संग्राम हुआ, जिसे महाभारत युद्ध कहते हैं। इन राजनीतिक हलचलों के अतिरिक्त इस काल का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। मथुरा नगरी इस महान् विभूति का जन्मस्थान होने के कारण धन्य हो गई। मथुरा ही नहीं, सारा शूरसेन या ब्रज जनपद आनंदकंद कृष्ण की मनोहर लीलाओं की क्रीड़ाभूमि होने के कारण गौरवान्वित हो गया। मथुरा और ब्रज को कालांतर में जो असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वह इस महापुरुष की जन्मभूमि और क्रीड़ाभूमि होने के कारण ही प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के महान् स्रोत हुए। इस धर्म ने कोटि-कोटि भारतीय जन का अनुरंजन तो किया ही, साथ ही कितने है विदेशी इसके द्वारा प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण की मनोहर लीलाओं से ओत-प्रोत है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस-पटल पर जो छाप लगा दी है, वह अमिट है। ब्रज में भगवान श्रीकृष्ण को लोग कई नामों से पुकारते है- कान्हा, गोपाल, गिरधर, माधव, केशव, मधुसूदन, गिरधारी, रणछोड़, बंशीधर, नंदलाल, मुरलीधर आदि नामों से जाने जाते हैं।

कृष्ण जन्म का समय -वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म लगभग ई. पू. 3000 माना जाता है। ये सम्भवत: 175 वर्ष से कुछ ऊपर की आयु तक जीवित रहे। अपने इस दीर्घ जीवन में उन्हें विविध प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन तो ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच-बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएं उनके समय में घटीं, उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती है। वैदिक साहित्य में तो कृष्ण का उल्लेख बहुत कम मिलता है और उसमें उन्हें मानव-रूप में ही दिखाया गया है, न कि नारायण या विष्णु के अवतार रूप में।

सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। जब-जब इस पृथ्वी पर असुर एवं राक्षसों के पापों का आतंक व्याप्त होता है, तब-तब भगवान विष्णु किसी न किसी रूप में अवतरित होकर पृथ्वी के भार को कम करते हैं। वैसे तो भगवान विष्णु ने अभी तक तेईस अवतारों को धारण किया। इन अवतारों में उनके सबसे महत्वपूर्ण अवतार 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण' के ही माने जाते हैं। श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ कहा गया है कि "देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव:कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।" श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है।

लीलाओं का संदेश

कृष्ण लीलाओं का जो विस्तृत वर्णन भागवत ग्रंथ में किया गया है, उसका उद्देश्य क्या केवल कृष्ण भक्तों की श्रद्धा बढ़ाना है या मनुष्य मात्र के लिए इसका कुछ संदेश है? तार्किक मन को विचित्र-सी लगने वाली इन घटनाओं के वर्णन का उद्देश्य क्या ऐसे मन को अतिमानवीय पराशक्ति की रहस्यमयता से विमूढ़वत बना देना है अथवा उसे उसके तार्किक स्तर पर ही कुछ गहरा संदेश देना है, इस पर विचार करना चाहिए। श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष हुए हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण 'छान्दोग्य उपनिषद' के एक उल्लेख में मिलता है। वहाँ[कहा गया है कि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को महर्षिदेव:कोटी आंगिरस ने निष्काम कर्म रूप यज्ञ उपासना की शिक्षा दी थी, जिसे ग्रहण कर श्रीकृष्ण 'तृप्त' अर्थात् पूर्ण पुरुष हो गए थे।

श्रीकृष्ण का जीवन, जैसा कि महाभारत में वर्णित है, इसी शिक्षा से अनुप्राणित था और 'गीता' में उसी शिक्षा का प्रतिपादन उनके ही माध्यम से किया गया है। किंतु इनके जन्म और बाल-जीवन का जो वर्णन प्राप्त है, वह मूलतः श्रीमद्भागवत का है और वह ऐतिहासिक कम, आध्यात्मिक अधिक है और यह बात ग्रंथ के आध्यात्मिक स्वरूप के अनुसार ही है। ग्रंथ में चमत्कारी भौतिक वर्णनों के पर्दे के पीछे गहन आध्यात्मिक संकेत संजोए गए हैं। वस्तुतः भागवत में सृष्टि की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का और उस प्रक्रिया को गति देने वाली परमात्म शक्ति का दर्शन कराया गया है। ग्रंथ के पूर्वार्ध में सृष्टि के क्रमिक विकास का और उत्तरार्ध (दशम स्कंध) में श्रीकृष्ण की लीलाओं के द्वारा व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास का वर्णन प्रतीक शैली में किया गया है।

श्रीकृष्ण को हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। सनातन धर्म के अनुसार भगवान विष्णु सर्वपापहारी पवित्र और समस्त मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रमुख देवता हैं। श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर 'युग पुरुष' थे। उनके व्यक्तित्व में भारत को एक प्रतिभा सम्पन्न 'राजनीतिवेत्ता' ही नही, एक महान् 'कर्मयोगी' और 'दार्शनिक' प्राप्त हुआ, जिसका 'गीता' ज्ञान समस्त मानव–जाति एवं सभी देश–काल के लिए पथ–प्रदर्शक है। कृष्ण की स्तुति लगभग सारे भारत में किसी न किसी रूप में की जाती है। वे लोग जिन्हें हम साधारण रूप में नास्तिक या धर्म निरपेक्ष की श्रेणी में रखते हैं, निश्चित रूप से 'श्रीमद् भगवद्गीता' से प्रभावित हैं। 'गीता' किसने और किस काल में कही या लिखी यह शोध का विषय है, किन्तु 'गीता' को कृष्ण से ही जोड़ा जाता है। यह आस्था का प्रश्न है और यूँ भी आस्था के प्रश्नों के उत्तर इतिहास में नहीं तलाशे जाते।

वैदिक महपुरुष योगेश्वर कृष्ण

अठारह दिन चले महाभारत के युद्ध में रक्तपात के सिवाय कुछ हासिल नहीं हुआ। इस युद्ध में कौरवों के समस्त कुल का नाश हुआ, साथ ही पाँचों पांडवों को छोड़कर पांडव कुल के अधिकाँश लोग मारे गए। लेकिन इस युद्ध के कारण, युद्ध के पश्चात एक और वंश का खात्मा हो गया वो था 'श्री कृष्ण जी का यदुवंश'।

गांधारी ने दिया था यदुवंश के नाश का श्राप :

महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद जब युधिष्ठर का राजतिलक हो रहा था तब कौरवों की माता गांधारी ने महाभारत युद्ध के लिए श्रीकृष्ण को दोषी ठहराते हुए श्राप दिया की जिस प्रकार कौरवों के वंश का नाश हुआ है ठीक उसी प्रकार यदुवंश का भी नाश होगा। गांधारी के श्राप से विनाशकाल आने के कारण श्रीकृष्ण द्वारिका लौटकर यदुवंशियों को लेकर प्रयास क्षेत्र में आ गये थे। यदुवंशी अपने साथ अन्न-भंडार भी ले आये थे। कृष्ण ने ब्राह्मणों को अन्नदान देकर यदुवंशियों को मृत्यु का इंतजार करने का आदेश दिया था। कुछ दिनों बाद महाभारत-युद्ध की चर्चा

करते हुए सात्यकि और कृतवर्मा में विवाद हो गया। सात्यकि ने गुस्से में आकर कृतवर्मा का सिर काट दिया। इससे उनमें आपसी युद्ध भड़क उठा और वे समूहों में विभाजित होकर एक-दूसरे का संहार करने लगे। इस लड़ाई में श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और मित्र सात्यकि समेत सभी यदुवंशी मारे गये थे, केवल बब्रु और दारूक ही बचे रह गये थे। यदुवंश के नाश के बाद कृष्ण के ज्येष्ठ भाई बलराम समुद्र तट पर बैठ गए और एकाग्रचित्त होकर परमात्मा में लीन हो गए। इस प्रकार शेषनाग के अवतार बलरामजी ने देह त्यागी और स्वधाम लौट गए।

बहेलिये का तीर लगने से हुई श्रीकृष्ण की मृत्यु

बलराम जी के देह त्यागने के बाद जब एक दिन श्रीकृष्ण जी पीपल के नीचे ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए थे, तब उस क्षेत्र में एक जरा नाम का बहेलिया आया हुआ था। जरा एक शिकारी था और वह हिरण का शिकार करना चाहता था। जरा को दूर से हिरण के मुख के समान श्रीकृष्ण का तलवा दिखाई दिया। बहेलिए ने बिना कोई विचार किए वहीं से एक तीर छोड़ दिया जो कि श्रीकृष्ण के तलवे में जाकर लगा। जब वह पास गया तो उसने देखा कि श्रीकृष्ण के पैरों में उसने तीर मार दिया है। इसके बाद उसे बहुत पश्चाताप हुआ और वह क्षमायाचना करने लगा। तब श्रीकृष्ण ने बहेलिए से कहा कि जरा तू डर मत, तूने मेरे मन का काम किया है। अब तू मेरी आज्ञा से स्वर्गलोक प्राप्त करेगा।

बहेलिए के जाने के बाद वहां श्रीकृष्ण का सारथी दारुक पहुंच गया। दारुक को देखकर श्रीकृष्ण ने कहा कि वह द्वारिका जाकर सभी को यह बताए कि पूरा यदुवंश नष्ट हो चुका है और बलराम के साथ कृष्ण भी स्वधाम लौट चुके हैं। अत: सभी लोग द्वारिका छोड़ दो, क्योंकि यह नगरी अब जल मग्न होने वाली है। मेरी माता, पिता और सभी प्रियजन इंद्रप्रस्थ को चले जाएं। यह संदेश लेकर दारुक वहां से चला गया। इसके बाद उस क्षेत्र में सभी देवता और स्वर्ग की अप्सराएं, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि आए और उन्होंने श्रीकृष्ण की आराधना की। आराधना के बाद श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र बंद कर लिए और वे सशरीर ही अपने धाम को लौट गए।

श्रीमद भागवत के अनुसार जब श्रीकृष्ण और बलराम के स्वधाम गमन की सूचना इनके प्रियजनों तक पहुंची तो उन्होंने भी इस दुख से प्राण त्याग दिए। देवकी, रोहिणी, वसुदेव, बलरामजी की पत्नियां, श्रीकृष्ण की पटरानियां आदि सभी ने शरीर त्याग दिए। इसके बाद अर्जुन ने यदुवंश के निमित्त पिण्डदान और श्राद्ध आदि संस्कार किए।

इन संस्कारों के बाद यदुवंश के बचे हुए लोगों को लेकर अर्जुन इंद्रप्रस्थ लौट आए। इसके बाद श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर शेष द्वारिका समुद्र में डूब गई। श्रीकृष्ण के स्वधाम लौटने की सूचना पाकर सभी पाण्डवों ने भी हिमालय की ओर यात्रा प्रारंभ कर दी थी। इसी यात्रा में ही एक-एक करके पांडव भी शरीर का त्याग करते गए। अंत में युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग पहुंचे थे।

वानर राज बाली ही था ज़रा बहेलिया

संत लोग यह भी कहते हैं कि प्रभु ने त्रेता में राम के रूप में अवतार लेकर बाली को छुपकर तीर मारा था। कृष्णावतार के समय भगवान ने उसी बाली को जरा नामक बहेलिया बनाया और अपने लिए वैसी ही मृत्यु चुनी, जैसी बाली को दी थी।

6 –– वैदिक इतिहास संक्षीप्त रामायण की कहानीः-

वैसे तो रामायण की कहानी बहुत लम्बी है परन्तु आज हम आपके सामने इस कहानी का एक संक्षिप्त रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे हैं। रामायण श्री राम की एक अद्भुत अमर कहानी है जो हमें विचारधारा, भक्ति, कर्तव्य, रिश्ते, धर्म, और कर्म को सही मायने में सिखाता है।

श्री राम अयोध्या के राजा दशरथ के जेष्ट पुत्र थे और माता सीता उनकी धर्मपत्नी थी। राम बहुत ही साहसी, बुद्धिमान और आज्ञाकारी और सीता बहुत ही सुन्दर, उदार और पुण्यात्मा थी। माता सीता की मुलाकात श्री राम से उनके स्वयंवर में हुई जो सीता माता के पिता, मिथिला के राजा जनक द्वारा संयोजित किया गया था। यह स्वयंवर माता सीता के लिए अच्छे वर की खोज में आयोजित किया गया था।

उस आयोजन में कई राज्यों के राजकुमारों और राजाओं को आमंत्रित किया गया था। शर्त यह थी की जो कोई भी शिव धनुष को उठा कर धनुष के तार को खीच सकेगा उसी का विवाह सीता से होगा। सभी राजाओं ने कोशिश किया परन्तु वे धनुष को हिला भी ना सके। जब श्री राम की बारी आई तो श्री राम ने एक ही हाथ से धनुष उठा लिया और जैस ही उसके तार को खीचने की कोशिश की वह धनुष दो टुकड़ों में टूट गया। इस प्रकार श्री राम और सीता का मिलन / विवाह हुआ।

अयोध्या राज घराने में षड्यंत्रः–

अयोध्या के राजा दशरथ के तीन पत्नियां और चार पुत्र थे। राम सभी भाइयों में बड़े थे और उनकी माता का नाम कौशल्या था। भरत राजा दशरथ के दूसरी और प्रिय पत्नी कैकेयी के पुत्र थे। दुसरे दो भाई थे, लक्ष्मण और सत्रुघन जिनकी माता का नाम था सुमित्रा।

जब राम को एक तरफ राज तिलक करने की तैयारी हो रही थी तभी उसकी सौतेली माँ कैकेयी, अपने पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाने का षड्यंत्र रच रही थी। यह षड्यंत्र बूढी मंथरा के द्वारा किया गया था। रानी कैकेयी ने एक बार राजा दशरथ की जीवन की रक्षा की थी तब राजा दशरथ ने उन्हें कुछ भी मांगने के लिए पुछा था पर कैकेयी ने कहा समय आने पर मैं मांग लूंगी।

उसी वचन के बल पर कैकेयी ने राजा दशरथ से पुत्र भरत के लिए अयोध्या का सिंघासन और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगा। श्री राम तो आज्ञाकारी थे इसलिए उन्होंने अपने सौतेली माँ कैकेयी की बातों को आशीर्वाद माना और माता सीता और प्रिय भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष का वनवास व्यतीत करने के लिए राज्य छोड़ कर चले गए।

इस असीम दुख को राजा दशरथ सह नहीं पाए और उनकी मृत्यु हो गयी। कैकेयी के पुत्र भरत को जब यह बात पता चली तो उसने भी राज गद्दी लेने से इंकार कर दिया।

चौदह वर्ष का वनवासः–

राम, सीता और लक्ष्मण वनवास के लिए निकल पड़े। रास्ते में उन्होंने कई असुरों का संहार किया और कई पवित्र और अच्छे लोगों से भी वे मिले। वे वन चित्रकूट में एक कुटिया बना कर रहने लगे। एक बार की बात है लंका के असुर राजा रावन की छोटी बहन सूर्पनखा ने राम को देखा और वह मोहित हो गयी।

उसने राम को पाने की कोशिश की पर राम ने उत्तर दिया – मैं तो विवाहित हूँ मेरे भाई लक्ष्मण से पूछ के देखो। तब सूर्पनखा लक्ष्मण के पास जा कर विवाह का प्रस्ताव रखने लगी पर लक्ष्मण ने साफ़ इनकार कर दिया। तब सूर्पनखा ने क्रोधित हो कर माता सीता पर आक्रमण कर दिया। यह देख कर लक्ष्मण ने चाकू से सूर्पनखा का नाक काट दिया। कटी हुई नाक के साथ रोते

हुए जब सूर्पनखा लंका पहुंची तो सारी बातें जान कर रावण को बहुत क्रोध आया। उसने बाद रावन ने सीता हरण की योजना बनायीं।

सीता हरणः-

योजना के तहत रावन ने मारीच राक्षश को चित्रकूट के कुटिया के पास एक सुन्दर हिरन के रूप में भेजा। जब मारीच को माता सीता ने देखा तो उन्होंने श्री राम से उस हिरण को पकड़ के लाने के लिए कहा। सीता की बात को मान कर राम उस हिरण को पकड़ने उसके पीछे-पीछे गए और लक्ष्मण को आदेश दिया की वो सीता को छोड़ कर कहीं ना जाए। बहुत पिचा करने के बाद राम ने उस हिरण को बाण से मारा। जैसे ही राम का बाण हिरण बने मारीच को लगा वह अपने असली राक्षस रूप में आ गया और राम के आवाज़ में सीता और लक्ष्मण को मदद के लिए पुकारने लगा।

सीता ने जब राम के आवाज़ में उस राक्षश के विलाप को देखा तो वो घबरा गयी और उसने लक्ष्मण को राम की मदद के लिए वन जाने को कहा। लक्ष्मण ने सीता माता के कुटिया को चारों और से "लक्ष्मण रेखा" से सुरक्षित किया और वो श्री राम की खोज करने वन में चले गए।

योजना के अनुसार रावण एक साधू के रूप में कुटिया पहुंचा और भिक्षाम देहि का स्वर लगाने लगा। जैसे ही रावण ने कुटिया के पास लक्ष्मण रेखा पर अपना पैर रखा उसका पैर जलने लगा यह देखकर रावण ने माता सीता को बाहर आकर भोजन देने के लिए कहा। जैसे ही माता सीता लक्ष्मण रेखा से बाहर निकली रावण ने पुष्पक विमान में उनका अपहरण कर लिया।

जब राम और लक्ष्मण को यह पता चला की उनके साथ छल हुआ है तो वो कुटिया की और भागे पर वहां उन्हें कोई नहीं मिला। जब रावण सीता को पुष्पक विमान में लेकर जा रहा था तब बूढ़े जटायु पक्षी ने रावण से सीता माता को छुड़ाने के लिए युद्ध किया परन्तु रावण ने जटायु का पंख काट डाला। जब राम और लक्ष्मण सीता को ढूँढते हुए जा रहे थे तो रास्ते में जटायु का शारीर पड़ा था और वो राम-राम विलाप कर रहा था। जब राम और लक्ष्मण ने उनसे सीता के विषय में पुछा तो जटायु ने उन्हें बताया की रावण माता सीता को उठा ले गया है और यह बताते बताते उसकी मृत्यु हो गयी।

राम और हनुमानः-

हनुमान किसकिन्धा के राजा सुग्रीव की वानर सेना के मंत्री थे। राम और हनुमान पहली बार रिशिमुख पर्वत पर मिले जहाँ सुग्रीव और उनके साथी रहते थे। सुग्रीव के भाई बाली ने उससे उसका राज्य भी छीन लिया और उसकी पत्नी को भी बंदी बना कर रखा था।

जब सुग्रीव राम से मिले वे दोनों मित्र बन गए। जब रावण पुष्पक विमान में सीता माता को ले जा रहा था तब माता सीता ने निशानी के लिए अपने अलंकर फैक दिए थे वो सुग्रीव की सेना के कुछ वानरों को मिला था। जब उन्होंने श्री राम को वो अलंकर दिखाये तो राम और लक्ष्मण के आँखों में आंसू आगये।

श्री राम ने बाली का वध करके सुग्रीव को किसकिन्धा का राजा दोबारा बना दिया। सुग्रीव ने भी मित्रता निभाते हुए राम को वचन दिया की वो और उनकी वानर सेना भी सीता माता को रावन के चंगुल से छुडाने के लिए पूरी जी जान लगा देंगे।

वानर सेनाः-

उसके बाद हनुमान, सुग्रीव, जामवंत, ने मिल कर सुग्रीव की वानर सेना का नेतृत्व किया और चारों दिशाओं में अपनी सेना को भेजा। सभी दिशाओं में ढूँढने के बाद भी कुछ ना मिलने पर ज्यादातर सेना वापस लौट आये। दक्षिण की तरफ हनुमान एक सेना लेकर गए जिसका नेतृत्व अंगद कर रहे थे। जब वे दक्षिण के समुंद तट पर पहुंचे तो वे भी उदास होकर विन्द्य पर्वत पर इसके विषय में बात कर रहे थे।

वहीँ कोने में एक बड़ा पक्षी बैठा था जिसका नाम था सम्पाती। सम्पति वानरों को देखकर बहुत खुश हो गया और भगवान् का शुक्रिया करने लगा इतना सारा भोजन देने के लिए। जब सभी वानरों को पता चला की वह उन्हें खाने की कोशिश करने वाला था तो सभी उसकी घोर आलोचना करने लगे और महान पक्षी जटायु का नाम लेकर उसकी वीरता की कहानी सुनाने लगे।

जैसे ही जटायु की मृत्यु की बात उसे पता चला वह ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगा। उसने वानर सेना को बताया की वो जटायु का भाई है और यह भी बताया की उसने और जटायु ने मिलकर स्वर्ग में जाकर इंद्र को भी युद्ध में हराया था। उसने यह भी बताया की सूर्य की तेज़ किरणों से जटायु की रक्षा करते समय उसके सभी पंख भी जल गए और वह उस पर्वत पर गिर गया।

सम्पाती ने वानरों से बताया कि वह बहुत ज्यादा जगहों पर जा चूका है और उसने यह भी बताया की लंका का असुर राजा रावण ने सीता को अपहरण किया है और उसी दक्षिणी समुद्र के दूसरी ओर उसका राज्य है।

लंका की ओर हनुमान की समुद्र यात्राः-

जामवंत ने हनुमान के सभी शक्तियों को ध्यान दिलाते हुए कहा की हे हनुमान आप तो महा ज्ञानी, वानरों के स्वामी और पवन पुत्र हैं। यह सुन कर हनुमान का मन हर्षित हो गया और वे समुंद्र तट किनारे स्तिथ सभी लोगों से बोले आप सभी कंद मूल खाकर यही मेरा इंतज़ार करें जब तक में सीता माता को देखकर वापस ना लौट आऊं। ऐसा कहकर वे समुद्र के ऊपर से उड़ते हुए लंका की ओर चले गए।

रास्ते में जाते समय उन्हें सबसे पहले मेनका पर्वत आये। उन्होंने हनुमान जी से कुछ देर आराम करने के लिए कहा पर हनुमान ने उत्तर दिया – जब तक में श्री राम जी का कार्य पूर्ण ना कर लूं मेरे जीवन में विश्राम की कोई जगह नहीं है और वे उड़ाते हुए आगे चले गए।

देवताओं ने हनुमान की परीक्षा लेने के लिए सापों की माता सुरसा को भेजा। सुरसा ने हनुमान को खाने की कोशिश की पर हनुमान को वो खा ना सकी। हनुमान उसके मुख में जा कर दोबारा निकल आये और आगे चले गए।

समुंद्र में एक छाया को पकड़ कर खा लेने वाली राक्षसी रहती थी। उसने हनुमान को पकड़ लिया पर हनुमान ने उसे भी मार दिया।

हनुमान लंका दहन की कहानीः-

समुद्र तट पर पहुँचने के बाद हनुमान एक पर्वत के ऊपर चढ़ गए और वहां से उन्होंने लंका की और देखा। लंका का राज्य उन्हें दिखा जिसके सामने एक बड़ा द्वार था और पूरा लंका सोने का बना हुआ था।

हनुमान ने एक छोटे मछर के आकार जितना रूप धारण किया और वो द्वार से अन्दर जाने लगे। उसी द्वार पर लंकिनी नामक राक्षसी रहती थी। उसने हनुमान का रास्ता रोका तो हनुमान ने एक ज़ोर का घूँसा दिया तो निचे जा कर गिरी। उसने डर के मारे हनुमान को हाथ जोड़ा और लंका के भीतर जाने दिया। हनुमान ने माता सीता को महल के हर जगह ढूँढा पर वह उन्हें नहीं मिली। थोड़ी दे बाद ढूँढने के बाद उन्हें एक ऐसा महल दिखाई दिया जिसमें एक छोटा सा मंदिर था एक तुलसी का पौधा भी। हनुमान जी को यह देखकर अचंभे में पड गए औए उन्हें यह जानने की इच्छा हुई की आखिर ऐसा कौन है जो इन असुरों के बिच श्री राम का भक्त है। यह जानने के लिए हनुमान ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया और उन्हें पुकारा। विभीषण अपने महल से बाहर निकले और जब उन्होंने हनुमान को देखा तो वो बोले – हे महापुरुष आपको देख कर मेरे मन में अत्यंत सुख मिल रहा है, क्या आप स्वयं श्री राम हैं?

हनुमान ने पुछा आप कौन हैं? विभीषण ने उत्तर दिया – मैं रावण का भाई विभीषण हूँ।

यह सुन कर हनुमान अपने असली रूप में आगए और श्री रामचन्द्र जी के विषय में सभी बातें उन्हें बताया। विभीषण ने निवेदन किया- हे पवनपुत्र मुझे एक बार श्री राम से मिलवा दो। हनुमान ने उत्तर दिया – मैं श्री राम जी से ज़रूर मिलवा दूंगा परन्तु पहले मुझे यह बताये की मैं जानकी माता से कैसे मिल सकता हूँ?

अशोक वाटिका में हनुमान सीता भेटः-

विभीषण ने हनुमान को बताया की रावण ने सीता माता को अशोक वाटिका में कैद करके रखा है। यह जानने के बाद हनुमान जी ने एक छोटा सा रूप धारण किया और वह अशोक वाटिका पहुंचे। वहां पहुँचने के बाद उन्होंने देखा की रावण अपने दसियों के साथ उसी समय अशोक वाटिका में में पहुंचा और सीता माता को अपने ओर देखने के लिए साम दाम दंड भेद का उपयोग किया पर तब भी सीता जी ने एक बार भी उसकी ओर नहीं देखा। रावण ने सभी राक्षसियों को सीता को डराने के लिए कहा। पर त्रिजटा नामक एक राक्षसी ने माता सीता की बहुत मदद और देखभाल की और अन्य राक्षसियों को भी डराया जिससे अन्य सभी राक्षसी भी सीता की देखभाल करने लगे।

कुछ देर बाद हनुमान ने सीता जी के सामने श्री राम की अंगूठी डाल दी। श्री राम नामसे अंकित अंगूठी देख कर सीता माता के आँखों से ख़ुशी के अंशु निकल पड़े। परन्तु सीता माता को संदेह हुआ की कहीं यह रावण की कोई चाल तो नहीं। तब सीता माता ने पुकारा की कौन है जो यह अंगूठी ले कर आया है। उसके बाद हनुमान जी प्रकट हुए पर हनुमान जी को देखकर भी सीता

माता को विश्वस नहीं हुआ। उसके बाद हनुमान जी ने मधुर वचनों के साथ रामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया और बताया की वो श्री राम जी के दूत हैं। सीता ने व्याकुलता से श्री राम जी का हाल चाल पुछा। हनुमान जी ने उत्तर दिया – हे माते श्री राम जी ठीक हैं और वे आपको बहुत याद करते हैं। वे बहुत जल्द ही आपको लेने आयेंगे और में शीघ्र ही आपका सन्देश श्री राम जी के पास पहुंचा दूंगा।

तभी हनुमान ने सीता माता से श्री राम जी को दिखने के लिए चिन्ह माँगा तो माता सीता ने हनुमान को अपने कंगन उतार कर दे दिए।

हनुमान लंका दहनः- हनुमान जी को बहुत भूख लग रहा था तो हनुमान अशोक वाटिका में लगे पेड़ों के फलों को खाने लगे। फलों को खाने के साथ-साथ हनुमान उन पेड़ों को तोड़ने लगे तभी रावण के सैनिकों ने हनुमान पर प्रहार किया पर हनुमान ने सबको मार डाला। जब रावण को इस बात का परा चला की कोई बन्दर अशोक वाटिका में उत्पात मचा रहा है तो उसने अपने पुत्र अक्षय कुमार को भेजा हनुमान का वध करने के लिए। पर हनुमान जी ने उसे क्षण भर में ऊपर पहुंचा दिया। कुछ देर बाद जब रावण को जब अपने पुत्र की मृत्यु का पता चला वह बहुत ज्यादा क्रोधित हुआ। उसके बाद रावण ने अपने जेष्ट पुत्र मेघनाद को भेजा। हनुमान के साथ मेघनाद का बहुत ज्यादा युद्ध हुआ परकुछ ना कर पाने के बाद मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र चला दिया। ब्रह्मास्त्र का सम्मान करते हुए हनुमान स्वयं बंधग बन गए। हनुमान को रावण की सभा में लाया गया। रावण हनुमान को देख कर हंसा और फिर क्रोधित हो कर उसने प्रश्न किया – रे वानर, तूने किस कारण अशोक वाटिका को तहस-नहस कर दिया? तूने किस कारण से मेरे सैनिकों और पुत्र का वध कर दिया क्या तुझे अपने प्राण जाने का डर नहीं है?

यह सुन कर हनुमान ने कहा – हे रावण, जिसने महान शिव धनुष को पल भर में तोड़ डाला, जिसने खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली को मार गिराया, जिसकी प्रिय पत्नीका तुमने अपहरण किया, मैं उन्ही का दूत हूँ। मुजे भूख लग रहा था इसलिए मैंने फल खाए और तुम्हारे राक्षसों ने मुझे खाने नहीं दिया इसलिए मैंने उन्हें मार डाला। अभी भी समय है सीता माता को श्री राम को सौंप दो और क्षमा मांग लो।

रावण हनुमान की बता सुन कर हसने लगा और बोला – रे दुष्ट, तेरी मृत्यु तेरे सिर पर है। ऐसा कह कर रावण ने अपने मंत्रियों को हनुमान को मार डालने का आदेश दिया। यह सुन कर सभी मंत्री हनुमान को मारने दौड़े। तभी विभीषण वहां आ पहुंचे और बोले- रुको, दूत को मारना सही नहीं होगा यह निति के विरुद्ध है। कोई और भयानक दंड देना चाहिए।

सभी ने कहा बन्दर का पूंछ उसको सबसे प्यारा होता है क्यों ना तेल में कपडा डूबा कर इसकी पूंछ में बंध कर आग लगा दिया जाये। हनुमान की पूंछ पर तेल वाला कपडा बंध कर आग लगा दिया गया। जैसे ही पूंछ में आग लगी हनुमान जी बंधन मुक्त हो कर एक छत से दुसरे में कूदते गए और पूरी सोने की लंका में आग लगा के समुद्र की और चले गए और वहां अपनी पूंछ पर लगी आग को बुझा दिया। वहां से सीधे हनुमान जी श्री राम के पास लौटे और वहां उन्होंने श्री राम को सीता माता के विषय में बताया और उनके कंगन भी दिखाए। सीता माता के निशानी को देख कर श्री राम भौवुक हो गए।

प्रभु राम सेतु बंधः- अब श्री राम और वानर सेना की चिंता का विषय था कैसे पूरी सेना समुद्र के दुसरे और जा सकेंगे। श्री राम जी ने समुद्र से निवेदन किया की वे रास्ता दें ताकि उनकी सेना समुद्र पार कर सके। परन्तु कई बार कहने पर भी समुद्र ने उनकी बात नहीं मानी तब राम ने लक्ष्मण से धनुष माँगा और अग्नि बाण को समुद्र पर साधा जिससे की पानी सुख जाये और वे आगे बढ़ सकें। जैसे ही श्री राम ने ऐसा किया समुद्र देव डरते हुए प्रकट हुए और श्री राम से माफ़ी मांगी और कहा हे नाथ, ऐसा ना करें आपके इस बाण से मेरे में रहते वाले सभी मछलियाँ और जीवित प्राणी का अंत हो जायेगा। श्री राम ने कहा – हे समुद्र देव हमें यह बताएं की मेरी यह विशाल सेना इस समुद्र को कैसे पार कर सकते हैं। समुद्र देव ने उत्तर दिया – हे रघुनन्दन राम आपकी सेना में दो वानर हैं नल और नील उनके स्पर्श करके किसी भी बड़े से बड़े चीज को पानी में तैरा सकते हैं। यह कह कर समुद्र देव चले गए। उनकी सलाह के अनुसार नल और नील ने पत्थर पर श्री राम के नाम लिख कर समुद्र में फैंक के देखा तो पत्थर तैरने लगा। उसके बाद एक के बाद एक करके नल नील समुद्र में पत्थर को समुद्र में फेंकते रहे और समुद्र के अगले छोर तक पहुच गए।

लंका में श्री राम की वानर सेनाः- श्री राम ने अपनी सेना के साथ समुद्र किनारे डेरा डाला। जब इस बात का पता रावण की पत्नी मंदोदरी को पता चला तो वो घबरा गयी और उसने रावण को बहुत समझाया पर वह नहीं समझा और सभा में चले गया। रावण के भाई विभीषण ने भी रावण को सभा में समझाया और सीता माता को समान्पुर्वक श्री राम को सौंप देने के लिए कहा परन्तु यह सुन कर रावण क्रोधित हो गया और अपने ही भाई को लात मार दिया जिसके कारण विभीषण सीढियों से नीचे आ गिरे। विभीषण ने अपना राज्य छोड़ दिया और वो श्री राम के पास गए।राम ने भी ख़ुशी के साथ उन्हें स्वीकार किया और अपने डेरे में रहने की जगह दी। आखरी बार श्री राम ने बाली पुत्र अंगद कुमार को भेजा पर रावण तब भी नहीं माना।

युद्ध आरंभ हुआः- श्री राम और रावण की सेना के बिच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में लक्ष्मण पर मेघनाद ने शक्ति बांण से प्रहार किया था जिसके कारण हनुमान जी संजीवनी बूटी लेने के लिए हिमालय पर्वत गए। परन्तु वे उस पौधे को पहेचन ना सके इसलिए वे पूरा हिमालय पर्वत ही उठा लाये थे।

इस युद्ध में रावण की सेना के श्री राम की सेना प्रसत कर देती है और अंत में श्री राम रावण के नाभि में बाण मार कर उसे मार देते हैं और सीता माता को छुड़ा लाते हैं। श्री राम विभीषण को लंका का राजा बनाते देते हैं। श्री राम माता सीता और भाई लक्ष्मण के साथ अपने राज्य 14वर्ष के वनवास से लौटते हैं

7-- वैदिक इतिहास महाभारत की सुक्ष्म कथाः-

महाभारत हिंदू संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है। शास्त्रों में इसे पांचवां वेद भी कहा गया है। इसके रचयिता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं। महर्षि वेदव्यास ने इस ग्रंथ के बारे में स्वयं कहा है- यन्नेहास्ति न कुत्रचित्। अर्थात जिस विषय की चर्चा इस ग्रंथ में नहीं की गई है, उसकी चर्चा अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। श्रीमद्भागवतगीता जैसा अमूल्य रत्न भी इसी महासागर की देन है।

परिचय

महाभारत की रचना महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने की है, लेकिन इसका लेखन भगवान श्रीगणेश ने किया है। इस ग्रंथ में चंद्रवंश का वर्णन है। महाभारत में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया हैं। यह महाकाव्य 'जय', 'भारत' और 'महाभारत' इन तीन नामों से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में कुल मिलाकर एक लाख श्लोक हैं, इसलिए इसे शतसाहस्त्री संहिता भी कहा जाता है। यह ग्रंथ स्मृति वर्ग में आता है। इसमें कुल 18 पर्व हैं जो इस प्रकार हैं- आदिपर्व, सभा पर्व, वनपर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व, शांति पर्व, अनुशासन पर्व, आश्वमेधिक पर्व, आश्रमवासिक पर्व, मौसल पर्व, महाप्रास्थनिक पर्व व स्वर्गारोहण पर्व। आइए इस लेख में हम इन 18 पर्वों के माध्यम से जानते है सम्पूर्ण महाभारत।

1. आदिपर्व

चंद्रवंश में शांतनु नाम के प्रतापी राजा हुए। शांतनु का विवाह देवी गंगा से हुआ। शांतनु व गंगा के पुत्र देवव्रत (भीष्म) हुए। अपने पिता की प्रसन्नता के लिए देवव्रत ने उनका विवाह सत्यवती से करवा दिया और स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली। देवव्रत की इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही उन्हें भीष्म कहा गया। शांतनु को सत्यवती से दो पुत्र हुए- चित्रांगद व विचित्रवीर्य। राजा शांतनु की मृत्यु के बाद चित्रांगद राजा बने। चित्रांगद के बाद विचित्रवीर्य गद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य का विवाह अंबिका एवं अंबालिका से हुआ। अंबिका से धृतराष्ट्र तथा अंबालिका से पांडु पैदा हुए। धृतराष्ट्र जन्म से अंधे थे, इसलिए पांडु को राजगद्दी पर बिठाया गया।

धृतराष्ट्र का विवाह गांधारी से तथा पांडु का विवाह कुंती व माद्री से हुआ। धृतराष्ट्र से गांधारी को सौ पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़ा दुर्योधन था। पांडु को कुंती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा माद्री से नकुल व सहदेव नामक पुत्र हुए। असमय पांडु की मृत्यु होने पर धृतराष्ट्र को राजा बनाया गया। कौरव (धृतराष्ट्र के पुत्र) तथा पांडव (पांडु के पुत्र) को द्रोणाचार्य ने शस्त्र विद्या सिखाई। एक बार जब सभी राजकुमार शस्त्र विद्या का प्रदर्शन कर रहे थे, तब कर्ण (यह कुंती का सबसे बड़ा पुत्र था, जिसे कुंती ने पैदा होते ही नदी में बहा दिया था।) ने अर्जुन से प्रतिस्पर्धा करनी चाही, लेकिन सूतपुत्र होने के कारण उसे मौका नहीं दिया गया। तब दुर्योधन ने उसे अंगदेश का राजा बना दिया।

एक बार दुर्योधन ने पांडवों को समाप्त करने के उद्देश्य से लाक्षागृह का निर्माण करवाया। दुर्योधन ने षड्यंत्रपूर्वक पांडवों को वहां भेज दिया। रात के समय दुर्योधन ने लाक्षागृह में आग लगवा दी, लेकिन पांडव वहां से बच निकले। जब पांडव जंगल में आराम कर रहे थे, तब हिंडिब नामक राक्षस उन्हें खाने के लिए आया, लेकिन भीम ने उसका वध कर दिया। हिंडिब की बहन हिडिंबा भीम पर मोहित हो गई। भीम ने उसके साथ विवाह किया। हिडिंबा को भीम से घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। एक बार पांडव घूमते-घूमते पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में गए। यहां अर्जुन ने स्वयंवर जीत कर द्रौपदी का वरण किया। जब अर्जुन द्रौपदी को अपनी माता कुंती के पास ले गए तो उन्होंने बिना देखे ही कह दिया कि पांचों भाई आपस में बांट लो। तब श्रीकृष्ण ने कहने पर पांचों भाइयों ने द्रौपदी से विवाह किया।

जब भीष्म, विदुर आदि को पता चला कि पांडव जीवित हैं तो उन्हें वापस हस्तिनापुर बुलाया गया। यहां आकर पांडवों ने अपना अलग राज्य बसाया, जिसका नाम इंद्रप्रस्थ रखा। एक बार नियम भंग होने के कारण अर्जुन को 12 वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा।

वनवास के दौरान अर्जुन ने नागकन्या उलूपी अमेरिका, मणिपुर की राजकुमारी चित्रांगदा व श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा से विवाह किया। अर्जुन को सुभद्रा से अभिमन्यु तथा द्रौपदी से पांडवों को पांच पुत्र हुए। वनवास पूर्ण कर अर्जुन जब पुनः इंद्रप्रस्थ पहुंचे तो सभी बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन व श्रीकृष्ण के कहने पर ही मयासुर नामक दैत्य ने इंद्रप्रस्थ में एक सुंदर सभा भवन का निर्माण किया।

2. सभा पर्व

मयासुर द्वारा निर्मित सभा भवन बहुत ही सुंदर व विचित्र था। एक बार नारद मुनि युधिष्ठिर के पास आए और उन्हें राजसूय यज्ञ करने की सलाह दी। युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गए तथा सभी राजाओं को युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। इसके बाद युधिष्ठिर ने समारोह पूर्वक राजसूय यज्ञ किया। इस समारोह में श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध कर दिया। युधिष्ठिर का ऐश्वर्य देखकर दुर्योधन के मन में ईष्र्या होने लगी। दुर्योधन ने पांडवों का राज-पाठ हथियाने के उद्देश्य से उन्हें हस्तिनापुर जुआ खेलने के लिए बुलाया। पांडव जुए में अपना राज-पाठ व धन आदि सबकुछ हार गए। इसके बाद युधिष्ठिर स्वयं के साथ अपने भाइयों व द्रौपदी को भी हार गए। भरी सभा में दु:शासन द्रौपदी को बालों से पकड़कर लाया और उसके वस्त्र खींचने लगा। किंतु श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी की लाज बच गई। द्रौपदी का अपमान देख भीम ने दु:शासन के हाथ उखाड़ कर उसका खून पीने और दुर्योधन की जंघा तोडऩे की प्रतिज्ञा की। यह देख धृतराष्ट्र डर गए और उन्होंने पांडवों को कौरवों के दासत्व से मुक्त कर दिया। इसके बाद धृतराष्ट्र ने पांडवों को उनका राज-पाठ भी लौटा दिया।

इसके बाद दुर्योधन ने पांडवों को दोबारा जुआ खेलने के लिए बुलाया। इस बार शर्त रखी कि जो जुए में हारेगा, वह अपने भाइयों के साथ तेरह वर्ष वन में बिताएगा, जिसमें अंतिम वर्ष अज्ञातवास होगा। इस बार भी दुर्योधन की ओर से शकुनि ने पासा फेंका तथा युधिष्ठिर को हरा दिया। शर्त के अनुसार पांडव तेरह वर्ष वनवास जाने के लिए विवश हुए और राज्य भी उनके हाथ से चला गया।

3. वन पर्व

जुए की शर्त के अनुसार युधिष्ठिर को अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञातवास पर जाना पड़ा। पांडव वन में अपना जीवन बिताने लगे। वन में ही व्यासजी पांडवों से मिले तथा अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए कहा। अर्जुन ने भगवान शिव से पाशुपास्त्र तथा अन्य देवताओं से भी दिव्यास्त्र प्राप्त किए। इसके लिए अर्जुन स्वर्ग भी गए। यहां किसी बात पर क्रोधित होकर उर्वशी नामक अप्सरा ने अर्जुन को नपुंसक होने का श्राप दे दिया।

तब इंद्र ने कहा कि अज्ञातवास के समय यह श्राप तुम्हारे लिए वरदान साबित होगा। इधर युधिष्ठिर आदि पांडव तीर्थयात्रा करते हुए बदरिका आश्रम आकर रहने लगे। यहीं गंधमादन पर्वत पर भीम की भेंट हनुमानजी से हुई। हनुमानजी ने प्रसन्न होकर भीम को वरदान दिया कि युद्ध के समय वे अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठकर शत्रुओं को डराएंगे। कुछ दिनों बाद अर्जुन स्वर्ग से लौट आए। एक दिन

जब द्रौपदी आश्रम में अकेली थी, तब राजा जयद्रथ (दुर्योधन की बहन दु:शला का पति) उसे बलपूर्वक उठा ले गया। पांडवों को जब पता चला तो उन्होंने उसे पकड़ लिया। जयद्रथ को दंड देने के लिए भीम ने उसका सिर मूंड दिया व पांच चोटियां रख कर छोड़ दिया।

एक बार यमराज ने पांडवों की परीक्षा ली। यमराज ने यक्ष बन कर भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव से अपने प्रश्नों के उत्तर जानने चाहे, लेकिन अभिमान वश इनमें से किसी ने भी यमराज के प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए। जिसके कारण यमराज ने इन सभी को मृतप्राय: कर दिया। अंत में युधिष्ठिर ने यमराज के सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। प्रसन्न होकर यमराज ने सभी को पुनर्जीवित कर दिया।

4. विराट पर्व

12 वर्ष के वनवास के बाद पांडवों ने अज्ञातवास बिताने के लिए विराट नगर में रहने की योजना बनाई। सबसे पहले पांडवों ने अपने शस्त्र नगर के बाहर एक विशाल वृक्ष पर छिपा दिए। युधिष्ठिर राजा विराट के सभासद बन गए। भीम रसोइए के रूप में विराट नगर में रहने लगे। नकुल घोड़ों को देख-रेख करने लगे तथा सहदेव गायों की। अर्जुन बृहन्नला बनकर राजा विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य की शिक्षा देने लगे। द्रौपदी दासी बनकर राजा विराट की पत्नी की सेवा करने लगी। राजा विराट का साला कीचक द्रौपदी का रूप देखकर उस पर मोहित हो गया और उसके साथ दुराचार करना चाहा। प्रतिशोध स्वरूप भीम ने षड्यंत्रपूर्वक उसका वध कर दिया। एक बार कौरवों ने विराट नगर पर हमले की योजना बनाई। पहले त्रिगर्तदेश के राजा सुशर्मा ने विराट नगर पर हमला किया। राजा विराट जब उससे युद्ध करने चला गया, उसी समय कौरवों ने भी विराट नगर पर हमला कर दिया। तब राजा विराट का पुत्र उत्तर बृहन्नला (अर्जुन) को सारथी बनाकर युद्ध करने आया।

उत्तर ने जब कौरवों की सेना देखी तो वह डर कर भागने लगा। उस समय अर्जुन ने उसे सारथी बनाया और स्वयं युद्ध किया। देखते ही देखते अर्जुन ने कौरवों को हरा दिया। तब तक पांडवों का अज्ञातवास समाप्त हो चुका था। अगले दिन सभी पांडव अपने वास्तविक स्वरूप में राजा विराट से मिले। पांडवों से मिलकर राजा विराट बहुत प्रसन्न हुए। राजा विराट ने अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से करवा दिया।

5. उद्योग पर्व

अज्ञातवास के बाद जब पांडव अपने वास्तविक स्वरूप में आए तो श्रीकृष्ण आदि सभी ने मिलकर ये निर्णय लिया कि शर्त के अनुसार अब कौरवों का पांडवों का राज्य लौटा देना चाहिए। तब पांडवों ने अपना एक दूत हस्तिनापुर भेजा, लेकिन दुर्योधन ने राज्य देने से इनकार कर दिया। भीष्म, द्रोणाचार्य आदि ने भी दुर्योधन को समझाने का प्रयास किया, लेकिन वह नहीं माना। तब पांडवों ने श्रीकृष्ण को अपना दूत बना कर भेजा, लेकिन दुर्योधन ने उनका भी अपमान कर दिया। जब कौरव व पांडवों में युद्ध होना तय हो गया तब पांडवों ने अपने सेनापति धृष्टद्युम्न (द्रौपदी का भाई) को बनाया। दुर्योधन ने अपना सेनापति पितामह भीष्म को नियुक्त किया। कौरव व पांडवों की सेनाएं कुरुक्षेत्र में आ गईं। भीष्म पितामह ने दुर्योधन को बताया कि पांडवों की सेना में शिखंडी नाम का जो योद्धा है वह जन्म के समय एक स्त्री था इसलिए मैं उसके साथ युद्ध नहीं करूंगा। तब भीष्म पितामह ने ये भी बताया

कि शिखंडी पूर्व जन्म में अंबा नामक राजकुमारी थी, जिसे मैं बलपूर्वक हर लाया था। उसी ने बदला लेने के उद्देश्य से पुन: जन्म लिया है।

6. भीष्म पर्व

जब युद्ध प्रारंभ होने वाला था, उस समय शत्रुओं के दल में अपने परिजनों को देखकर अर्जुन हताश हो गए। तब श्रीकृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया और अपना धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। देखते-ही देखते कौरव व पांडवों में घमासान युद्ध छिड़ गया। भीष्म लगातार 9 दिनों तक पांडव सेना का संहार करते रहे। तब श्रीकृष्ण ने पांडवों से कहा कि भीष्म की मृत्यु असंभव है इसलिए उन्हें युद्ध से हटाने का उपाय वे स्वयं ही बता सकते हैं। पांडवों के पूछने पर भीष्म ने बताया कि शिखंडी अगर मुझसे युद्ध करने आया तो मैं उस पर शस्त्र नहीं चलाऊंगा।

दसवें दिन के युद्ध में शिखंडी पांडवों की ओर से भीष्म पितामह के सामने आकर डट गया, जिसे देखते ही भीष्म ने अपने अस्त्रों का त्याग कर दिया। श्रीकृष्ण के कहने पर शिखंडी की आड़ लेकर अर्जुन ने अपने बाणों से भीष्म को घायल कर दिया।

अत्यधिक घायल होने के कारण भीष्म अपने रथ से नीचे गिर पड़े। शरीर में धंसे तीर ही उनके लिए शय्या बन गए। जब भीष्म ने देखा कि इस समय सूर्य दक्षिणायन है तो उन्हें प्राण नहीं त्यागे और तीरों की शय्या पर ही सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे।

7. द्रोण पर्व

भीष्म पितामह के बाद दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीवित पकडने के योजना बनाई। इसके लिए द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की और अर्जुन को युद्धभूमि से दूर ले गए। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस गया और वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते मृत्यु को प्राप्त हुआ। तब यह बात अर्जुन को पता चली तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की क्योंकि जयद्रथ ने अभिमन्यु के चक्रव्यूह में प्रवेश करने के बाद उसका मार्ग बंद कर दिया था। युद्ध के चौदहवें दिन अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हुए जयद्रथ का वध कर दिया। भीम का पुत्र घटोत्कच भी अपनी माया से युद्ध करते हुए कौरवों का विनाश करने लगा। जब दुर्योधन ने देखा कि यदि घटोत्कच को रोका न गया तो ये आज ही कौरव सेना को हरा देगा, तब उसने कर्ण से उसे रोकने के लिए कहा।

कर्ण ने अपनी दिव्य शक्ति, जो उसने अर्जुन के वध के लिए बचा रखी थी, का प्रहार घटोत्कच पर कर उसका वध कर दिया। युद्ध के पंद्रहवें दिन धृष्टद्युम्न ने षड्यंत्रपूर्वक द्रोणाचार्य का वध कर दिया। जब यह बात अश्वत्थामा को पता चली तो उसने नारायण अस्त्र का प्रहार किया, लेकिन श्रीकृष्ण के कारण पांडव बच गए।

8. कर्ण पर्व

द्रोणाचार्य के बाद दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाया। दो दिनों तक कर्ण ने पराक्रमपूर्वक पांडवों की सेना का विनाश किया। सत्रहवे दिन कर्ण राजा शल्य को अपना सारथि बना कर युद्ध करने

आया। कर्ण जब अर्जुन से युद्ध कर रहा था उस समय भीम कौरव सेना का नाश कर रहा था। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हुए दु:शासन के दोनों हाथ उखाड़ दिए। यह देख कर्ण ने युधिष्ठिर को घायल कर दिया। जब यह बात अर्जुन को पता चली तो वह कर्ण से युद्ध करने आए। अर्जुन और कर्ण के बीच भयंकर युद्ध होने लगा। तभी अचानक कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धंस गया। जब कर्ण अपने रथ का पहिया जमीन से निकालने के लिए उतरे, उसी समय अर्जुन ने उनका वध कर दिया।

9. शल्य पर्व

कर्ण की मृत्यु के बाद कृपाचार्य ने दुर्योधन को पांडवों से संधि करने के लिए समझाया, लेकिन वह नहीं माना। अगले दिन दुर्योधन ने राजा शल्य को सेनापति बनाया। राजा शल्य सेनापति बनते ही पांडवों की सेना पर टूट पड़े। यह युद्ध का 18वां दिन था। राजा शल्य ने युधिष्ठिर को बीच भयंकर युद्ध हुआ। अंत में युधिष्ठिर ने राजा शल्य का वध कर दिया। यह देख कौरव सेना भागने लगी। उसी समय सहदेव ने शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक का वध कर दिया। यह देख दुर्योधन रणभूमि से भाग कर दूर एक सरोवर में जाकर छिप गया। पांडवों को जब पता चला कि दुर्योधन सरोवर में छिपा है तो उन्होंने जाकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन और भीम में भयंकर युद्ध हुआ। अंत में भीम ने दुर्योधन को पराजित कर दिया और मरणासन्न अवस्था में छोड़कर वहां से चले गए।

उस समय कौरवों के केवल तीन ही महारथी बचे थे-अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। संध्या के समय जब उन्हें पता चला कि दुर्योधन मरणासन्न अवस्था में सरोवर के किनारे पड़े हैं, तो वे तीनों वहां पहुंचे। दुर्योधन उन्हें देखकर अपने अपमान से क्षुब्ध होकर विलाप कर रहा था। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि मैं चाहे जैसे भी हो, पांडवों का वध अवश्य करूंगा। दुर्योधन ने वहीं अश्वत्थामा को सेनापति बना दिया।

10. सौप्तिक पर्व

अश्वत्थामा, कृपाचार्य व कृतवर्मा रात के अंधेरे में पांडवों के शिविर में गए, लेकिन उन्हें ये नहीं पता था कि उस समय पांडव अपने शिविर में नहीं हैं। रात में उचित अवसर देखकर अश्वत्थामा हाथ में तलवार लेकर पांडवों के शिविर में घुस गया, उसने कृतवर्मा और कृपाचार्य से कहा कि यदि कोई शिविर से जीवित निकले तो तुम उसका वध कर देना। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न, शिखंडी, उत्तमौजा आदि वीरों के साथ द्रौपदी के पांचों पुत्रों का भी वध कर दिया और शिविर में आग लगा दी।

जब यह बात अश्वत्थामा ने जाकर दुर्योधन को बताई तो वह उसके मन को शांति मिली और तभी उसके प्राण पखेरु उड़ गए। इस प्रकार दुर्योधन का अंत हो गया। जब पांडवों को पता चला कि अश्वत्थामा ने छल पूर्वक सोते हुए हमारे पुत्रों व परिजनों का वध कर दिया है तो उन्हें बहुत क्रोध आया। पांडव अश्वत्थामा को ढूंढने निकल पड़े। अश्वत्थामा को ढूंढते-ढूंढते पांडव महर्षि व्यास के आश्रम तक आ गए। तभी उन्हें यहां अश्वत्थामा दिखाई दिया। पांडवों को आता देख अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया।

उससे बचने के लिए अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र चलाया। दोनों अस्त्रों को टकराव से सृष्टि का नाश होने लगा। तभी महर्षि वेदव्यास ने अर्जुन और अश्वत्थामा को अपने-अपने शस्त्र लौटाने के लिए कहा।

अर्जुन ने ऐसा ही किया किंतु अश्वत्थामा को अस्त्र लौटाने का विद्या नहीं आती थी। तब उसने अपने अस्त्र की दिशा बदल कर अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ की ओर कर दी। ताकि पांडवों के वंश का नाश हो जाए। तब श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को सदियों तक पृथ्वी पर भटकते रहने का श्राप दिया और उसके मस्तक की मणि निकाल ली।

11. स्त्री पर्व

जब कौरवों की हार और दुर्योधन की मृत्यु के बारे में धृतराष्ट्र, गांधारी आदि को पता चला तो हस्तिनापुर के महल में शोक छा गया। युद्ध में मृत्यु को प्राप्त वीरों की पत्नियां बिलख-बिलख कर रोने लगी। विदुर तथा संजय ने राजा धृतराष्ट्र को सांत्वना दी। अपने पुत्रों का संहार देखकर धृतराष्ट्र बेहोश हो गए। तब महर्षि वेदव्यास ने आकर उन्हें समझाया और सांत्वना प्रदान की। विदुरजी के कहने पर धृतराष्ट्र, गांधारी आदि कुरुकुल की स्त्रियां कुरुक्षेत्र चली गईं। कुरुक्षेत्र में आकर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया तथा पांडव भी उनसे मिलने आए। धृतराष्ट्र ने कहा कि वह भीम को गले लगाना चाहते हैं जिसने अकेले ही मेरे पुत्रों को मार दिया। श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि धृतराष्ट्र के मन में भीम के प्रति द्वेष है। इसलिए उन्होंने पहले ही भीम की लोहे की मूर्ति सामने खड़ी कर दी। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को हृदय से लगाया तथा इतनी ज़ोर से दबाया कि वह चूर्ण हो गई। धृतराष्ट्र भीम को मरा समझकर रोने लगे, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि वह भीम नहीं था, भीम की मूर्ति थी। यह जानकर धृतराष्ट्र बड़े लज्जित हुए।

श्रीकृष्ण पांडवों के साथ गांधारी के पास पहुंचे। वह दुर्योधन के शव से लिपट-लिपट कर रो रही थी। गांधारी ने श्रीकृष्ण को शाप दिया कि जिस तरह तुमने हमारे वंश का नाश कराया है, उसी तरह तुम्हारा भी परिवार नष्ट हो जाएगा। धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरव तथा पांडव वंश के सभी मृतकों का दाह-संस्कार कराया।

12. शान्ति पर्व

मृतकों का अंतिम संस्कार करने के बाद युधिष्ठिर आदि सभी एक महीने तक गंगा तट पर ही रुके। इसके बाद सर्वसम्मति से युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया गया।

राज्याभिषेक होने के बाद युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को अलग-अलग दायित्व दिए तथा विदुर, संजय और युयुत्सु को धृतराष्ट्र की सेवा में रहने के लिए कहा। इसके बाद श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को बाणों की शय्या पर लेटे भीष्म पितामह के पास ले गए। यहां भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर के धर्म, राजनीति, राजकार्य व धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि जुड़े अनेक प्रश्नों के उत्तर दिए।

13. अनुशासन पर्व

इस पर्व में भी भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को न्यायपूर्वक शासन करने का उपदेश दिया। सूर्य के उत्तरायण होने के बाद भीष्म अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण करते हैं। पांडव पूरे विधि-विधान से भीष्म पितामह का अंतिम संस्कार करते हैं पुन: हस्तिनापुर लौट आते हैं।

14. आश्वमेधिक पर्व

पितामह भीष्म की मृत्यु से युधिष्ठिर जब बहुत व्याकुल हो गए, तब महर्षि वेदव्यास युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह देते हैं। तब युधिष्ठिर कहते हैं कि इस समय यज्ञ के लिए मेरे पास पर्याप्त धन नहीं है, तब महर्षि वेदव्यास ने बताया कि सत्ययुग में राजा मरुत्त थे। उनका धन आज भी हिमालय पर रखा है, यदि तुम वह धन ले आओ तो अश्वमेध यज्ञ कर सकते हो। युधिष्ठिर ऐसा ही करने का निर्णय करते हैं। शुभ मुहूर्त देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों व सेना के साथ राजा मरुत्त का धन लेने हिमालय जाते हैं। जब पांडव धन ला रहे होते हैं, उसी समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा एक मृत शिशु को जन्म देती है। जब यह बात श्रीकृष्ण को पता चलती है तो वह उस मृत शिशु को जीवित कर देते हैं। श्रीकृष्ण उस बालक का नाम परीक्षित रखते हैं।

जब पांडव धन लेकर लौटते हैं और उन्हें परीक्षित के जन्म का समाचार मिलता है तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं। इसके बाद राजा युधिष्ठिर समारोहपूर्वक अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ करते हैं। युधिष्ठिर अर्जुन को यज्ञ के घोड़े का रक्षक नियुक्त करते हैं। अंत में बिना किसी रूकावट के राजा युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होता है।

15. आश्रमवासिक पर्व

लगभग 15 वर्षों तक युधिष्ठिर के साथ रहने के बाद धृतराष्ट्र के मन में वैराग्य की उत्पत्ति होती है। तब धृतराष्ट्र के साथ गांधारी, कुंती, विदुर व संजय भी वन में तप करने चले जाते हैं। वन में रहते हुए धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती घोर तप करते हैं और विदुर तथा संजय इनकी सेवा करते थे। बहुत समय बीतने पर राजा युधिष्ठिर सपरिवार धृतराष्ट्र, गांधारी व अपनी माता कुंती से मिलने आते हैं। उसी समय वहां महर्षि वेदव्यास भी आते हैं। महर्षि वेदव्यास अपने तपोबल से एक रात के लिए युद्ध में मारे गए सभी वीरों को जीवित करते हैं। रात भर अपने परिजनों के साथ रहकर वे सभी पुनः अपने-अपने लोकों में लौट जाते हैं। कुछ दिन वन में रहकर युधिष्ठिर आदि सभी पुनः हस्तिनापुर लौट आते हैं। इस घटना के करीब दो वर्ष बाद नारद मुनि युधिष्ठिर के पास आते हैं और बताते हैं कि धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती की मृत्यु जंगल में लगी आग के कारण हो गई है। यह सुनकर पांडवों को बहुत दुख होता है और वे धृतराष्ट्र, गांधारी व कुंती की आत्मशांति के लिए तर्पण आदि करते हैं।

16. मौसल पर्व

एक दिन महर्षि विश्वामित्र, कण्व आदि ऋषि द्वारिका आते हैं। वहां श्रीकृष्ण के पुत्र व अन्य युवक उनका अपमान कर देते हैं। क्रोधित होकर मुनि यदुवंशियों का नाश होने का श्राप देते हैं। एक दिन जब सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र में एकत्रित होते हैं, तब वहां वे आपस में ही लड़कर मर जाते हैं। बलराम भी योगबल से अपना शरीर त्याग देते हैं। तब श्रीकृष्ण वन में एक पेड़ के नीचे बैठे होते हैं, तब एक शिकारी उनके पैर पर बाण चला देता है, जिससे श्रीकृष्ण भी शरीर त्याग कर स्वधाम चले जाते हैं। जब यह बात अर्जुन को पता चलती है तो वह द्वारिका आते हैं और यदुवंशियों के परिवार को अपने साथ हस्तिनापुर ले जाते हैं। मार्ग में उन पर लुटेरे हमला कर देते हैं और बहुत सा धन व स्त्रियों को अपने साथ ले जाते हैं। यह देखकर अर्जुन बहुत लज्जित होते हैं। जब अर्जुन ये बात जाकर महर्षि वेदव्यास को बताते हैं तो वे पांडवों को परलोक यात्रा पर जाने के लिए कहते हैं।

17. महाप्रास्थानिक पर्व

श्रीकृष्ण की मृत्यु के बाद पांडव भी अत्यंत उदासीन रहने लगे तथा उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने हिमालय की यात्रा करने का निश्चय किया। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी सौंपकर युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों और द्रौपदी के साथ चले गए तथा हिमालय पहुंचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था। कुछ दूर चलने पर द्रौपदी गिर पड़ी। इसके बाद नकुल, सहदेव, अर्जुन व भीम भी गिर गए। युधिष्ठिर तथा वह कुत्ता आगे बढ़ते रहे। युधिष्ठिर थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि स्वयं देवराज इंद्र अपने रथ पर सवार होकर युधिष्ठिर को सशरीर स्वर्ग ले जाने आए। तब युधिष्ठिर ने कहा कि यह कुत्ता भी मेरे साथ यहां तक आया है। इसलिए यह भी मेरे साथ स्वर्ग जाएगा। देवराज इंद्र कुत्ते को अपने साथ ले जाने को तैयार नहीं हुए तो युधिष्ठिर ने भी स्वर्ग जाने से इनकार कर दिया। युधिष्ठिर को अपने धर्म में स्थित देख वह यमराज अपने वास्तविक स्वरूप में आ गए (कुत्ते के रूप में यमराज ही युधिष्ठिर के साथ थे)। इस प्रकार देवराज इंद्र युधिष्ठिर को सशरीर स्वर्ग ले गए।

18. स्वर्गारोहण पर्व

देवराज इंद्र युधिष्ठिर को स्वर्ग ले गए, तब वहां उन्हें दुर्योधन तो दिखाई दिया, लेकिन अपने भाई नजर नहीं आए। तब युधिष्ठिर ने इंद्र से कहा कि मैं वहीं जाना चाहता हूं, जहां मेरे भाई हैं। तब इंद्र ने उन्हें एक बहुत ही दुर्गम स्थान पर भेज दिया। वहां जाकर युधिष्ठिर ने देखा कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव व द्रौपदी वहां नरक में हैं तो उन्होंने भी उसी स्थान पर रहने का निश्चय किया। तभी वहां देवराज इंद्र आते हैं और बताते हैं कि तुमने अश्वत्थामा के मरने की बात कहकर छल से द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया था।

इसी के परिणाम स्वरूप तुम्हें भी छल से ही कुछ देर नरक देखना पड़ा। इसके बाद युधिष्ठिर देवराज इंद्र के कहने पर गंगा नदी में स्नान कर, अपना शरीर त्यागते हैं और इसके बाद उस स्थान पर जाते हैं, जहां उनके चारों भाई, कर्ण, भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रौपदी आदि आनंदपूर्वक विराजमान थे (वह भगवान का परमधाम था)। युधिष्ठिर को वहां भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। इस प्रकार महाभारत कथा का अंत होता है।

महाभारत के कुछ सुने - अनसुने आख्यान

यहां से एक बार वुद्धि में बिकार आने के कारण देवताओं के स्वर्ग पर बिपत्ति के बादल मंडराने लगा । यहां कारण एक ऋषि और एक चक्रवर्ती राजा के कारण हुआ। जैसा कि महाभारत में पांडवों को भयंकर बिपत्तियों और भयानक युद्ध का सामना करना पड़ा था। ऐसा ही एक बार राजा नल दमयन्ती के साथ हुआ था जब मानव बुद्धि में बिकार आता है तब सूर्य के प्रकाश में भी रास्ता बड़ी मुस्किल से दिखाइ देता है।

हम सब मानते है की शकुनि कौरवों का सबसे बड़ा हितैषी था जबकि है इसका बिलकुल विपरीत। शकुनि ही कौरवों के विनाश का सबसे बड़ा कारण था, उसने ही कौरवों का वंश समाप्त करने के लिए महाभारत के युद्ध की पृष्टभूमि तैयार की थी। पर उसने ऐसा किया क्यों ? इसका उत्तर जानने के लिए हमे ध्रतराष्ट्र और गांधारी के विवाह से कथा प्रारम्भ करनी पड़ेगी।

शकुनि ही थे कौरवों के विनाश का कारण :

एक साधु के कहे अनुसार गांधारी का विवाह पहले एक बकरे के साथ किया गया था। बाद में उस बकरे की बलि दे दी गयी थी। यह बात गांधारी के विवाह के समय छुपाई गयी थी। जब ध्रतराष्ट्र को इस बात का पता चला तो उसने गांधार नरेश सुबाला और उसके 100 पुत्रों को कारावास मैं डाल दिया और काफी यातनाएं दी।

एक-एक करके सुबाला के सभी पुत्र मरने लगे। उन्हें खाने के लिये सिर्फ मुट्ठी भर चावल दिये जाते थे। सुबाला ने अपने सबसे छोटे बेटे शकुनि को प्रतिशोध के लिये तैयार किया। सब लोग अपने हिस्से के चावल शकुनि को देते थे ताकि वह जीवित रह कर कौरवों का नाश कर सके। मृत्यु से पहले सुबाला ने ध्रतराष्ट्र से शकुनि को छोड़ने की बिनती की जो ध्रतराष्ट्र ने मान ली। सुबाला ने शकुनि को अपनी रीढ़ की हड्डी के पासे बनाने के लिये कहा, वही पासे कौरव वंश के नाश का कारण बने। शकुनि ने हस्तिनापुर में सबका विश्वास जीता और 100 कौरवों का अभिवावक बना। उसने ना केवल दुर्योधन को युधिष्ठिर के खिलाफ भड़काया बल्कि महाभारत के युद्ध का आधार भी बनाया।

एक वरदान के कारण द्रोपदी बनी थी पांच पतियों की पत्नी :

द्रौपदी अपने पिछले जन्म मैं इन्द्रसेना नाम की ऋषि पत्नी थी। उसके पति संत मौद्गल्य का देहांत जल्दी ही हो गया था। अपनी इच्छाओं की पूर्ति की लिये उसने भगवान शिव से प्रार्थना की। जब शिव उसके सामने प्रकट हुए तो वह घबरा गयी और उसने 5 बार अपने लिए वर मांगा। भगवान शिव ने अगले जन्म मैं उसे पांच पति दिये।

एक श्राप के कारण धृतराष्ट्र जन्मे थे अंधे :

धृतराष्ट्र अपने पिछले जन्म में एक बहुत दुष्ट राजा था। एक दिन उसने देखा की नदी में एक हंस अपने बच्चों के साथ आराम से विचरण कर रहा था। उसने आदेश दिया की उस हंस की आँख फोड़ दी जायैं और उसके बच्चों को मार दिया जाये। इसी वजह से अगले जन्म में वह अंधा पैदा हुआ और उसके पुत्र भी उसी तरह मृत्यु को प्राप्त हुये जैसे उस हंस के।

अभिमन्यु था कालयवन राक्षस की आत्मा :

कहा जाता हे की अभिमन्यु एक कालयवन नामक राक्षस की आत्मा थी। कृष्ण ने कालयवन का वध कर, उसकी आत्मा को अपने अंगवस्त्र मैं बांध लिया था। वह उस वस्त्र को अपने साथ द्वारिका ले गये और एक अलमारी में रख दिया। सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) ने गलती से जब वह अलमारी खोली तो एक ज्योति उसके गर्भ मैं आगयी और वह बेहोश हो गयी। इसी वजह से अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदने का सिर्फ आधा ही तरीका बताया गया था।

एकलव्य ही बना था द्रोणाचार्ये की मृत्यु का कारण :

एकलव्य देवाश्रवा का पुत्र था। वह जंगल में खो गया था और उसको एक निषाद हिरण्यधनु ने बचाया था। एकलव्य रुक्मणी स्वंयवर के समय अपने पिता की जान बचाते हुए मारा गया। उसके इस

बलिदान से प्रसन्न होकर श्री कृष्ण ने उसे वरदान दिया की वह अगले जन्म में द्रोणाचर्य से बदला ले पायेगा। अपने अगले जन्म में एकलव्य द्रष्टद्युम्न बनके पैदा हुआ और द्रोण की मृत्यु का कारण बना।

पाण्डु की इच्छा अनुसार पांडवो ने खाया था अपने पिता के मृत शरीर को :

पाण्डु ज्ञानी थे। उनकी अंतिम इच्छा थी की उनके पांचो बेटे उनके म्रत शरीर को खायें ताकि उन्होंने जो ज्ञान अर्जित किया वो उनके पुत्रों मैं चला जाये। सिर्फ सहदेव ने पिता की इच्छा का पालन करते हुए उनके मस्तिष्क के तीन हिस्से खाये। पहले टुकड़े को खाते ही सहदेव को इतिहास का ज्ञान हुआ, दूसरे टुकड़े को खाने पर वर्तमान का और तीसरे टुकड़े को खाते ही भविष्य का। हालांकि ऐसी मान्यता भी है की पांचो पांडवो ने ही मृत शरीर को खाया था पर सबसे ज्यादा हिस्सा सहदेव ने खाया था।

कुरुक्षेत्र में आज भी है मिट्टी अजीब :

कुरुक्षेत्र में एक जगह है, जहां माना जाता है की महाभारत का युद्ध हुआ था। उस जगह से कुछ 30 किलोमीटर के दायरे में मिट्टी संरचना बहुत अलग है। वैज्ञानिक समझ नहीं पा रहे है कि यह कैसे संभव है। क्यूंकि इस तरह की मिट्टी सिर्फ तब हो सकती है अगर उस जगह पर बहुत ज़्यादा तेज़ गर्मी हो। बहुत से लोगों का मानना है कि लड़ाई की वजह से ही मिट्टी का परिवर्तन बदलाव हुआ है।

श्री कृष्ण ने ले लिया था बर्बरीक का शीश दान मे

बर्बरीक भीम का पोता और घटोत्कच का पुत्र था। बर्बरीक को कोई नहीं हरा सकता था क्योंकि उसके पास कामाख्या देवी से प्राप्त हुए तीन तीर थे, जिनसे वह कोई भी युद्ध जीत सकता था। पर उसने शपथ ली थी की वह सिर्फ कमज़ोर पक्ष के लिये ही लड़ेगा। अब चुकी बर्बरीक जब वहां पहुंचा तब कौरव कमजोर थे इसलिए उसका उनकी तरफ से लड़ना तय था। जब यह बात श्री कृष्ण को पता चली तो उन्होंने उसका शीश ही दान में मांग लिया। तथा उसे वरदान दिया की तू कलयुग में मेरे नाम से जाना जाएगा। इसी बर्बरीक का मंदिर राजस्थान के सीकर जिले के खाटूश्यामजी में है जहाँ उनकी बाबा श्याम के नाम से पूजा होती है।

हर योद्धा का अलग था शंख :

सभी योधाओं के शंख बहुत शक्तिशाली होते थे। भागवत गीता के एक श्लोक में सभी शंखों के नाम हैं। अर्जुन के शंख का नाम देवदत्त था। भीम के शंख का नाम पौंड्रा था, उसकी आवाज़ से कान से सुनना बंद हो जाता था। कृष्णा के शंख का नाम पांचजन्य, युधिष्ठिर के शंख का नाम अनंतविजया, सहदेव के शंख का नाम पुष्पकौ और नकुल के शंख का नाम सुघोशमनी था।

अर्जुन एक बार और गए थे वनवास पर :

एक बार कुछ डाकुओं का पीछा करते हुए अर्जुन गलती से युधिष्ठिर और द्रौपदी के कमरे में दाखिल हो गया। अपनी गलती की सज़ा के लिये वह 12 साल के वनवास के लिये निकल गया। उस दौरान अर्जुन ने तीन विवाह किये – चित्रांगदा (मणिपुरा), उलूपी (नागा) और सुभद्रा (कृष्ण की बहन)

। इसी नाग कन्या उलूपी से उसे एक पुत्र हुआ जिसका नाम इरावन (अरावन) था। महाभारत के युद्ध में जब एक बार एक राजकुमार की स्वैच्छिक नर बलि की जरुरत पड़ी तो इरावन ने ही अपनी बलि दी थी। इरावन की तमिलनाडु में एक देवता के रूप में पूजा होती है तथा हिंजड़ों की उनसे शादी होती है।

यह कथा पांडव कुल के अंतिम सम्राट जनमेजय (अर्जुन के प्रपौत्र) से जुडी है। जनमेजय ने एक बार पृथ्वी से सांपो का अस्तित्व मिटाने के लिए सर्प मेध यज्ञ किया था जिसमे पृथ्वी पर उपस्तिथ लगभग सभी सांप समाप्त हो गए थे। हालंकि अंत में अस्तिका मुनि के हस्तक्षेप के कारण सांपो का सम्पूर्ण विनाश होने से रह गया था, अन्यथा आज पृथ्वी पर सांपो का अस्तित्व नहीं होता। आइये जानते है कौन थे जनमेजय और क्यों उन्होंने सांपो के सम्पूर्ण विनाश की प्रतिज्ञा ली थी ?

राजा परीक्षित को ऋषि ने दिया शाप–

महाभारत के युद्ध के बाद कुछ सालों तक पांडवों ने हस्तिनापुर पर राज किया। लेकिन जब वो राजपाठ छोड़कर हिमालय जाने लगे तो राज का जिम्मा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को दे दिया गया। परीक्षित ने पांडवों की परंपरा को आगे बढ़ाया। लेकिन यहां पर विधाता कोई और खेल, खेल रहा था। एक दिन मन उदास होने पर राजा परीक्षित शिकार के लिए जंगल गए थे। शिकार खेलते–खेलते वह ऋषि शमिक के आश्रम से होकर गुजरे।

ऋषि उस वक्त ब्रह्म ध्यान में आसन लगा कर बैठे हुए थे। उन्होंने राजा की ओर ध्यान नहीं दिया। इस पर परीक्षित को बहुत तेज गुस्सा आया और उन्होंने ऋषि के गले में एक मरा हुआ सांप डाल दिया। जब ऋषि का ध्यान हटा तो उन्हें भी बहुत गुस्सा आया और उन्होंने राजा परीक्षित को शाप दिया कि जाओ तुम्हारी मौत सांप के काटने से ही होगी। राजा परीक्षित ने इस शाप से मुक्ति के लिए तमाम कोशिशे की लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ।

कैसे हुई राजा परीक्षित की मौत–

राजा परीक्षित ने हर मुमकिन कोशिश की कि उनकी मौत सांप के डसने से न हो। उन्होंने सारे उपाय किए ऐसी जगह पर घर बनवाया जहां परिंदा तक पर न मार सके। लेकिन ऋषि का शाप झूठा नहीं हो सकता था। जब चारों तरफ से राजा परीक्षित ने अपने आपको सुरक्षित कर लिया तो एक दिन एक ब्राह्मण उनसे मिलने आए। उपहार के तौर पर ब्राह्मण ने राजा को फूल दिए और परीक्षित को डसने वला वो काल सर्प 'तक्षक' उसी फूल में एक छोटे कीड़े की शक्ल में बैठा था। तक्षक सांपो का राजा था। मौका मिलते ही उसने सर्प का रुप धारण कर लिया और राज परीक्षित को डस लिया।

राजा परीक्षित की मौत के बाद राजा जनमेजय हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठे। जनमेजय पांडव वंश के आखिरी राजा थे।

राजा जनमेजय का सर्प मेध यज्ञ–

जनमेजय को जब अपने पिता की मौत की वजह का पता चला तो उसने धरती से सभी सांपों के सर्वनाश करने का प्रण ले लिया और इस प्रण को पूरा करने के लिए उसने सर्पमेध यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ के प्रभाव से ब्रह्मांड के सारे सांप हवन कुंड में आकर गिर रहे थे। लेकिन सांपों का राजा तक्षक, जिसके काटने से परीक्षित की मौत हुई थी, खुद को बचाने के लिए सूर्य देव के रथ से लिपट गया और उसका हवन कुंड में गिरने का अर्थ था सूर्य के अस्तित्व की समाप्ति जिसकी वजह से सृष्टि की गति समाप्त हो सकती थी।

कैसे खत्म हुआ सर्प मेध यज्ञ:-

सूर्यदेव और ब्रह्माण्ड की रक्षा के लिए सभी देवता जनमेजय से इस यज्ञ को रोकने का आग्रह करने लगे लेकिन जनमेजय किसी भी रूप में अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहता था। जनमेजय के यज्ञ को रोकने के लिए अस्तिका मुनि को हस्तक्षेप करना पड़ा, जिनके पिता एक ब्राह्मण और मां एक नाग कन्या थी। अस्तिका मुनि की बात जनमेजय को माननी पड़ी और सर्पमेध यज्ञ को समाप्त कर तक्षक को मुक्त करना पड़ा।

8 -- वेद के अतिरिक्त आधुनिक भारत का संक्षीप्त इतिहास

वेद का उद्भव भारतिय ऋषियों के हृदय में हुआ परमेश्वर की असिम कृपा से श्रृष्टी के प्रारम्भ में, वेद उतने ही पुराने है जितनी यह श्रृष्टी पुरानी या अनादी है। और यह सब भारत भुमीपर ही संभव हुआ, अब प्रश्न उठता है कि यह भारतिय आखिर कौन है?

प्रागैतिहासिक काल

भीमबेटका के शैल-चित्र (३०,००० वर्ष पुराने)

भारत में मानव जीवन का प्राचीनतम प्रमाण १००,००० से ८०,००० वर्ष पूर्व का है।। पाषाण युग (भीमबेटका, मध्य प्रदेश) के चट्टानों पर चित्रों का कालक्रम ४०,००० ई पू से ९००० ई पू माना जाता है। प्रथम स्थायी बस्तियां ने ९००० वर्ष पूर्व स्वरुप लिया। उत्तर पश्चिम में सिन्धु घाटी सभ्यता ७००० ई पू विकसित हुई, जो २६वीं शताब्दी ईसा पूर्व और २०वीं शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य अपने चरम पर थी। वैदिक सभ्यता का कालक्रम भी ज्योतिष के विश्लेषण से ४००० ई पू तक जाता है।

राष्ट्र के रूप में उदय समान्यत विद्वान भारतीय इतिहास को एक संपन्न पर अर्धलिखित इतिहास बताते हैं पर भारतीय इतिहास के कई स्रोत है। सिंधु घाटी की लिपि, अशोक के शिलालेख, हेरोडोटस, फ़ा हियान, ह्वेन सांग, संगम साहित्य, मार्कोपोलो, संस्कृत लेखकों आदि से प्राचीन भारत का इतिहास प्राप्त होता है। मध्यकाल में अल-बेरुनी और उसके बाद दिल्ली सल्तनत के राजाओं की जीवनी भी महत्वपूर्ण है। बाबरनामा, आईन-ए-अकबरी आदि जीवनियाँ हमें उत्तर मध्यकाल के बारे में बताती हैं।

भारत को एक सनातन राष्ट्र माना जाता है क्योंकि यह मानव सभ्यता का पहला राष्ट्र था। श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में भारत राष्ट्र की स्थापना का वर्णन आता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति के पश्चात ब्रह्मा के मानस पुत्र स्वायंभुव मनु ने व्यवस्था सम्भाली। इनके दो पुत्र, प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। उत्तानपाद भक्त ध्रुव के पिता थे। इन्हीं प्रियव्रत के

दस पुत्र थे। तीन पुत्र बाल्यकाल से ही विरक्त थे। इस कारण प्रियव्रत ने पृथ्वी को सात भागों में विभक्त कर एक-एक भाग प्रत्येक पुत्र को सौंप दिया। इन्हीं में से एक थे आग्नीध्र जिन्हें जम्बूद्वीप का शासन कार्य सौंपा गया। वृद्धावस्था में आग्नीध्र ने अपने नौ पुत्रों को जम्बूद्वीप के विभिन्न नौ स्थानों का शासन दायित्व सौंपा। इन नौ पुत्रों में सबसे बड़े थे नाभि जिन्हें हिमवर्ष का भू-भाग मिला। इन्होंने हिमवर्ष को स्वयं के नाम अजनाभ से जोड़कर अजनाभवर्ष प्रचारित किया। यह हिमवर्ष या अजनाभवर्ष ही प्राचीन भारत देश था। राजा नाभि के पुत्र थे ऋषभ। ऋषभदेव के सौ पुत्रों में भरत ज्येष्ठ एवं सबसे गुणवान थे। ऋषभदेव ने वानप्रस्थ लेने पर उन्हें राजपाट सौंप दिया। पहले भारतवर्ष का नाम ऋषभदेव के पिता नाभिराज के नाम पर अजनाभवर्ष प्रसिद्ध था। भरत के नाम से ही लोग अजनाभखण्ड को भारतवर्ष कहने लगे।

प्राचीन भारत

१००० ई पू के पश्चात १६ महाजनपद उत्तर भारत में मिलते हैं। ५०० ईसवी पूर्व के बाद, कई स्वतंत्र राज्य बन गए। उत्तर में मौर्य वंश, जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक सम्मिलित थे, ने भारत के सांस्कृतिक पटल पर उल्लेखनीय छाप छोड़ी | १८० ईसवी के आरम्भ से, मध्य एशिया से कई आक्रमण हुए, जिनके परिणामस्वरूप उत्तरी भारतीय उपमहाद्वीप में इंडो-ग्रीक, इंडो-स्किथिअन, इंडो-पार्थियन और अंततः कुषाण राजवंश स्थापित हुए | तीसरी शताब्दी के आगे का समय जब भारत पर गुप्त वंश का शासन था, भारत का "स्वर्णिम काल" कहलाया। दक्षिण भारत में भिन्न-भिन्न समयकाल में कई राजवंश चालुक्य, चेर, चोल, कदम्ब, पल्लव तथा पांड्य चले | विज्ञान, कला, साहित्य, गणित, खगोल शास्त्र, प्राचीन प्रौद्योगिकी, धर्म, तथा दर्शन इन्हीं राजाओं के शासनकाल में फ़ले-फ़ूले |

मध्यकालीन भारत

12वीं शताब्दी के प्रारंभ में, भारत पर इस्लामी आक्रमणों के पश्चात, उत्तरी व केन्द्रीय भारत का अधिकांश भाग दिल्ली सल्तनत के शासनाधीन हो गया, और बाद में, अधिकांश उपमहाद्वीप मुगल वंश के अधीन। दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य शक्तिशाली निकला। हालांकि, विशेषतः तुलनात्मक रूप से, संरक्षित दक्षिण में, अनेक राज्य शेष रहे अथवा अस्तित्व में आये।

17वीं शताब्दी के मध्यकाल में पुर्तगाल, डच, फ्रांस, ब्रिटेन सहित अनेकों युरोपीय देशों, जो कि भारत से व्यापार करने के इच्छुक थे, उन्होनें देश में स्थापित शासित प्रदेश, जो कि आपस में युद्ध करने में व्यस्त थे, का लाभ प्राप्त किया। अंग्रेज दुसरे देशों से व्यापार के इच्छुक लोगों को रोकने में सफल रहे और १८४० ई तक लगभग संपूर्ण देश पर शासन करने में सफल हुए। १८५७ ई में ब्रिटिश इस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध असफल विद्रोह, जो कि भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम से जाना जाता है, के बाद भारत का अधिकांश भाग सीधे अंग्रेजी शासन के प्रशासनिक नियंत्रण में आ गया।

आधुनिक भारत

भारत की स्वतन्त्रता और विभाजन साथ-साथ

मुख्य लेख : आधुनिक भारत और स्वतन्त्रता के बाद भारत का संक्षिप्त इतिहास

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये संघर्ष चला। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 ई को सफल हुआ जब भारत ने अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की, मगर देश को विभाजन कर दिया गया। तदुपरान्त 26 जनवरी, 1950 ई को भारत एक गणराज्य बना।

भारत का इतिहास कई हजार साल पुराना माना जाता है। मेहरगढ़ पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण एक स्थान है जहाँ नवपाषाण युग (७००० ईसा-पूर्व से २५०० ईसा-पूर्व) के बहुत से अवशेष मिले हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता, जिसका आरंभ काल लगभग ३३०० ईसापूर्व से माना जाता है, प्राचीन मिस्र और सुमेर सभ्यता के साथ विश्व की प्राचीनतम सभ्यता में से एक हैं। इस सभ्यता की लिपि अब तक सफलता पूर्वक पढ़ी नहीं जा सकी है। सिंधु घाटी सभ्यता वर्तमान पाकिस्तान और उससे सटे भारतीय प्रदेशों में फैली थी। पुरातत्त्व प्रमाणों के आधार पर १९०० ईसापूर्व के आसपास इस सभ्यता का अक्स्मात पतन हो गया। आर्यों द्वारा उत्तर तथा मध्य भारत में एक विकसित सभ्यता का निर्माण किया गया, जिसे वैदिक सभ्यता भी कहते हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में वैदिक सभ्यता सबसे प्रारंभिक सभ्यता है जिसका संबंध आर्यों के आगमन से है। इसका नामकरण आर्यों के प्रारम्भिक साहित्य वेदों के नाम पर किया गया है। आर्यों की भाषा संस्कृत थी और धर्म "वैदिक धर्म" या "सनातन धर्म" के नाम से प्रसिद्ध था, बाद में विदेशी आक्रांताओं द्वारा इस धर्म का नाम हिन्दू पड़ा।

वैदिक सभ्यता सरस्वती नदी के तटीय क्षेत्र जिसमें आधुनिक भारत के पंजाब (भारत) और हरियाणा राज्य आते हैं, में विकसित हुई। आम तौर पर अधिकतर विद्वान वैदिक सभ्यता का काल २००० ईसा पूर्व से ६०० ईसा पूर्व के बीच में मानते है, परन्तु नए पुरातत्त्व उत्खननों से मिले अवशेषों में वैदिक सभ्यता से संबंधित कई अवशेष मिले है जिससे कुछ आधुनिक विद्वान यह मानने लगे हैं कि वैदिक सभ्यता भारत में ही शुरु हुई थी, आर्य भारतीय मूल के ही थे और ऋग्वेद का रचना काल ३००० ईसा पूर्व रहा होगा, क्योंकि आर्यो के भारत में आने का न तो कोई पुरातत्त्व उत्खननों पर अधारित प्रमाण मिला है और न ही डी एन ए अनुसन्धानों से कोई प्रमाण मिला है। हाल ही में भारतीय पुरातत्व परिषद् द्वारा की गयी सरस्वती नदी की खोज से वैदिक सभ्यता, हड़प्पा सभ्यता और आर्यों के बारे में एक नया दृष्टिकोण सामने आया है। हड़प्पा सभ्यता को सिन्धु-सरस्वती सभ्यता नाम दिया है, क्योंकि हड़प्पा सभ्यता की २६०० बस्तियों में से वर्तमान पाकिस्तान में सिन्धु तट पर मात्र २६५ बस्तियां थीं, जबकि शेष अधिकांश बस्तियां सरस्वती नदी के तट पर मिलती हैं, सरस्वती एक विशाल नदी थी। पहाड़ों को तोड़ती हुई निकलती थी और मैदानों से होती हुई समुद्र में जाकर विलीन हो जाती थी। इसका वर्णन ऋग्वेद में बार-बार आता है, यह आज से ४००० साल पूर्व भूगर्भी बदलाव की वजह से सूख गयी थी।

ईसा पूर्व ७ वीं और शुरूआती ६ वीं शताब्दि सदी में जैन और बौद्ध धर्म सम्प्रदाय लोकप्रिय हुए। अशोक (ईसापूर्व २६५-२४१) इस काल का एक महत्वपूर्ण राजा था जिसका साम्राज्य अफगानिस्तान से मणिपुर तक और तक्षशिला से कर्नाटक तक फैल गया था। पर वो सम्पूर्ण दक्षिण तक नहीं जा सका। दक्षिण में चोल सबसे शक्तिशाली निकले। संगम साहित्य की शुरुआत भी दक्षिण

में इसी समय हुई। भगवान गौतम बुद्ध के जीवनकाल में, ईसा पूर्व ७ वीं और शुरूआती ६ वीं शताब्दि के दौरान सोलह बड़ी शक्तियां (महाजनपद) विद्यमान थे। अति महत्वपूर्ण गणराज्यों में कपिलवस्तु के शाक्य और वैशाली के लिच्छवी गणराज्य थे। गणराज्यों के अलावा राजतंत्रीय राज्य भी थे, जिनमें से कौशाम्बी (वत्स), मगध, कोशल, कुरु, पान्चाल, चेदि और अवन्ति महत्वपूर्ण थे। इन राज्यों का शासन ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियों के पास था, जिन्होंने राज्य विस्तार और पड़ोसी राज्यों को अपने में मिलाने की नीति अपना रखी थी। तथापि गणराज्यात्मक राज्यों के तब भी स्पष्ट संकेत थे जब राजाओं के अधीन राज्यों का विस्तार हो रहा था। इसके बाद भारत छोटे-छोटे साम्राज्यों में बंट गया।

आठवीं सदी में सिन्ध पर अरबी अधिकार हो गाय। यह इस्लाम का प्रवेश माना जाता है। बारहवीं सदी के अन्त तक दिल्ली की गद्दी पर तुर्क दासों का शासन आ गया जिन्होंने अगले कई सालों तक राज किया। दक्षिण में हिन्दू विजयनगर और गोलकुंडा के राज्य थे। १५५६ में विजय नगर का पतन हो गया। सन् १५२६ में मध्य एशिया से निर्वासित राजकुमार बाबर ने काबुल में पनाह ली और भारत पर आक्रमण किया। उसने मुग़ल वंश की स्थापना की जो अगले ३०० सालों तक चला। इसी समय दक्षिण-पूर्वी तट से पुर्तगाल का समुद्री व्यापार शुरु हो गया था। बाबर का पोता अकबर धार्मिक सहिष्णुता के लिए विख्यात हुआ। उसने हिन्दुओं पर से जज़िया कर हटा लिया। १६५९ में औरंग़ज़ेब ने इसे फ़िर से लागू कर दिया। औरंग़ज़ेब ने कश्मीर में तथा अन्य स्थानों पर हिन्दुओं को बलात मुसलमान बनवाया। उसी समय केन्द्रीय और दक्षिण भारत में शिवाजी के नेतृत्व में मराठे शक्तिशाली हो रहे थे। औरंगज़ेब ने दक्षिण की ओर ध्यान लगाया तो उत्तर में सिखों का उदय हो गया। औरंग़ज़ेब के मरते ही (१७०७) मुगल साम्राज्य बिखर गया। अंग्रेज़ों ने डचों, पुर्तगालियों तथा फ्रांसिसियों को भगाकर भारत पर व्यापार का अधिकार सुनिश्चित किया और १८५७ के एक विद्रोह को कुचलने के बाद सत्ता पर काबिज़ हो गए। भारत को आज़ादी १९४७ में मिली जिसमें महात्मा गाँधी के अहिंसा आधारित आंदोलन का योगदान महत्वपूर्ण था। १९४७ के बाद से भारत में गणतांत्रिक शासन लागू है। आज़ादी के समय ही भारत का विभाजन हुआ जिससे पाकिस्तान का जन्म हुआ और दोनों देशों में कश्मीर सहित अन्य मुद्दों पर तनाव बना हुआ है। यह जानकारी पूर्ण नहीं है भारत के बारे में बहुत सुक्ष्म जानकारियां दि गई है जबकि भारत का ईतिहास अरबों साल पुराना श्रृष्टि के साथ वेदों के साथ आरहा है।

9 – वैदिक ब्रह्माण्ड की उत्तपत्ती कि संक्षिप्त समिक्षा

दृश्यतेह्यनेनेति दर्शनम् (दृष्यते हि अनेन इति दर्शनम्)

अर्थात् असत् एवं सत् पदार्थों का ज्ञान ही दर्शन है। पाश्चात्य फिलॉस्पी शब्द फिलॉस (प्रेम का)+सोफिया (प्रज्ञा) से मिलकर बना है। इसलिए फिलॉसफी का शाब्दिक अर्थ है बुद्धि प्रेम। पाश्चात्य दार्शनिक (फिलॉसफर) बुद्धिमान या प्रज्ञावान व्यक्ति बनना चाहता है। पाश्चात्य दर्शन के इतिहास से यह बात झलक जाती है कि पाश्चात्य दार्शनिक ने विषय ज्ञान के आधार पर ही बुद्धिमान होना चाहा है। इसके विपरीत कुछ उदाहरण अवश्य मिलेंगें जिसमें आचरण शुद्धि तथा मनस् की परिशुद्धता के आधार पर परमसत्ता के साथ साक्षात्कार करने का भी आदर्श पाया जाता है। परंतु यह आदर्श प्राच्य है न कि पाश्चात्य। पाश्चात्य दार्शनिक अपने ज्ञान पर जोर देता है और अपने ज्ञान के अनुरूप अपने

चरित्र का संचालन करना अनिवार्य नहीं समझता। केवल पाश्चात्य रहस्यवादी और समाधिवादी विचारक ही इसके अपवाद हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः| स्वं स्वं चरित्रें शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः||

अर्थात् समग्र विश्व भुमंण्डल के मानव भारतवर्ष के लोगों से चरित्र की शिक्षा ग्रहण करके अपने चरित्र को बिशुद्ध बनावें इसी देश के प्राणायाम विद्युतिय ज्ञान से देश में सब प्रकार की सुख शान्ति थी|

भारतीय दर्शन में परम सत्ता के साथ साक्षात्कार करने का दूसरा नाम ही दर्शन हैं। भारतीय परंपरा के अनुसार मनुष्य को परम सत्ता का साक्षात् ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार साक्षात्कार के लिए भक्ति ज्ञान तथा योग के मार्ग बताए गए हैं। परंतु दार्शनिक ज्ञान को वैज्ञानिक ज्ञान से भिन्न कहा गया है। वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने में आलोच्य विषय में परिवर्तन करना पड़ता है ताकि उसे अपनी इच्छा के अनुसार वश में किया जा सके और फिर उसका इच्छित उपयोग किया जा सके। परंतु प्राच्य दर्शन के अनुसार दार्शनिक ज्ञान जीवन साधना है। ऐसे दर्शन से स्वयं दार्शनिक में ही परिवर्तन हो जाता है। उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जिसके द्वारा वह समस्त प्राणियों को अपनी समष्टि दृष्टि से देखता है। समसामयिक विचारधारा में प्राच्य दर्शन को धर्म-दर्शन माना जाता है और पाश्चात्य दर्शन को भाषा सुधार तथा प्रत्ययों का स्पष्टिकरण कहा जाता है।

यह जानने से पहले थोड़ा हमें और समझना होगा कि भारत कैसे, कहां से उपस्थित हुआ? इस भुमंडल पर। इससे पहले हमें यह जानना चाहेंगे कि यह पृथीवी कैसे प्रकट हो गई? दृश्य मय इस सौर मंडल में उससे पहले यह सौर्य मंडल सूर्य आदि कैसे आये ? ऐसे बहुत सारे सौर्यमंडल आकाशगंगा में विद्यमान है ऐसी बहुत सारी आकाश गंगाये है जो ब्रह्माण्ड में विद्ययमान है। अब प्रश्न उठता है कि यह आकाशगंगाओं को धारण करने वाला ब्रह्माण्ड कैसे आया ? बहुत सारे लम्बें समय तक कई साल मैंने सोध किया इन सारे प्रश्नों के उत्तर को जानने के लिये, जिससे मुझे सबसे श्रेष्ठ प्रमाणिक ज्ञान मिला उसको मैं संक्षिप्त रूप से आप सबके सामने आप सब को बाटने के लिये उपस्थित हुआ हुं। इसको मैंने बहुत अधिक संघर्ष और अथाह दुःखों के पहाड़ों, समंदर और रेगिस्तान की यात्रा करने के बाद बहुत सारे दिव्य गुरुओं के सानिध्य में कई सालों तक बिताने के बाद मिला, इसके लिये मुझे संपूर्ण भारत वर्ष का भ्रमण करना पड़ा जिसके उपरान्त यह दिव्य अद्भुत ज्ञान की प्राप्ती हुई यह किसी प्रकार के मुल्य से उपलब्ध होने योग्य नहीं है। इसमे योगियों, विद्वानों वैज्ञानिको और बहुत प्रकार के श्रोतो के माध्यम से यह ज्ञान प्राप्त हुआ है। जिसमें मैने कुछ अपने वुद्धि से सोध के जरिये भी जो कुछ अनुभव किया है उसको भी जोड़ा है।

यह सब ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैंने बहुत सारे शास्त्रों का बहुत गहराई से व्यक्तिगत रूप से अध्यन, चिन्तन, मनन, स्वाध्याय करके ज्ञान को संश्लेषित किया जिसमें सबसे प्रमुख है । वेद, वैदिक षट् दर्शन, उपनिषद्, १८ पुराण और इसके अतिरिक्त नास्तिक दर्शन बौद्ध, जैन, चार्वाक दर्शन पाश्चात्य दर्शन

इत्यादि के साथ आधुनिक साहित्य गद्य, पद्, लगभग हर प्रकार के उन सब श्रोतों का उपयोग किया जिससे मुझे लगा कि मुझे कुछ जानकारी ज्ञान प्राप्त हो सकती है। जिससे अपने ज्ञान को विकषित किया जा सकता है। वह सब साधन मैंने उपयोग किया, मेरे जो सामर्थ के अनुसार था। वह सब किया जो मेरे सामर्थ्य का चर्मेत्कर्ष है।

सबसे प्रमुख जो इस भुमंडल का सबसे श्रेष्ठ अद्वितिय, अजेय, अद्भुत, अलौकिक ज्ञान का श्रोत है जिनसे लग-भग हमारे सारे प्रश्न का और समस्या का समाधान मुझको मिला वह एक मुक्त कन्ठ शब्दों में कहा जाये तो वह वेद ही है। तो फिर हम सर्व प्रथम कालजई, अपौरुषेश, ईश्वर कृत वेद के बारे में जानते है। उससे पहले हम हम सर्वप्रथम ईश्वर को पाते है। इसलिये यह ज्ञान के श्रोत को परमेश्वर के ज्ञान से ही सुरु करते है। सर्व प्रथम ईश्वर क्या है? कहां है कैसा है? क्योंकि सर्वप्रथम ईश्वर ही था, है और वही रहेगा। यह सब हमें शब्द के माध्यम से प्राप्त हुआ है, इसलिए इन्हें शब्द ब्रह्म कहा गया। अर्थात ईश्वर शब्द रुप है उसे शब्दों के माध्यम से जान सकते है शब्द रहस्य पूर्ण है जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है उनसे ही ईश्वर प्रकट होता है। हमारी खोज में जो सबसे श्रेष्ठ शब्द का संकलन है ईश्वर के बारे में वह निसंदेह एक सार्वभौमिक सत्य है कि वह वेद ही है इसलिये हम वेद के मंत्रों को समझते है जो ईश्वर के संबन्ध में है। जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव स हमे परीचित कराते है।

ओ३म् तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्मा ताऽआपः स प्रजापतिः।। यजुर्वेद ३२,१

हे मनुष्यों! वह परमेश्वर सर्वज्ञ सर्वव्यापी सनातन अनादि सर्वाधार सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु जगत विश्व ब्रह्माण्ड का श्रष्टा, धारण करता और सब का अन्तर्यामी है। ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से वह अग्नि के समान है। वह आदित्य सूर्य के समान बलवान शक्ति का जिसके कोई पार नहीं है प्रलय के समय सब को ग्रहण करने से आदित्य के समान जिस प्रकार सूर्य अपनी गुरुत्वाकर्षण की शक्ती से सम्पूर्ण सौर्य मंडल के ग्रहों को धारण कर रहा है, ठीक ऐसे ही इससे भी बड़े जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड है उसको भी परमेश्वर धारण कर रहा है। वह परमेश्वर वायु के समान अनन्त बलवान् और सबका कर्ता होने से वायु नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि ऋगवेद का मंत्र कहता है।

(ओ३म् द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरा परावतः| दक्षं ते अन्य आवतु परान्यो वातु यद्रपः|| ऋग्वेद १० , १३७-२

यहां दो प्रकार के वायु बहते है एक वायु भीतर हृदय तक बहता है दूसरा बाहर वायुमंडल में बहता है| उसमें एक तेरे अन्दर तेरे लिये शक्ती बल को बहा कर लाये दूसरा तेरे से बाहर तेरे रोग बिमारी को बाहर बहा कर ले आवे |) वह परमेश्वर आनन्दस्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा के समान है। वही परमेश्वर शुक्रम शीघ्रकारी अथवा शुद्ध भाव से शुक्र विर्य के कण के समान है। वह महान होने से ब्रह्मा सर्वत्र व्यापक होने से प्रजापति। भी कहलाता है।

वेद क्या है कितने पुराने है?

एक समय वह भी था जब सारे संसार का एक ही धर्म था-वैदिक धर्म। एक ही धर्मग्रन्थ था वेद। एक ही गुरु मंत्र था-गायत्री। सभी का एक ही अभिवादन था-नमस्ते। एक ही विश्वभाषा थी-संस्कृत। और एक ही उपास्य देव था-सृष्टि का रचयिता परमपिता परमेश्वर, जिसका मुख्य नाम ओ३म् है। तब संसार के सभी मनुष्यों की एक ही संज्ञा थी-आर्य। सारा विश्व एकता के इस सप्त सूत्रों में बँधा, प्रभु का प्यार प्राप्त कर सुख शान्ति से रहता था। दुनिया भर के लोग आर्यावर्त कहलाने वाले इस देश भारत में विद्या ग्रहण करने आते थे। अध्यात्म और योग में इसका कोई सानी नहीं था।

किन्तु महाभारत युद्ध के पश्चात् ब्राह्मण वर्णीय जनों के 'अनभ्यासेन वेदानां' अर्थात् वेदों के अनभ्यास तथा आलस्य और स्वार्थ बुद्धि के कारण स्थिति बदली और क्षत्रियों में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली एकतांत्रिक सामन्तवादी प्रणाली चल पड़ी। धर्म के नाम पर पाखंडियों अर्थात् वेदनिन्दक ,वेदविरुद्ध आचरण करने वालों की बीन बजने लगी,यह विश्वसम्राट् एवं जगतगुरु भारत विदेशियों का क्रीतदास बनकर रह गया। जो जगतगुरु सबका सरताज कहलाने वाला था उसे मोहताज बना दिया गया।

दासता की इन्हीं बेड़ियों को काटने और धर्म का वास्तविक स्वरुप बताने के लिए युगों-युगों के पश्चात् इस भारत भूमि गुजरात प्रान्त के टंकारा ग्राम की मिट्टी से एक रत्न पैदा हुआ जिसका नाम मूलशंकर रखा गया। जो बाद में'महर्षि दयानन्द सरस्वती' के नाम से विश्वविख्यात् हुआ। जब उसने धर्म के नाम पर पल रहे घोर अधर्म, अन्धविश्वास, रुढ़िवाद, गुरुड़मवाद, जन्मगत मिथ्या जात्याभिमान, बहुदेववाद, अवतारवाद, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध और मूर्ति पूजा आदि बुराइयों के विरुद्ध पाखण्ड-खण्डिनी पताका को फहराते हुए निर्भय नाद किया तो सारा भूमंडल टंकारा वाले ऋषि की जय जयकार कर उठा।

उसकी इस विजय के पीछे सबसे बड़ा कारण चिरकाल से सोई हुई मानव जाति को उसके वास्तविक धर्म से परिचित कराना था। महर्षि ने धर्म के नाम पर लुटती मानवता को अज्ञान अन्धकार से बाहर निकालकर सत्य सनातन वैदिक धर्म में पुनः स्थापित किया। आज यदि हम निष्पक्ष होकर तुलना करें कि वैदिक सम्पत्ति को हमारे समक्ष किसने प्रस्तुत किया तो वह मुक्तात्मा देव दयानन्द है, जिसके ऋण से उऋण हम तभी हो सकते हैं जब वैदिक धर्म को भली-भाँति समझकर अपने जीवन को उसके प्रकाश से आलोकित करें।

वैदिक धर्म संसार के सभी मतों और सम्प्रदायों का उसी प्रकार आधार है जिस प्रकार संसार की समस्त भाषाओं का आधार संस्कृत भाषा है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अभी तक अस्तित्व में है। संसार भर के अन्य मत ,पन्थ किसी पीर-पैगम्बर, मसीहागुरु,महात्मा आदि द्वारा चलाये गये हैं, किन्तु चारों वेदों के अपौरुषेय होने से वैदिक धर्म ईश्वरीय है, किसी मनुष्य का चलाया हुआ नहीं है।

वैदिक धर्म में एक निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, न्यायकारी ईश्वर को ही पूज्य माना जाता है, उसी की उपासना की जाती है, उसके स्थान पर अन्य देवी-देवताओं की नहीं।

धर्म की परिभाषा:-जिसका स्वरुप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है, जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए मानने योग्य है , उसे धर्म कहते हैं। उत्तम मानवीय गुण-कर्म-स्वभाव को धारण करना ही धर्म की सार्थकता को सिद्ध करता है।

वेद मुख्यतः चार प्रकार के है जो मानव कृत नही है वेदों को परमेमश्वर ने श्रृष्टि के प्रारम्भ चार ऋषियों के हृदय में प्रकट किया था। प्रथम ऋग्वेद का साक्षात्कार अग्नि ऋषि ने किया जो ज्ञान काण्ड के रूप में जगत में विख्यात है, इसमे दस हजार से उपर मंत्र है जिनको ऋचाए कहते है। दूसरा यजुर्वेद है जिसमें १९७५ मंत्र है, जो कर्म काण्ड है जिसका साक्षात्कार वायु ऋषि ने किया था। तिसरा वेद साम वेद है जिसमें १८७५ मंत्र है। जो उपाषना काण्ड है। जिसका साक्षात्कार आदित्य ऋषि ने किया था। चौथा वेद अथर्वेद है जिसमें पांच हजार से अधिक मंत्र है इसमें प्राय सभी मंत्र पहले तिन वेदों से ही लिए गये है कुछ ही मंत्र इसके अतिरीक्त है। जो विज्ञान कांड के रूप में जाना जाता है जिसका साक्षात्कार अङ्गिरा ऋषि ने किया था। वेदों को पहले त्रई विद्या के रूप में जानते थे। इनका मुख्य विषय ज्ञान, कर्म, उपाषना ही है। या ईश्वर, जीव, प्रकृती का ज्ञान वेदों में सर्वत्र विद्यमान है। वेदों को श्रुती भी कहते है क्योंकि लाखों करोणों अरबों सालों पहलें से गुरु शिष्य परम्परा से सुरक्षित किये गये है । कंठस्त कर करके यहां तक लाये गये है । जिसे ओरल या मौखिक भाषा कहते है। वेदों को श्रृष्टि के प्रारम्भ में दिया गया था इसलिये वेद उतने ही प्राचिन है जितना की श्रृष्टि है, श्रृष्टि की आयु आज सन दो हजार सत्तरह में एक अरब छानबें करोण आठ लाख तीरपन हजार एक सौ सत्तरह साल हो गये है। वेदों में किसी प्रकार की कोई मिलावट अब तक नहीं हुई है क्योंकि वेदों के प्रत्येक अक्षर शब्द मात्राओं को गिनती की गई है इसमें कुछ भी मिलावट नही कि जा सकती है। स्वरों से बांधा गया है हर मंत्र के तिन अर्थ होते है दैविक, दैहिक, आध्यात्मिक यही तिन प्रकार के मुख्य दुःख है जिनसे मुक्त होने का केवल एक मार्ग बताया गया है यह है पुरषार्थ। इसके अतिरिक्त वेदों के छः अंग और छः उपांग है अंगों में क्रमशः शीक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, व्याकरण और ज्योतिषी आते है। षड् दर्शन में जो वेदों के उपांग है। योग दर्शन, योगी पंतजली ऋषि, सांख्य दर्शन कपिल मुनी द्वारा रचित, न्याय दर्शन गौतम ऋषि द्वारा रचित, वैशेषिक दर्शन कणाद ऋषि द्वारा रचित है। मिमांशा दर्शन जैमिनी ऋषी द्वारा निर्मित है। वेदान्त दर्शन महर्षि व्यास द्वारा रचित है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ती वेदों के अनुसार-:

शब्द ही प्रथम परमेश्वर के द्वारा उच्चारित किया जिसे नाद ब्रह्म कहते है। जो अदृश्य से दृश्य में प्रकट हुये, परमेंश्वर ने सर्वप्रथम अपना ही स्मरण किया और अपने निज मुख्य नाम ओ३म् का उच्चारण किया क्योंकि यह ओ३म् अपने आप अद्भुत रहस्य पूर्ण अलौकिक दिव्य आश्चर्यमय ब्रह्म है इसमें

मुख्यतः तीन तत्त्व श्रृष्टि की अनादी सत्ताये विद्यमान है जिसको हम ब्रह्मा, वीष्णु, महेश, के रूप में पहचानते है। इस ओ३म् में तिन सत्तायें विद्यमान है जिसे ईश्वर, जीव, प्रकृति के रूप में जानते है। अ उ म अकार उकार मकार अर्थात सत्, रज, तम जिसे वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रान, न्युट्रान, प्रोटान के रूप में जानते है यह एक परमाणु रूप ब्रह्म शब्द है। यह शब्द की सुक्ष्तम ध्वनी उर्जा की प्रारम्भीक बीन्दु है जो रेडीयो तरंग से भी सुक्ष्म है और स्थुल रूप में यही परमाणु है। और एक परमाणु में सभी प्रमुख मुल रूप से ईश्वर, जीव, प्रकृति के समग्र गुण विद्यमान है। जैसे पानी के एक अणु में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पानी के रूप समंदर के मुख्य गुण है।

कैसे हुई स्थूल जगत की रचना संसार चेतन (आत्मा) और योग(साधना) गुण और दोष कर्ता शरीर के अन्दर आत्मा का संघटन रूप शरीर योगी और ज्ञानी आज्ञा-चक्र आज्ञा प्रधान विधान पिण्ड और ब्रह्माण्ड रूप स्वराट और विराट शरीर आत्म-ज्योति का रहस्य सौर मण्डल अथवा सौर परिवार तेज-पुंज से पिण्ड रूप पृथ्वी हिरण्य गर्भ से गर्भ स्थित शरीर तक 'हम' अथवा 'मैं' क्या है? अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति में 'हम' ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और तथाकथित गॉड पार्टिकल नहीं रहता कण-कण में भगवान सभी आध्यात्मिक गुरु शिष्यों के लिए नहीं है परमेश्वर स्वयं में विद्यमान है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और तथाकथित गॉडपार्टिकल जेनेवा स्थित यूरोपियन ऑर्गनाइज़ेशन न्यूक्लियर रिसर्च (सर्न) द्वारा दुनिया के सबसे बड़े महाप्रयोग में १०० से ज्यादा देशों के करीब ८००० वैज्ञानिकों ने हिस्सा लिया और इस पर १० अरब अमेरिकी डॉलर से भी ज्यादा खर्च हुये जिसके परिणाम में तथाकथित गॉड पार्टिकल (हिग्स बोसोन) की खोज करने का दावा कर रहे वैज्ञानिकों की यह सारी खोज आधी अधूरी अपूर्ण के साथ-साथ अनुमान पर आधारित है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि "हिग्स बोसोन" यानि वस्तु में मिलने वाला वह सूक्ष्म कण जिसके कारण वस्तु में भार है। जिसके कारण ही सभी वस्तुएं आपस में संघठित हैं, जो अरबों साल पहले हुये एक महाविस्फोट के बाद अस्तित्व में आया जिसे ही आज के वैज्ञानिक हिग्स बोसोन, ईश्वरीय कण, ब्रह्म कण को अलग-अलग नामों से सम्बोधित कर रहे हैं। इस वैज्ञानिक खोज को भारतीय धर्म गुरु धर्माचार्य भी यह कहते हैं कि कण-कण में भगवान है जिसको विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया। वैज्ञानिकों का मानना है कि हिग्स बोसोन (ब्रह्म कण) समझ लेने से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के रहस्य को जानने में बड़ी मदद मिलेगी, यह पता चल सकेगा कि ब्रह्माण्ड जिससे हमारी धरती, चाँद, सूरज सितारे, आकाश गंगायें हैं, कैसे बना? अभीतक विज्ञान मान रहा है कि अरबों साल पहले हुये एक महाविस्फोट जिसे बिग बैंग कहा जाता है, के बाद पदार्थ बने और फिर हमारा ब्रह्माण्ड, लेकिन यह महाप्रयोग उस राज से पर्दा उठा देगा कि ऊर्जा से पदार्थ कैसे बनता है? सर्व प्रथम शब्द से उर्जा और उर्जा से पदार्थ निर्मित हुए।

विज्ञान के इस आधे-अधूरे अप्रमाणित अनुमानित खोज से कई प्रश्न पैदा हो जाते हैं, जैसे कि महाविस्फोट कब और कहाँ हुआ? महाविस्फोट किन-किन पदार्थों के बीच हुआ ? महाविस्फोट में प्रयोग

होने वाले पदार्थों की उत्पत्ति कैसे हुई? और कब हुई? ये हिग्स बोसोन के कारण जो वस्तुओं में भार है इसका ओरिजिन कहाँ से है? फिर इस कण से आगे यह ऊर्जा की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? फिर यह ब्रह्माण्ड जिस विस्फोट से बना आखिर वह महाविस्फोट क्यों हुआ ? उसका कारण क्या था? महाविस्फोट में कौन कौन से पदार्थ थे और पदार्थों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? ब्रह्माण्ड में पदार्थों में पायी जाने वाली ऊर्जा शक्ति की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? आदि आदि बहुत प्रश्न हैं जिसका जवाब न तो इन वैज्ञानिक के पास है, न इन तथाकथित धर्मगुरूओं के पास है। पदार्थ में पाये जाने वाले सूक्ष्म कण हिग्स बोसोन को ही कण कण में भगवान घोषित करना आधे-अधूरे ज्ञान की पहचान है। कण कण में उर्जा है जीव भी नहीं है, चेतन भी नहीं है बल्कि जिस कण में चेतन विहीन शक्ति है, चेतन विहीन शक्ति को ही आजकल के वैज्ञानिक और आध्यात्मिक लोग परमात्मा-परमेश्वर-भगवान कह कर घोषित करने में लगे हैं और परमात्मा-परमेश्वर-भगवान-खुदा-गॉड के पृथक अस्तित्व को मिटाने में लगे हैं जो कि घन घोर भगवद्द्रोही कार्य है। जब-जब धरती पर ऐसा असुरता रूप नास्तिकता फैलता है तब-तब इस धरती पर स्वयं परम प्रभु-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करने हेतु तथा विज्ञान और अध्यात्म का भी रहस्य उजागर करने के लिए अवतरित होते हैं। वास्तव में इस सृष्टि ब्रह्माण्ड का रहस्य और भगवान का रहस्य इस संसार से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि में कोई जानता ही नहीं है। चाहे वैज्ञानिक लोग महाप्रयोग करें और आध्यात्मिक लोग जितने भी आध्यात्मिक अनुसन्धान करें, पूरा जीवन लगा दें, लाखों करोड़ों वर्ष लगा दें तब भी इस सृष्टि का और परमात्मा का रहस्य कोई नहीं जान पाएगा। यह सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्माण्डों का रचनाकार उत्पत्ति कर्ता स्वयं परमात्मा-परमेश्वर-भगवान हैं, इस सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्य मात्र उसी के पास हैं।

विज्ञान की पहुँच पदार्थ (कण) जड़ तक ही होती है। पदार्थ से पहले शक्ति का रहस्य, इसका उत्पत्ति रहस्य विज्ञान से मिलना कदापि सम्भव नहीं है। ठीक उसी प्रकार किसी भी ध्यान-साधना की अवस्था में दिखाई देने वाले आत्मा ज्योति, दिव्य ज्योति, ब्रह्म ज्योति, शिव शक्ति, अलिमे नूर की उत्पत्ति का रहस्य किसी भी योगी यति आध्यात्मिक के पास नहीं होता। अर्थात वैज्ञानिकों का जड़ पदार्थ और अध्यात्मिकों का चेतन ज्योति का रहस्य केवल अवतार (अर्थात जिसने परमेंश्वर का साक्षात्कार कर लिया है) भगवान के तत्त्वज्ञान में होता है।

ऋग्वेद का नासदिय सुक्त इसके संदर्भ कुछ इस तरह से कहता है।-:

"जब कहीं कुछ भी नहीं था, न यह सृष्टि था, न यह ब्रह्माण्ड, न यह ब्रह्माण्ड में दिखाई देने वाला आकाश, वायु, अग्नि, जल, थल, न सूरज, न चाँद, न तारे, न आकाश गंगायें, न पदार्थ, न चेतन न यह हिग्स बोसोन, न यह ब्रह्म कण अर्थात् जब यह सृष्टि थी ही नहीं तब वह परमात्मा-परमेश्वर-भगवान-खुदा-गॉड' शब्द रूप' वचन रूप में परम अदृश्य शुन्य रूप परम धाम में था। उसे ही शब्द ब्रह्म भी कहा जाता है। जिस शब्द वचन रूप परमात्मा के अन्दर सृष्टि रचना का संकल्प हुआ। संकल्प यानी कुछ हो, भव, कुछ यह भाव होते ही उस शब्द रूप परमात्मा से एक शब्द निकल कर अलग हुआ यानी

एक शब्द उस परमात्मा से छिटका जो शब्द प्रचण्ड तेज पुञ्ज से युक्त था यानी उस में इतना ज्योति तेज शक्ति से युक्त था। इसको ही आदिशक्ति, मूल प्रकृति, अव्यक्त प्रकृति भी कहा जाता है। उस शब्द रूप परमात्मा से एक शब्द छिटकने के पश्चात्त भी उस परमात्मा वाले शब्द में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि वह एक सम्पूर्ण शब्द ही बना रहा, यही इस परमात्मा की आश्चर्यमय विशेषता थी। शब्द रूप भगवान से जो शब्द निकला, जो प्रचण्ड तेज पुञ्ज अक्षय ज्योति से युक्त था उसको ही सम्पूर्ण सृष्टि का कार्य भार सौपा गया। यानी मूल प्रकृति को ही सृष्टि का कार्यभार परमात्मा ने सौंपा और सृष्टि करने के लिए इच्छा शक्ति दिया। (इसी शब्द रूप भगवान से एक शब्द निकलकर छिटककर प्रचण्ड तेज पुञ्ज हुआ इसको विज्ञान अनुमान के आधार पर महाविस्फोट कहता है) फिर इस प्रचण्ड तेज पुञ्ज शब्द शक्ति से शक्ति उर्जा निकलकर पृथक हुई जो आगे चलकर आकाश, वायु, अग्नि, जल और थल का रूप लिया यानी पदार्थ का रूप लिया फिर इस सृष्टि का संरचना हुआ यानी उस शब्द मय उर्जा शक्ति से ही पदार्थ बनते हुये इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई।

सृष्टि की उत्पत्ति:-

आदि के पूर्व में जब मात्र "परमतत्त्वम् आत्मतत्त्वम् रूप शब्द ब्रह्म ही थे। उन्हे संकल्प उत्पन्न हुआ कि कुछ हो। चूँकि वे सत्ता सामर्थ्य से युक्त थे और उनके कार्य करने का माध्यम संकल्प ही है। इसलिए कुछ हो संकल्प करते ही उन्ही शब्द ब्रह्म का अंग रूप शब्द शक्ति अदृश्य उर्जा सः (आत्मा) छिटककर अलग हो गयी,जो संकल्प रूपा आदि शक्ति अथवा मूल प्रकृति कहलायी। तत्त्व ज्ञान शब्द ब्रह्म के निर्देशन में (सः आत्मा) रूप शब्द शुन्य उर्जा शक्ति को सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी कार्य भार मिला अर्थात् सृष्टि (ब्रह्माण्ड) के सम्बन्ध में निर्देशन, आज्ञा एवं आदेश परमतत्त्वम् आत्मतत्त्वम् रूप शब्द ब्रह्म स्वयं अपने पास, उत्पत्ति संचालन और संहार से सम्बंधित क्रिया-कलाप (सः) आत्मा रूप शब्द शक्ति के पास सौंपा परन्तु स्वयं को इन क्रिया कलापों से परे रखा।"

शब्द शक्ति रूप आदि-शक्ति ही मूल प्रकृति भी कहलायी, क्योंकि प्रकृति की उत्पत्ति इसी आदिशक्ति रूप में हुई इसलिए यह मूल प्रकृति भी कहलायी। पुनः आदिशक्ति ने शब्द उर्जा अदृश्य ब्रह्म के निर्देशन एवं सत्ता-सामर्थ्य के अधीन कार्य प्रारम्भ किया। इन्हे कार्य के निष्पादन हेतु इच्छा शक्ति मिला। तत्पश्चात् आदिशक्ति ने सृष्टि उत्पत्ति की इच्छा की तो इच्छा करते ही शब्द शक्ति रूपा आदिशक्ति का तेज दो प्रकार की ज्योतियों में विभाजित हो पहला भोग प्रकृती दूसरा भोक्ता जीवात्मा हो गये, जिसमें पहली ज्योति तो आत्मा ज्योति अथवा दिव्य ज्योति कहलायी तथा दूसरी ज्योति मात्र ज्योति ही कहलायी अर्थात् पहली ज्योति आत्मा जो चेतनता से युक्त है तथा दूसरी ज्योति शक्ति कहलायी इसी से प्राकृति पदार्थ की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्माण्ड की उत्तपत्ति के विषय में वेदों में ऋग्वेद कहता है की सर्व प्रथम कुछ भी नहीं था यहां तक आकाश भी नहीं था केवल परमेश्वर था जो अपनी अद्वितिय अद्‌भुत सामर्थ से शांसे ले रहा था । सर्व प्रथम उसमें इच्क्षा उत्तपन्न हुई की वह विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हों, ऐसी इच्छा परमेश्वर के हृदय में आते ही शब्द रूप ब्रह्म प्रकट हुआ उसके साथ हि भोग और भेक्ता भी शब्द रूप शुन्य उर्जाये

प्रकट हुई अदृश्य जगत से दृश्य जगत में, जिससे एक अद्‌भुत अलौकिक अकल्पनिय अचानक अग्निपिण्ड प्रकट होगया भोग रूप प्रकृति और दूसरा उसका भोग करे वाला जीव उसमें प्रवेश करके उसका विस्तार करने लगा। और उसमें निरंन्तर बिस्फोट होने लगा जिसमें अनन्त ब्रह्ममाण्ड, जिसमें से सबसे छोटा ब्रह्माण्ड हमारा है। उसमें भी सबसे छोटी आकाश गंगा हमारी है। उसमें एक किनारें पर हमारा सूर्य अपने सौर्यमंडल उपस्थित है। जो आकाश गंगा के केन्द्र का अपने सम्पूर्ण ग्रहों के साथ चक्कर लगा रहा है। अनन्त आकाश गंगायें, अनन्त सौर्य मंडल के साथ बहुत सारे सूर्य पैदा हो गये छोटे सुर्य हमारे सौर्य मंडल का उत्पन्न हुआ और इसमें भी विस्फोट हुआ जिससे सभी ग्रह उत्तपन्न हुये जिसमें से ही एक हमारी पृथिवी भी है। हमारी पृथिवी लग- चार अरब वर्ष पुरानी हो चुकी है।

जैसा की पृथवी हमें आज दिखाई देती है वह प्रारम्भ में ऐसा बिल्कुल नहीं थी। यह अपने प्रारम्भीक काल में, सूर्य से निकलने के कारण सूर्य के समान भयंकर ज्वलनशील गैसों का अग्निपिण्ड थी । इसको ठंडा किया गया लगातार अरबों सालों तक बारीष के कारण से, उसके बाद एक विशाल धुम केतु आकर अंतरीक्ष से हमारी पृथिवी से टकरा गया, जिसकी वजह से पृथवी दो टुकड़ों में बिभक्त हो गई, और उसके बाद एक छोटा टुकड़ा जिसे हम चंद्रमा कहते वह पृथवी से तीन लाख चौरासी हजार किलोमिटर दूर होकर पृथ्वी का चक्कर लगाने लगा। जैसा की पृथिवी सूर्य का चक्कर लगाती है । सूर्य आकाशगंगा के केन्द्र का चक्कर लगाता है। आकाशगंगायें ब्रह्माण्ड के केन्द्र का चक्कर लगाती है । और यह सारें ब्रह्माण्ड परमेंश्वर जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का केन्द्र है अदृश्य केन्द्र बिन्दु ध्वनी रूप शब्द ब्रह्म का चक्कर लगाते है अस्तु। इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के मुख्य कार्य हो रहे है पहला कार्य ईश्वर द्रष्टा स्वरूप साक्षी बन कर निष्पक्ष हो कर सभी प्रकार के कृत्यों को देख रहा है जो भोक्ता रूप जीव जिसे आत्मा कहते वह प्रकृती रूप भोग सामग्री का किस प्रकार से उपभोग कर रहा है। दूसरा कार्य जीव नये - नये रूपों में स्वयं को निरंतर बिभक्त कर रहा है। प्रकृती के पदार्थों के आवरण के अन्दर व्यवस्थित होकर । जिसमें से एक सबसे श्रेष्ठ अद्‌भुत रूप मानव शरीर के रूप में भी विद्यमान है। तीसरा कार्य प्रकृती स्वयं का निष्पक्ष भाव से जीव का हर प्रकार से रक्षात्मक सहोग कवच की भाती बन कर कर रही है।

जब पृथवी के दो टुकड़े हो गये उसके बाद पृथिवी पर बहुत सालों तक सूर्य का प्रकाश पृथिवी की सतह तक नहीं आसका क्योंकि धुमकेतु के टकराने से इतना भयानक बिस्फोट हुआ जिसकी कल्पना हम नही कर सकते है। चन्द्रमा पृथिवी के जिस हिस्से से अलग हुआ वहां पृथवी में बहुत बड़ा गड्ढा बन गया जो करीब बारह किलोमिटर गहरा था। जिसमें पानी जो अन्तरीक्ष से बरसता है धिरे-धिरे अपने मिट्टी के कड़ों को बहाकर ले जा कर उसमें जमा एकत्रित होने लगा। जो सबसे गहरा महा सागर प्रशान्त के रूप में आज पृथिवी पर विद्यमान है। क्योंकि चन्द्रमा के उपर का जो पर्वत है वह ठीक उतना ही उचां है जितना गहरा प्रशान्त महासागर है। अर्थात पृथिवी का वही का टुकड़ा चांद है जहां आज प्रशान्त महासागर के रूप में है।

जब पृथवी से चंद्रमा अलग हुआ जिसकी वजह से धुल - धुसर का बवन्डर गुबार पृथिवी के वायुमंल में दसों दिशाओं से छा गये, और पृथिवी का सतह बहुत तिब्रता ठंडा होने लगा। जिस प्रकार से एक वाल्टी में बहुत सारे पदार्थों के कुछ बहुत हल्के कचरें को पानी घोल कर कुछ समय के लिये

किसी ठंडे स्थान पर रख दे तो जो कचरा का भारी हिस्सा होगा वह तलहटी में जम जायेगा और जो हल्का होगा यह सबसे उपर पानी में तैरने लगेगा, ठीक इसी प्रकार से पृथवी के साथ हुआ। एक प्रकार से पृथिवी जैसे किसी लिफाफे में बन्द हो गई। और लाखों वर्षों तक सूर्य के प्रकाश से दूर रही। पृथिवी में उपस्थित बिभिन्न प्रकार की गैसे पानी को पाकर अपने को वास्पित करके पृथिवी की सतह से उपर उठने लगी जो गैस ज्यादा द्रव्यमान घनत्व वाली थी वह निचे रही, और जो बहुत अधिक हल्की थी वह पृथिवी की सतह से बहुत उपर उठकर अपने चर्मोत्कर्ष पर जाकर जमने लगी जैसे ओजोन की परत है। जिसके कारण सूर्य की पैरा बैगनी खतरनाक किरणें पृथिवी की सतह पर नही आ पाती है। वह ओजन की परत से टकरा कर जिस प्रकार सीसा किसी सूर्य के प्रकाश की किरणों को वापिस उसी दिशा में भेज देता है, ठीक इसी प्रकार से यह पारदर्शी ओजोन की परत पृथिवी के लिये वह अवस्था पैदा करने लगा जिससे कोई जीव यहां पर जीवित रह सके, एक प्रकार से यह ओजोन पर जीवन के लिए पृथिवी पर किसी प्राणी के लिये सुरछा कवच का कार्य करती है। ओजोन की परत आक्सिजन के दो कणों से मिल कर बनी है। पानी में आक्सिजन का केवल एक अणु है जो दो अणु हाइड्रोजन का लेकर पानी का एक परमाणु बनाता है। यह ओजोन कि परत बनने के बाद जो पानी अन्तरिक्ष से सिधा पृथिवी की सतह पर वरषता था वह भी बन्द होगया। इस परत के कारण पानी के कणों में विद्यमान आक्सिजन ओजोन के कणों के साथ रासायनिक अभीक्रिया कर ओजोन की परत को और सक्त करने लगा, जिसके कारण पानी का दूसरा कण हाइड्रोज उससे दूर सूर्य कि किरणों के साथ मिल कर वापिस अन्तरिक्ष में जाने लगा। इस प्रकार से पृथिवी पर पहले से विद्यमान पानी जब पुनः सुर्य प्रकाश का ताप पाकर पृथिवी की सतह पर आना प्रारम्भ हुआ, तब शुद्ध रूप में यह जीवन के लिये सहयोगी बना, और दूसरी तरफ पृथिवी पर उपस्थित पानी वास्पित हो कर पृथिवी के वायुमंडल में बादल के रूप में एकत्रीत होने लगा और समय-समय पर जैसे पृथिवी जब सूर्य के करीब से गुजरती तब यह बादल पानी की बुदों के रुप में बरषने लगे, इस प्रकार से पृथिवी पर ऋतुए मौसम का प्रारम्भ हो गया। सर्दि, गर्मी, बरसात, बसन्त पतझण इत्यादी।

अभी भी पृथिवी काफि गरम थी फर्क सिर्फ यह आया था की लाखों करोंणों सालों तक बारिष हुई, जब पृथिवी से चन्द्रमा अलग नहीं हुआ था । वारिष का पृथिवि पर यह असर पड़ा कि पृथिवी के सम्पर्क में आने से पहले ही पानी की बुदें वास्प में परीवर्तन होती रही, यह प्रकृया लाखों सालों तक चलता रहा। यह वास्प जब पृथवी के सतह पर बहुत सघन हो गये तो स्टिम की एक मोटी परत पृथवी के सतह से कुछ किलोमिटर उपर तक बना लिया। इस वास्प स्टिम के कई किलोमिटर उपर ठिक उससे सट कर झाग फाग कोहरे बादलों का कई एक किलोमिटर मोटाई में चारों तरफ लेयर की परत बन गई। ठीक इसके उपर बर्फ की मोटि परत कई एक किलोमिटर मोटी पर बन गई। जिस प्रकार से पृथवी का उत्तरिय और दक्षिणी ध्रुव है जहां बीसों किलोमिटर मोटाई में समन्दर के वर्फ की परत है। यहां फर्क यह है कि यह बर्फ की मोटी परत समन्दर के ठंडे पानी के उपर है । जबकि पहले जो पृथवी के चारों तरफ बर्फ की कई एक कीलोमिटर की जो परत थी वह फाग कोहरें, बादलों और स्टिम, भाप के उपर थी। उसके निचे पृथवी ज्वलन शिल भयंकर गैसों की पिंड थी पृथवी के केन्द्र से सतह के विच में लग-भग तीस से चालिस किलोमिट अन्दर तक कुछ बिल्कुल

तरल बिभिन्न प्रकार की गैसे उसके उपर ठोस और सबसे उपर सतह से कुछ किलो मिटर तक भयंकर गैसों की वास्प की परत थी। जब पृथवी से धुमकेतु टकराया उसके परिणाम स्वरूप पृथिवी से चन्द्रमा अलग हुआ। और जब सूर्य कि कीरणों से पृथिवी का सिधा सम्पर्क ना होने के कारण । क्योंकि पृथिवी से धुमकेतु के टक्कर के बाद धुल –धुसर का बवन्डर कई एक ससालो तक पृथिवी के चारों तरफ फैला रहा जिसके परिणाम स्वरूप ही पृथिवी का वायुमंड बना और पृथवी पर मौसम ऋतुवों का अभिर्भाव हुआ। अब तक पृथिवी पर पानी का बहुत बड़ा भंडार जमा हो चुका था। कई लाखों साल अंतिरीक्ष से बारीष होने के कारण। जब पृथिवी पर सूर्य का प्रकाश नही आरहा था। उस समय पृथिवी की सतह ठंडी होने के कारण सारा वास्प जो पृथिवी के सतह के ठीक उपर जमा था कई एक किलोमिट वह सब जम कर बर्फ का रूप धारण करने लगे। और पृथिवी बहुत अधिक ठंडी होगई कई किलोमिटर अन्दर तक सतह से बिल्कुल ठोस रूप होगई। इस तरह धुमकेतु से जब कई सौ सालों के बाद जब सब धुल–धुसर चन्द्रमा के पृथिवी के अलग होने के कारण उठ रहे थे। सब शान्त और व्यवस्तित होगये। और उजोन की परत के कारण वायुमंडल बन गया पृथिवी पर, सूर्य का प्रकाश शुद्ध रूप से बिना बैगनी किरणों के पृथिवी की सतह तक पुनः आने लगे। तब उसके बाद सिर्फ बारीष चार महिनों तक होने लगी, चार महिने गर्मि और चार महीने सर्दी पड़ने लगी। जब बारीष होती तो वह पानी रूप तरल बन कर बर्फ के निचे बह कर हर तरफ से उस स्थान पर एकत्रीत होने लगा जो बिशाल गड्ढा पृथवी चन्द्रमा के निकलने के कारण बना था। पानी के साथ बहुत सारे रसायन मिट्टि के कण भी बर्फ की परत के निचे उस गड्ढें में जाकर एकत्रीत होने लगे, लाखों सालों तक यह प्रक्रिया चलने के कारण उस गड्ढे में सबसे उपर बर्फ उसके निचे पानी तरल रूप में खारा कई किलो मिटर निचे पृथिवी के समकछ सतह तक भर गया जिसमें कोई लहर नहीं थी ना ही उसमें कोई ज्वार भाटा ही आता था। क्योंकि सारा पानी बर्फ के निचे विद्यमान था। उस पानी के निचे जो पृथिवी के चारों तरफ से कचड़ा बह कर जाता था। वह सब पानी बर्फ के निचे एकत्रीत होने लगा। जो आगे चल कर लाखों सालों में पर्वत बन कर उभरा पृथिवी कि सतह से उपर, इसके पिछे कारण है कि पृथ्वी दोनों ध्रुओं से बधी एक बिशाल चट्टान रूप है जो फैल तो सकती नहीं, और पानी या बर्फ पृथिवी की सतह से उपर जा नही सकते क्योंकि पृथिवी इतनी तीब्रता से घुम रही है पुरब से पश्चिम की तरफ इस तरह से एक बैक्युम बन गया है। जो पृथिवी को फैलने से रोकता है जो समन्दर के अन्दर पर्वत बनने का कारण बना। इस तरह से पृथिवी पर उपस्थित समन्दर से हिमालय रूपी सर्वप्रथम पर्वत का जन्म हुआ, जो समन्दर की सतह से आज लगभग नौ किलोमिटर उचां है। और आज भी वह बढ़ रहा है। जहां आज पृथिवी पर हिमालय पर्वत है वहां कभी वहां बहुत लाखों करोड़ों साल पहले टेनिथ नामक समन्दर हुआ करता था। आज भी हिमालय पर बहुत बड़ी मात्रा में बर्फ के अतिरीक्त उसकी चोटियां नमक से ढकी है। जो यह सिद्ध करती है की यह समन्दर से आई है।

जैसा की ध्रूओं पर है ऐसा ही पृथिवी के चारों तरफ बर्फ था । पहले जब हिमालय नहीं था ना ही कोई समन्दर ही था। जो अभी पृथिवी के वायुमंडल गरम होने के कारण बहुत तिब्रता से ध्रुओं की बर्फ गल कर समन्दर के पानी में मिल कर समन्दर की सतह को उचां कर रहा ऐसा ही चलता रहा तो कुछ एक सौ सालों के अन्दर ही समन्दर के किनारे जो बड़े – बड़े देश बशायें गयें है वह सब समन्दर में डुब जायेगें। ऐसा पहले भी हो चुका है। समन्दर में महाभारत कालिन कृष्ण की द्वारीका

नगरी जो अहमदाबाद के पास थी वह समन्दर में समा गई है । समन्दर के एक या दो किलोमिटर अन्दर आज भी कृष्ण की नगरी द्वारीका का अवषेश विद्यमान है।

मनुष्य वह है जो चिन्तन मनन विचार और सत्य का निर्णय करने में सक्षम हो जिसके पास यह सामर्थ नहीं वह मानव कहलाने के योग्य नहीं है। हम प्रायः दूसरे को बदलना चाहते है, दूसरे को सुन्दर समझते है दूसरे से प्रेम करते है दूसरे जैसा बनना चाहते है। हर वस्तु को अपने इच्छा, राग, द्वेश से देखते है। यहां तक हम स्वयं को भी हम पूर्णतः नही स्विकारते हमेशा हम दूसरे का ही अनुसरण करते है। क्योंकि यह तरिका बहुत परिश्रम से तैयार किया गया है जिससे मानव का शोशण भरपुर करने में सफलता निरंतर मिलती रहे। आज दुनिया एक अजायब घर या यातना गृह बन कर रह गई है, इसको बनाने वाला कोई और नहीं वही लोग है, जो दूसरे जैसा बनने में लगे है। यह हम नही जानते की हम कौन है? जब हम स्वयं को जान जायेगे तो हमारे जैसा कोई दूसरा नहीं है, हम अद्वित और अद्भुत शक्ति समपन्न है हम हमेशा दूनिया को समझना चाहते है दूनिया को बदलना चाहते या फिर दूनिया के साथ चलना चाहते है। जबकी दूनिया बहरी, लुली, लंगड़ी, अपाहिज और ब्यर्थ है यहां सब कुछ जण नश्वर है । हम स्वयं को प्रेम करें स्वयं को बदले स्वयं के लिये जिवन को जीये हमारे लिये सब कुछ संभव है, जब हमारा ध्यान स्वयं पर होगा। तभी हमें स्वयं का ज्ञान होगा। हम सबसे पहले भारतीय है। हमारा पहला धर्म है, भारत को जानना भारत कोई व्यक्ति नहीं भारत एक आत्मा है जिस प्रकार बिना आत्मा के शरिर रुपी पृथ्वी बेकार उसी प्रकार बिना भारत के दुनिया का अस्तित्व संभव नही है। क्योंकि दुनिया का प्रारम्भ या श्रृष्टि का प्रथम अवतण भारतिय उप महाद्विप तिब्बत के हिमशिखर पर हुआ, यह श्रृष्ठि अमैथुन श्रृष्टि थी अर्थात बिना किसी गर्भ की सहायता के यहां पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवों को युवा ज्वान रूप में पैदा किया गया था। इसके पिछे बहुत बड़ा कारण था की बच्चों को पैदा किया जाता तो उनका पालन कौन करता? यदि वृद्धों को पैदा किया जाता तो उनकी सेवा कौन करता? इस कारण से सभी जीवों को युवा रुप में उत्तपन्न किया गया या दूसरे शब्दों में क्लोनिगं के रुप उत्पन्न किया गया। यह क्लोनिगं करने वाले कौन थे ? वह मनु और सप्तऋषि थे। यह मंगल ग्रह पर से आये थे क्योंकि वहां पर जब भयानक परमाणु युद्ध होना शुरु हुआ देवता और दैत्य में अर्थात आर्य और अनार्य में जिसके कारण वहां की मानवता संस्कृत सभ्यता बहुत तिब्रता से नष्ट होने लगी। इसके साथ वहां का वायुमंडल अत्यधिक गर्म होने लगा और वायुमंडल लगभग समाप्त होने के कगार पर पहुंच गया, जिसके कारण मंगल ग्रह के चनंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण कम होगया और वह मंगल के सतह से टकराने के लिये उसके तरफ बढ़ने लगा।

यह ज्ञान वहा के वैज्ञानिक और सप्तऋषि मनु जो वहां के प्रमुख थे उनको हुआ तो वह जीवन और श्रृष्टि को आगे बढ़ाने के लिये सभी जीवों के जीन डि एन ए जो पहले से एकत्रित वैज्ञानिक ऋषियों के द्वारा किये गये थे वह सब लिया एक बड़े स्पैशविमान कि सहायता से हिमालय के शिखर पर आये यहां एक बिशाल लैब अस्थापित की और उसमें सभी प्रकार के जीवों की मानव समेत क्लोनिगं की। मंगल ग्रह पर उसका उप ग्रह चंद्रमा कुछ समय पश्चात टकरा गया वहां सब कुछ सर्वनाश होगया क्योंकि बिशाल ग्रहों के टक्कर के कारण कई वर्षों तक सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच

पाया उस ग्रह पर जिसके कारण किसी जीव का जीवीत रहना संभव नहीं रह सका सिवाय कुछ सुक्ष्म वैक्टेरिया के जो अब भी वहां विद्यमान है। इस तरह से सर्वप्रथम मानव समेत सभी जीव जन्तु प्राणी का उदय पृथ्वी पर हुया। हिमालय के शिखर पर जो अब तिब्बत में है। पहले वहां पर स्वर्ग बनाया गया था। इससे पहले स्वर्ग उत्तरिय ध्रुव पर वसाया गया था यह रामायण कालिन युद्ध के बाद खत्म होगया था, क्योंकि रावण का एक भाई था कुम्भकरण जिसने दक्षिणी ध्रुव पर अपना अधिकार कर लिया था और वह देवताओ के स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिये उद्दत अपने भाईयों और रावण के साथ था। जिसके कारण ही देवताओं ने योजनाबद्ध तरिके से राम रावण का युद्ध करा के स्वर्ग को बचाया था कुछ समय के लिये ही। क्योकि इस पृथिवी हमेंशा से देव और दैत्य का युद्ध निरंतर चलता रहता था। जिसमें स्वर्ग भी समय के साथ यहां स्वर्ग भी बदलता रहा है। तिब्बत का यह स्वर्ग महाभारत काल तक विद्यमान था, देवता अत्यधिक श्रेष्ठ स्त्री पुरुष रहते तो जो हजारो सालों लाखों सालों तक जीदां रहते थे। यहां साधरण जो जीव मैथुनी श्रृष्टि से पैदा होते उनको रहने की अनुमती नहीं थी इसलिये यहां रहने के लिये प्रायः युद्ध होते जिसमें वहां स्वर्ग में रहने वाले हमेंशा अपने योग बल से बिश पड़ते और साधरण जन जो मैथुनी श्रृष्टि से पैदा हुये वह देवतावों से कमजोर और उस वातावरण में जीने के योग्य भी नहीं थे। जब उनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ने लगी तो इन सब के लिये हिमालय के निचे घाटियों में बड़े नगर बशाये गये। जैसा की हम जानते है की काशी को शीव ने बशाया था जहां पर राजा हरिश्चन्द की निलामी हुई थी। और एक घटना महाभारत में आती है जब अर्जुन स्वर्ग में जाकर अपने सगे पिता इन्द्र के यहां रहता है और वहां से कई प्रकार की कला और अश्त्र शश्त्र ले कर आता है। यहां हिमालय पर साधना करके शिव को प्रशन्न करके उनसे भी अश्त्र प्राप्त करता है। शीव और हनुमान महाभारत और रामायण दोनों समय में विद्यमान है जिससे सिद्ध होता है की वह लोग जो स्वर्ग में रहते थे लाखों सालों तक जीन्दा रहते थे।

10 -- वैदिक विद्वान वैज्ञानिक विश्वामित्र के द्वारा अन्तरिक्ष में स्वर्ग की स्थापना

राजा हिरिश्चन्द राम के पुर्वज थे, राम के पीता दसरथ, दसरथ के पीता रघु और रघु के पिता अज थे। राम जिस धनुश को धारण करते थे वह अज नाम से ही जाना जाता है राम के इनसे कई पिढ़ी पहले हरिश्चन्द हुये उनके पिता त्रिशंकु थे। जो महर्षि वैज्ञानिक विश्वामित्र के बहुत बड़े भक्त थे। एक बार महर्षि को भी किसी कारण बश वहा स्वर्ग से निस्काशित कर दिया गया क्योंकि वह त्रीशंकु अपने भक्त को भी वहां स्वर्ग में स्थान दिलान या रखना चाहते थे। देवतावों ने यह प्रस्ताव ऋषी विश्वामित्र का अस्विकार कर दिया और कारण बताया की वह त्रिशंकु बिलाशी राजा है जो यहां स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है। यह देवतावों की बात सुन कर ऋषि बिश्वामित्र को अपना अपमान समझ में आया इसलिये उन्होने स्वर्ग का त्याग कर दिया और निचे संसार में रहने लगे, देवतावों से अपने अपमान का बदला लेने के लिये उन्होंने एक बहुत बड़ी योजना बनाई त्रीशंकु के साथ मिल कर जो पृथ्वी का चक्रवर्ति सम्राट था । उसके लिये अंतरिक्ष में एक नया स्वर्ग बनाने की।

विश्वामित्र भी पहले एक सम्राट थे वह भी राज्य चुके थे पृथ्वी पर वह त्रीशंकु के पुर्वज थे।

ऋषि विश्वामित्र के संदर्भ में एक बहुत प्रसिद्ध आख्यान प्रचलित है। एक वार ऋषि विश्वामित्र जब सम्राट हुआ करते थे, उस समय एक युद्ध इनका दैत्यों से हुवा था । उसको जित कर विश्वामित्र अपनी लाखों की सेना के साथ वापिस अपने राज्य की तरफ लौट रहे थे। उनकी सेना और वह बहुत थके

हुये थे, वह आराम चाहते थे कुछ समय के लिये, उस समय उनके पास कुछ रसद सामान शेष नही बचा हुआ था। तभी उनको उन्हें अपने गुप्तचरों के द्वारा ज्ञात हुआ की यहां कुछ दूर पर ब्रह्मऋषि वषिष्ट का आश्रम है। तो विश्वामित्र अपने एक सेवक को भेजा वषिष्ट के आश्रम में भेज कर याचना की उनके लिये और उनके सेना के लिये कुछ रसद खाने पिने का सामान उपलब्ध करायें, वषिष्ट ने उत्तर में कहलवाया की ठीक है आप सब आराम करें कुछ समय में सभी सामग्री आप सब के पास पहुच जायेगी।

इस तरह से विश्वामित्र की सेना और वह स्वयं आश्रम के समिप एक नदी किनार अपना पड़ाव डाल दिया। जैसा की उनको बताया गया था की कुछ समय में सभी वस्तु उनके पास पहुंच जायेगी। ठीक वैसा हुवा थोड़े ही समय में सभी सेना के लिये खाने पिने रहने के लिये सभी प्रकार का पर्याप्त सामान पहुचा दिया गया, यह जान कर विश्वामित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। जो कार्य मैं पूर्ण करने में बिवश हो रहा हुं इस जंगल में वह कार्य एक साधु ने इतना जल्दि कैसे संभव कर दिया? इस कारण को जानने के लिये वह स्वयं वषिष्ट से मिलने के लिये उनके आश्रम में गये, और ब्रह्म ऋषि वषिष्ट से विश्वामित्र ने पुछा की आप ने यह सब कैसे किया? इतने बड़े लाव लस्कर सेना को तृप्त कर दिया। तब ब्रह्म ऋषि वषिष्ट ने अपने पास विद्यमान एक गाय काम धेनु के बारे में बताया कि यह सब इस तो काम धेनु गाय ने किया है। यह जानकर विश्वामित्र काम धेनु को देखना चाहा । जब ब्रह्मऋषि ने, विश्वामित्र को काम धेनु गाय का दर्शन कराया तो उसको देखकर विश्वामित्र बहुत मोहित हो गये। और उन्होंने वह कामधेनु अपने महल में ले जाने की इच्छा जाहिर कर दी। यह काम धेनु जो सागर मंथन से निकली थी जिसको देवता और दैत्यों ने मिल कर किया था । ब्रह्मऋषि वषिष्ट ने कहा यह तो कामधेनु स्वयं निश्चय करती है की इसे कहा रहना है। कामधेनु ने विश्वामित्र के महल में जाने से मना कर दिया। विश्वामित्र ने अपनी सभी प्रकार की नितियों का प्रयोग किया कामधेनु को अपने महल में लाने के लिये। साम, दाम, दण्ड, भेद लेकिन वह किसी प्रकार से सफल नही हुये। अन्त में उन्हें अपनी पराजय स्विकार करनी पड़ी। फिर उन्होंने अपने पास के सभी विद्वान मंत्री से मंत्रणा की यह कैसे संभव हो गया? की कामधेनु एक सम्राट को छोड़ कर आश्रम में क्यों रहना चाहती है? तब उनके सभी विद्वान मंत्री सहयोगीयों ने बताया की वषिष्ट कोई साधारण मानव नहीं ब्रह्मऋषि है। विश्वामित्र ने कहा की क्या वह सम्राट से बड़े है? उनको उत्तर मिला हां महाराज इस तरह से विश्वामित्र ब्रह्मऋषि वषिष्ट के सरण में आकर राज्य का त्याग कर दिया। और ब्रह्मऋषि के साधना में तल्लिन हो गये काफी समय के बाद वह ब्रह्मऋषि की उपाधी से ब्रह्मऋषि वषिष्ट द्वारा संबोधित किये गये। और उनको स्वर्ग में अस्थान मिल गया वहां बहुत समय रहने के बाद जब त्रीशंकु को बचन देने के कारण स्वर्ग का त्याग कर दिया और एक नया स्वर्ग बनाने में जुट गये।

महर्षि विश्वामित्र जो एक महान वैज्ञानिक थे अपने शिष्यों के साथ मिलकर त्रीशंकु को जीवित स्वर्ग में पहुंचाने के लिये, उन्होंने एक नये उपग्रह स्वर्ग नाम से अंतरिक्ष में निर्वाण किया । और उसे पृथ्वि और चंद्रमा के मध्य में स्थापित कर दिया, वह पुरी तरह से मानव निर्मित एक उपग्रह था। वहां मानव को रहने की सभी सुबिधायें थी, वह एक कृतिम उपग्रह था। जैसा कि आज के समय में

अमेरिका, चाईना, रुश आदि देशों ने अपना एक स्पैश स्टेशन अंतरिक्ष में बना रखा है, यद्यपि यह बहुत छोटे है यहां पर कुछ एक मानव वैज्ञानिक सोध करने के लिये रहते है, भविष्य में मानव यहां पर घुमने जा सकता है। जहां पर कल्पना चावला जा कर जब वापिस आ रही थी, उसका स्पैश क्राफ्ट रास्ते में ब्लास्ट कर गया, जिससे उस स्पैशक्राफ्ट के सभी सात सदस्य कल्पना चावला समेत मारे गये थे। वहां भारतिय मुल की सुनिता बिलियम्स भी जा कर आ चुकी है।

विश्वामित्र का बनाया गया उपग्रह काफि बड़ा और सब प्रकार की सुख सुबिधा समपन्न था वहां पर त्रीशंकु अपने काफी आदमियों के साथ रहने लगे। लेकिन यह बात और दूसरे देवता वैज्ञानिक ऋषि जो हिमालय के स्वर्ग पर रहते थे उन्हें अच्छी नहीं लगी, कि कोई उनसे श्रेष्ठ अस्थान पर रहे और उनसे अच्छा जीवन जीये। क्योंकि जो स्वर्ग महर्षि विश्वामित्र ने बनाया था वहां रहने वाले की उम्र भी बढ़ जाती थी। और बहुत प्रकार कि सुबिधा थी, जो पृथ्वी पर विद्यमान स्वर्ग था वहां के लोगों को गवारा नहीं था। उन सब ने विश्वीमित्र को निचा दिखाने के लिये बहुत प्रकार के सणयंत्र रचने लगे। जिसमे सबसे पहले विश्वामित्र को जहां से सबसे अधिक धन मिलता था अर्थात त्रीशंकु के राज्य से जो अब उनके पुत्र राजा हरिश्चंद के अधिपत्य में चलता था। सभी देवता गड़ राजा हरिश्चंद को झुठा और असत्य सिद्ध करने के लिये संसार में प्रचारित करने लगे, गुप्त रुप से यह हरिश्चन्द को बहुत बुरा लगा। उन्होंने सम्पूर्ण संसार में अपनी प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिये, यह घोषणा कर दि की जो कोई उनको झुठा सिद्ध कर देगा वह उन्हें अपना सर्वश्व दान कर देगें, यहां तक राजा हरिश्चंद ने स्वप्न में भी झुठ नही बोलने की कसम खा रखी थी। विश्वामित्र को अपने कार्यक्रम अंतरिक्ष में बनाये स्वर्ग के लिये निरनंतर धन की आवश्यक्ता थी वह जानते थे देवता गड़ राजा हरिश्चंद को यदी झुठा सिद्ध कर दिया । अपने सणयंत्र के द्वारा और उनसे राज्य और उनका धन छिन लिया तो स्वर्ग का उनका कार्यक्रम रुक सकता है । या कोई भयानक विध्न पड़ सकता है। यह बिचार कर करके उन्होंने एक योजना बनाई कि राजा हरिश्चंद को भी उनके साम्राज्य समेत स्वर्ग में स्थापित किया जाये और पृथ्वि का त्याग कर दिया जाये, जिससे यहां पृथ्वी के दैत्य हिमालय के स्वर्ग के देवता में संघर्ष होगा । और हम देवता के सणयंत्र से बच जायेगे, और हमारा अंतरिक्ष का स्वर्ग सामाराज्य के साथ सुरक्षित हो जायेगा। यह बात जब राजा हरिश्चंद को महर्षि विश्वामित्र ने उनके स्वप्न में आ कर बताया और कहा कि यह इच्छा उनके पिता की भी है। लेकिन राजा हरिश्चंद को अपनी सत्य के प्रति निष्ठा और संसार में अपनी प्रतिष्ठा अपने पिता त्रीशंकु की इच्छा से बहुत अधिक बहुमूल्य था । वह किसी किमत पर पृथ्वी को छोड़ना नहीं चाहते थे। भले हि इसके लिये उनको अपना सर्वस्व राज्य पाठ धन, सम्पदा, मान, मर्यादा सब कुछ दाव पर लगाना पड़े । वह बिल्कुल तैयार थे, उनके साथ उनकी पत्नि और उनका बेटा भी तैयार था। जब महर्षि विश्वामित्र और त्रीशंकु को यह ज्ञात हो गया, कि किसी भी प्रकार से राजा हरिश्चंद अपने बचन से अडिग नहीं होने वाला है, सत्य मार्ग से जो इसके सर पर चढ़ गया है। इससे इसका सब कुछ छिन लिया जाये तो सायद दुःखों के थपेड़ों और कष्ट पूर्ण क्लेशों कि आधियों से बौखला कर हमारी सरण में आ जाये। त्रिशंकु की सहमति से महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चंद से कहा कि मैं अगले दिन सुबह तुम्हारे दरबार में आउंगा और तुम अपना सब कुछ जो राज्य पाठ तुम्हारे

पिता के द्वारा तुम्हे मिला है । उनकी आज्ञा का पालन न करने के कारण मुझे दान कर देना, जिसके लिये राजा हरिश्चंद तैयार हो गये। सुबह होने पर जैसे ही दरबार लगा राजा हरिश्चंद सिंहाषन पर बिराजमान हुये तभी महर्षि विश्वामित्र उनके सामने उपस्थित हो गये, और अपना स्वप्न में आने की बात का याद दिला राज्य को लेने कि बात की, जिसके लिये राजा हरिश्चंद सहर्ष तैयार हो गये । और वह अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर भिखारी के भेष में राज्य से बाहर जाने के लिये तैयार हुये। तब महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि यह दान जो तुमने दिया है यह तुम्हारे पिता कि बिराषत है। तुम्हारी स्वयं की नहीं है, इसके अतिरीक्त तुम्हें दक्षिणा देना होगा पांच सहस्त्र जो तुम्हें कही और से पांच दिन में व्यवस्था करना होगा, इसके लिय भी राजा हरिश्चंद तैयार होगये। और राज्य से प्रस्थान किया। बहुत दुःखों कष्टों पिड़ावों को सह- सह कर चुर हो गयें भुखे प्यासे, उनकी कोई सहायता करने वाला नहीं खड़ा हुआ, क्योंकि जो उनकी सहायता करने का प्रयाश करता वह देवताओं और महर्षि विश्वामित्र के कोप का भाजन बनता था। जिससे किसी कि हिम्मत ही नहीं हुई, की वह राजा हरिश्चंद और उनके परिवार की किसी प्रकार से सहायता कर सके, इसके अतिरिक्त रोज महर्षि विश्वामित्र अपने दक्षिणा को लेने के लिये निरंतर दबाव बनाते रहते थे। क्योंकि महर्षि विश्वामित्र नहीं चाहते थे कि यह राजा हरिश्चंद केवल सत्य और अपने बचन कि रक्षा के लिये महान अशहनिय कष्टों को सहे, वह समझते थे राजा हरिश्चंद झुक जायेगें, और अपने बचन से बिमुख हो जायेंगे। लेकिन यह नहीं हो सका राजा हरिश्चंद ने भयानक कष्टों को सहा, और अंत में कई दिनों में अयोद्धा से काशी शिव की नगरी पहुचें गये। जहां उनको कोई पहचानता नहीं था वहां एक चौराहे पर खड़े हो गये जहां दाश - दाशियां बिकते थे वहां पर वह अपने पत्नी और बच्चे को एक व्यापारी के हाथों में बेच दिया, और स्वयं को एक डोम (धैइकार) को बेच दिया। जिससे उन्हे पांच शहश्त्र स्वर्ण मुद्रायें मिली जिसे उन्होंने प्रेम से महर्षि विश्वामित्र का दक्षिणा रूप ऋण दे कर उऋण हुये। स्वयं को डोम के सम्सान घाट पर मुर्दा फुंक - फुंक कर जीवको पार्जन करने में लगा लिया। और पत्नी बच्चा उस ब्यापारी के घर की दाशी बन कर जीवको पार्जन करने लगे।

विश्वामित्र अपने साथ अपना सारा धन सामराज्य और स्त्री - पुरष, पशु, धन इत्यादि सामग्री को लेक कर अपने बनायें स्वर्ग में चले गयें और वहां उसका बिस्तार करने लगें ।

जब हिमालय के देवताओं को अपनी योजना सफल होती नजर नहीं आई महर्षि विश्वामित्र के स्वर्ग का विस्तार उनकी आंखों तिनके की तरह दुखने लगा। वह सब यह बर्दास्त नहीं कर पा रहे थे, कि उनके स्वर्ग से निस्कासित किया गया कोई महर्षि या राजा कैसे अपने लिये अन्तरिक्ष में स्वर्ग बनाकर रह सकता है? यह उनके सम्मान और साधारण जनों में उनके प्रति लोगों की आस्था भी बहुत कम होने लगी थी। और ज्यादा से ज्यादा लोग अब महर्षि विश्वामित्र के द्वारा बनाये हुये स्वर्ग में राजा त्रिशंकु के साथ रहना चाहते थे। यह सब पृथ्वी पर उपस्थित स्वर्ग के देवताओं को कदापि गवारां नहीं था, कि उनके प्रति लोगों कि आस्था कम हो, यह उन सब के अस्तित्व को लेकर बहुत बड़ा खतरा

संकेत था। और दूसरा कारण था कि पृथ्वी और चंद्रमा के मध्य में स्थित बनाये गये, महर्षि विश्वामित्र का स्वर्ग अपना सारा कार्य सौर्य उर्जा से करता था। जिसके कारण पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में सुर्य का प्रकाश भी ना मिलने से पृथ्वी ठंडी होने लगी थी। और यहां पर जीवन के लिये खतरा मंडराने लगा। यदि ऐसा ही चलता रहा कुछ हजार या लाख साल में पृथ्वी पर कोई मानव जीव जन्तु प्राणी जीवित ना बचे । और दूसरा कारण बताया गया कि चन्द्रमा का गुरुत्त्वाकर्षण आकर्षण बल कम होगया। क्योंकि उस गुरुत्वाकर्षण बल का उपयोग महर्षि विश्वामित्र नें अपने स्वर्ग को व्यवस्थित रखने में बहु ज्यादा मात्रा में करने लगे थे । जिसके कारण पृथ्वी पर उपस्थित समंदर में ज्वारभाटा के समय में परि वर्तन आने लगा। सुर्य कि गर्मि कम पड़ने के कारण समंदर का पानी वास्प बहुत कम बनता था, और जिसके कारण बारिष की मात्रा पृथ्वी पर कम होगई। और इस वजह से पृथ्वी अनाज, फल, सब्जियां की पैदावार कम होने लगी थी। लोग हिंसक होने लगे जानवरों प्राणियों को मार –मार कर उनका भोजन के रुप मे उपयोग करने लगे। जिसके कारण हिंसक दैत्यों की संख्या में इजाफा होने लगा। हर प्रकार से देवताओं के साथ सभी मानवों पर गलत प्रभाव पड़ने लगा। इन सब जानकारियों से महर्षि विश्वामित्र को परिचित कराया गया और सिफारिश की गई की वह अपने बनाये अन्तरिक्ष को नष्ट करके पृथ्वी वापस आकर बश जायें। लेकिन महर्षि विश्वामित्र ने जबाब में देवतावों को बहुत तिखा उत्तर दिया की जब देवता हमारे उपर ध्यान नहीं दिये जब हम पृथ्वि पर रहते थे, अब जब कि हम अपना सर्वस्व लगाकर बहुत आगें निकल आये है तो हमे वापिस आने कि बात करके हमे नष्ट करना चाहते है। यह कदापि संभव नहीं है हमारे लिये। यहां हमे कोई नुकसान नहीं है। आप अपनी रक्षा किजीये और मेरे से किसी प्रकार के सहयोग कि कामना ना करें।

पृथ्वि के स्वर्ग के देवतावों को जब सकारात्मक परिणाम नहीं मिला तब उन्हेंने एक बहुत बुरा दूसरा सणयंत्र रचा पहले तो देवतावों का राजा इन्द्र ने त्रीशंकु के पुत्र राजा हरिश्चंद को अपनी तरफ मिलाने कि योजना बनाई।

आगे चलकर गुप्त रुप से सिधा – सिधा राजा हरिश्चंद्र से ना मिल कर इनके परिवार अर्थात इनकी पत्नी शैब्या और पुत्र रोहताश्व को भी इसमें एकत्रित रुप से मिला जाये। जब शैब्या राजा हरिश्चंद्र की पत्नी अपने बेटे रोहताश्व के साथ जिस व्यापारी के यहां दासी थी । उसकी पत्नी बहुत दुष्ट और निक्रिष्ट स्वभाव की थी वह शैब्या से बहुत अधिक काम लेती बदले में उसे बहुत थोड़ा भोजन देती थी फिर भी सभी शारिरीक मानसिक।पिड़ाओं को सहकर शाब्या अपनी मालकिन को प्रशन्न रखने का हमेंशा प्रयाश करती रहती थी। फिर भी उसकी मालकिन बहुत नाराज रहती और तरह– तरह के उलाहने निरंतर शाब्या को दिया करती थी। यहां तक रोहताश्व से भी वह काम लेती, ऐसा ही चल रहा था, एक दिन रोहताश्व को जंगल में लकड़ीयों को लेने भेज दिया वह लकड़ी लेकर आरहा था तभी देवताएं का राजा इन्द्र उसे काटने के लिये एक सांप भेज दिया जिसने रोहताश्व को काट लिया जिसके कारण रोहताश्व की हालत बिगड़ गई, यह बात जब शैब्या को बहुत समय तक रोहताश्व लकड़ी लेकर नहीं आया। तब शाब्या उसकी तलाश में जंगल में गई जहां उसने उसे रास्ते में मृत पड़ा पया तब उसे पता चला की वह अपने प्रीय पुत्र को खो चुकी है। वह बहुत रोई बिलखी और उसे मरा हुआ मान कर उसके अंतिम संस्कार के लिये अपने गोद में लेकर नदी किनारे रात्री के समय उसी सम्शान घाट पर पहुंची जहां पर राजा हरिश्चंद्र पहरा देते थे और मुर्दा जलाने से पहले सभी मुर्दा फुकने वाले

से कर लेते थे। रात्री का समय सायं - सायं करती रात चारों तरफ जलती लाशें इधर-उधरी बीखरी थी। चारों तरफ के वायुमंडल में मांस के जलने की भयानक बदबु से भर रहा था, जहां कुत्ते भौक रहें थे वह उस स्थान को और भयानक बना रहे थे। आज भी वह राजा हरिश्चंद्र का मुर्दा फुकने वाला घाट काशी (वाराणसी) में प्रशिद्ध है। जब राजा हरिश्चंद ने देखा की शब्या को और उसके गोद में उनके बेटे रोहताश्व की लाश है, वह पहचान गये लेकिन अपने सत्य धर्म की रक्षा के लिये उन्हेंने ऐसा व्यवहार किया की दोनो अपरचित है। उन्होंने शब्या से कहा यहा किसी शरीर का दाह संस्कार करने से पहले मुझे कर देना होगा उसके बाद ही तुम कोई दाह संस्कार कर सकती हो। शब्या बिलख-बिलख रोते हुये कहा मेरे पास कुछ नहीं है शिवाय यह वस्त्र जिससे मैने अपने शरिर को धक रखा है उसमें आधा ले सकतो तुम दाह संस्कार करने के बदले में। जिसके लिये रजा हरिश्चंद्र तैयार हो गये। शैब्या अपनी साड़ी को फाड़ने के लिये हाथ बढ़ाया तभी देवतावों का राजा इन्द्र उन दोनो के मध्य प्रकट हुआ और कहा कि अब बहुत हो गया तुम जीत गये राजा हरिश्चंद सत्यवादी हो धर्मात्मा हो मै तुम्हें इस कृत्य से मुक्त करता हूं और तुम्हारे पुत्र को जीवित करता तुम सब अब हमारे साथ रहो हम तुम्हे अपने साथ रखते है।

इस तरह से हरिश्चंद्र देवतावों के साथ हो लिये।

राजा हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा और धार्मिक्ता के प्रति समर्पण से प्रशन्न हो कर महर्षि विश्वामित्र ने उनका राज्य पुनः हरिश्चंद्र को वापिस दे दिया और स्वयं समाधि में लिन होगये। त्रीशंकु राजा हरिश्चंद्र के पिता सत्यब्रत अपना सब कुछ यहां तक स्वर्ग को भी जो महर्षि विश्वामित्र ने उनके लिये बनाया था । उसे भी राजा हरिश्चमद्र को दे कर शरीर त्याग कर के परमात्मा में विलीन हो गये।इस तरह से देवतावों स्वर्ग को पृथ्वी को बचाया और महर्षि विश्वामित्र के बनाये अन्तरिक्ष में स्वर्ग को अपनी दिव्य अश्त्रों से नष्ट कर दिया।

यजुर्वेद मंत्रभाष्य

यजुर्वेद मंत्रभाष्य प्रथम अध्याय का प्रथम मंत्रः-

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिए मनुष्यों को ईश्वर की अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए इसी बात का उपदेश किया गया है।

ओ३म् इषेत्वर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वन्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्षमा मा वस्तेनऽईशत माघँसो ध्रुवाऽअस्मिन गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि।।1।।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती इस मंत्र का भाष्य करते हुये कहते है।

पदार्थान्वयभाषाः- हे मनुष्य लोगों ! जो (सविता) सब जगत् कि उत्तपत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त (देवः) सब सुखो को देने और सभी प्रकार की विद्यायों को प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है सो (वः) तुम हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियायों को सिद्ध करने वाले स्पर्शगुणवाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियां (स्थ) है उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्म्मणे) करने योग्य सर्वपकारक यज्ञादि कर्मों के लिये (पार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करें। हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (उर्जे) पराक्रम अर्थात उत्तम रस की प्राप्ती के लिए (भागम्) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुणों वाले और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों को देने वाले आपका सब प्रकार से आश्रय करते है। हे मित्र लोगों ! तुम भी ऐसे हो कर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवन् जगदीश्वर हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ती के लिए (प्रजावतीः) जिनके बहुत संतान हैं तथा जो (अनमिवाः) व्याधि और (अयक्ष्माः) जिनमें राज यक्ष्माआदि रोग नहीं है वे (अध्याः) जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य है जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं है कि जो इन्द्रियों या पृथिवी आदि लोक है उन को सदैव (प्रार्पयतु) नियत किजीये । हे जगदिश्वर!आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिए कोइ (अघंशसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्तपन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेंश्वर और सर्वोपकारक धर्म का सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ-घोड़े और हथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए जिससे इन पदार्थों को हरने की पुर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्म्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समिप (बह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों ।

भावार्थः- विद्वान मनुष्यों को सदैव परमेश्वर और धर्म युक्त पुरुषार्थ के आश्रय से ऋग्वेद को पढ़ के गुण और गुणी का ज्ञान ठीक-ठीक जानकर सब पदार्थों के सम्प्रयोग से पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए अत्युत्तम क्रियायों से युक्त होना चाहिए कि जिससे परमेंश्वर की कृपापूर्वक सब मनुष्यों को सुख और ऐश्वर्य की बृद्धि निरन्तर होती रहे। सब लोगों को चाहिए कि अच्छे-अच्छे कामों से प्रजा की रक्षा और उत्तम-उत्तम गुणों से पुत्रादि की शिक्षा सदैव करें कि जिससे प्रबल रोग बिध्न और चोरों का आभाव हो कर प्रजा और पुत्र आदि सब सुखों को प्राप्त हों यही श्रेष्ठ काम सब सुखों की खान है। हे मनुष्य

लोगों ! आओ अपने मिलकर जिसने इस संसार में आश्चर्यरूप पदार्थ रचे है उस जगदिश्वर के लिए सदैव धन्यवाद देवें। वही परम दयालु ईश्वर अपनी कृपा से उक्त कामों को करते हुए मनुष्यों की सदैव रक्षा करता है।

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का प्रथम मंत्र इसमें सर्व प्रथम परमेंश्वर के विषय में उपदेश स्वयं परमेंश्वर के द्वारा किया जा रहा है। जैसा कि स्वामी दयान्नद जी ने बताया अब हम बिस्तार से समझते की वास्तव में मंत्र का भाव क्या-क्या है? इस प्रथम मंत्र में परमेंश्वर के सच्चे स्वरूप को अभिव्यक्त किया जा रहा है। इस मंत्र के ऋषि परमश्रेष्ठ प्रजापती परमेंश्वर ही है और इस मंत्र के देवता सविता अर्थात सब का गुरु परमेंश्वर ही हैं। इस तरह से यह मंत्र सर्वश्रेष्ठ परमेंश्वर के साक्षात्कार का मंत्र है जिसका साक्षात्कार स्वयं परमेंश्वर स्वयं कर रहा है यहां परमेंश्वर स्वयं कर्ता और स्वयं कर्म भी है। इस मंत्र के द्वारा स्वयं परमेंश्वर अपना खुद का साक्षात्कार कर रहा है या स्वयं की अपनी ही तस्विर बना रहा है । परम गुरु अपने साक्षात्कार के बारें में उसके साधन के बारे में अपने शिष्यों मनुष्यों को उपदेश दे रहा है।

परमेंश्वर का मुख्य निज नाम ओ३म बताया है यह ओ३म अकार उकार मकार तीन तत्त्वों से मिल कर बना है। जिसको सत, रज, तम के नाम से जानते है पौराणिक भाषा में उसे ही ब्रह्मा विष्णु महेश के नाम से जानते है। आधुनिक भाषा में इलेक्ट्रान, न्युट्रान, पोट्रान के रुप में जानते है। इनके मध्य में विद्यमान एक विशेष तत्त्व है जिसे वैज्ञानिक गाड पार्टिकल के नाम से जानते है, जो सबको को संयुक्त करता है।

इस मंत्र में श्रृष्टी के विज्ञान के प्रथम अवतरण का आख्यान किया जारहा है जो सब का मुल उर्जा मय परमेंश्वर है वह सब में गुप्त रुप से विद्यमावन है। परमेंश्वर, जीव, प्रकृति अनादिकाल से है। परमेश्वर ने स्वयं को ही स्मरण कर रहा है यही इस विषय का मुख्य विषय है। सर्व प्रथम वह अपने नाम का स्मरण करता है फिर अपने रुप संस्कार का वर्णन विस्तार से करता है। इस तरह से मंत्र में तिन विधाओं का उपदेश है पहला ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्मज्ञान, ईश्वर, जीव, प्रकृती के रूप में विद्यमान है। इन तीनों के मिलने से ही परमाणु बनता है अर्थात यह मंत्र परमाणु विज्ञान का मंत्र है। इसको और सुन्दर तरिके से अथर्वेद का प्रथम मंत्र व्यक्त करता है।

ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।

अर्थातः- यह एक परम तत्व तीन में विभक्त होता है पुनः सात पुनः एक्किस तत्वों विभक्त हो कर समग्र श्रृष्टी में व्याप्त हो रहा है वह मुल तत्व परमेंश्वर आज ही हम सब को प्राप्त हो।

यजुर्वेद का प्रथम मंत्र में ज्ञान, कर्म, उपाषना से भिन्न मंत्र नहीं है, सर्व प्रथम मंत्र ईषे से से सुरु होता है जिसका अर्थ करते हुए महर्षि स्वामी दयानन्द जी कहते है कि अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ और जो विज्ञान आदि कि इच्छा वाले पुरुष है उनके लिये है कि वह यह जाने की जो उर्जा का मुल अन्न है। (जिससे शरिर का निर्वाण होता है। और इसी अन्न के माध्यम से आत्मा नई शरीर को भी ग्रहण करती है। क्योकि जब शरीर से आत्मा निकलती है तो यह आकाश व्याप्त हो जाती है और बारिष के साथ जमिन पर पुनः लौटती है उसके बाद अपने कर्मानुसार जिस योनी को उसे ग्रहण करना होता है परमेंश्वर की व्यवस्था के अनुसार भविष्य के अपने योनी के आहार रुप साग, पात, अन्न

में वह आत्मा प्रवेश कर जाती है जिसको योग्य नर ,मादा , स्त्री पुरुष ग्रहण करते है जिससे विर्य बनता है पुनः उस विर्य और नवजात जीव का शरिर बनता है।) क्योंकि अन्न आदि का अर्थ है जो प्राकृतिक रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थ है जिसका सेवन किसी ना किसी प्रकार से सभी जीव करते है। अन्न, फल, फुल, मसाले, वनस्पत्तियां, औषधियां इत्यादि। इसका यदि वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण किया जाये तो इन सब प्राकृतिक पदार्थों के सेवन से लग-भग सभी प्राणियों को मानव समेत जीवन की भरपुर शक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि बिना इनके सेवन के मानव मानव ना हो कर वह बिना वुद्धि का जानवर पशु के सामान होगा। यहां विशेष रूप से अन्न आदि का प्रयोग केवल मानव ही करता है, क्योंकि मानव ही है जो इसका उचित उपयोग करके स्वयं को सभी प्रणियों में सबसे अधिक बुद्धिमान बनाता है । इसी वजह से वह किसी कार्य को वह सोच समझ करने में समर्थ होता है। कहा भी गया है कि जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन, अर्थात मानव मन से चिन्तन करने के कारण बनता है और मन का निर्वाण अन्न से बताया जारहा है। अन्न हमारे शरीर के लिए परम आवश्यक तत्व है क्योंकि हमारा शरीर अन्न आदि पदार्थों का रासायनिक वैज्ञानिक प्रयोग करके ही अपने आप को हिष्ट, पुष्ट, तन्दरुस्त, स्वस्थ्य और स्वयं की निरन्तर मरम्मत करता रहता है। यह अन्न मानव शरीर के लिये बहुत सहज और सुपाच्य है। अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ विज्ञान आदि के इच्छा वाले पुरुष जैसा कि स्वामी दयानन्द जी कह रहे है इसका अर्थ काफी गुढ़ सार गर्भित और व्यापक है। हमने बहुत सुक्ष्म जानकारी अन्न के विषय में प्राप्त की उसके अतिरिक्त उत्तम-उत्तम पदार्थ और विज्ञान विषेश रूप से उपयोग करने पर निर्भर करता है। अपनी इच्छा की पुर्ती के लिए इस उर्जा का विषेश प्रकार से संयुक्त करके कुछ विषिष्ट परिणाम प्राप्त कर सकते है। क्योंकि जो भी अन्न हम खाते है उससे सर्व प्रथम रस बनता है और सातवां रुप उसका विर्य बनता है। जिससे मानव बनता है अर्थात हम भविष्य के मानव को अपनी इच्छा के अनुकुल बना सकते है, यह अन्न का वैज्ञानिक पहलु है। यह विर्य ही है जो मानव को ताकत वर बनाता है और अपनी संतती को आगे बढ़ाने में सहायक बनता है। मानव विर्य पर ही उसकी संतती निर्भर करती है भविष्य के मानव की सारी संभावनाए मानव विर्य में ही समाहित होता है। इसके दुर्पयोग के कारण ही मानव को लाइलाज बिमारीयों का शीकार होना पड़ता है ऐड्स इत्यादि। विर्य रक्षा जिसको वैदिक भाषा में ब्रह्मचर्य के नाम से जानते है। अर्थात जो ब्रह्म के समान या ब्रह्म के साथ बिचरण करता है चलता है। यहां मानव मन कि इच्छा पर विषेश जोर दिया गया है। क्योंकि यहां हमारी इच्छा का बहुत अधिक महत्त्व है ब्रह्मचर्य हमारी इच्छा पर निर्भर करता है जिसके लिये काफी मसक्कत करनी पड़ती है यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि अष्टांङ्गयोग का जीवन में उपयोग करना पड़ता है, जैसा प्रायः वैदिक ऋषियों ने अपने जीवन में किया है, और यह एक गुढ़ साधना विधी है। मंत्र आगे कहता है कि अपनी विषेश कामन की सिद्धी के लिए जो इस उर्जा को संचित करता है वहीं उर्जावान शक्ती सामर्थवान बनता है, जिससे पराक्रम उत्तम रस की प्राप्ती है वह सबसे श्रेष्ट रस जिसको परम रस परमेश्वर कहते है।

इस मंत्र का अब तक का सार रूप है वह तीन प्रकार सामर्थ प्राप्त होता है पहला जो सबसे बहुमुल्य है हमारी शरीर हर प्रकार से मन वचन कर्म शक्तीशाली बनती है, जो किसी भी जटिल से जटिल कार्य को सिद्ध करने में सफलता को प्राप्त कर लेती है। दूसरी बात जो इस मंत्र में कही जा रही है कि इसमें एक वैज्ञानिक उर्जा को बढ़ाने घटाने के साथ उसके उपयोग से दुर्लभ लक्ष्य जीवन में सिद्ध करने किगई है। तीसरी बात इस जो इस मंत्र कही जा रही है कि इससे हर प्रकार के ऐश्वर्य को उपलब्ध कराने बाले परमेंश्वर के प्राप्त करने का मार्ग प्रसस्त होता है। जो भी व्यक्ति परमेंश्वर रूप

सभी तत्वों का मूल रुप है उर्जा को समझता है और सही उपयोग करता है वही हर प्रकार के ऐश्वर्य से स्वयं को सम्पन्न करता है। आगे मंत्र कहता है कि जो सब क्रियायों को सिद्ध करने वाली हमारी इन्द्रियां है, जो दो प्रकार की है कर्म इन्द्री और ज्ञान इन्द्री व मन वह सभी इसी ईश्वर रूपी उर्जा से चलती है। इसी के कारण यह अपने सभी कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ होती है। और वह परमेंश्वर इन सब के मध्य में विद्यमानन हो कर इनके सभी कार्यो का साक्षात्कार करता है, और कर्म के आधार पर ही उन्हें फल की प्राप्ती कराता है। यह तुम हम और सभी मित्रों में भी उर्जा के रूप में विद्यमान है, उसको ऐसा जानो और मानो जो सविता के रूप में सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी सब जगत का उत्तपत्ती और पालन पोषण बिनाश करता है। सब का रचैयता उसको सब लोग अपने अनुभव बोध वुद्धी से प्राप्त होकर हर समय संयुक्त है। इससे अतिउत्तम श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है जो सबसे बहुमूल्य हम सब की धरोर है। परमेंश्वर उपदेश कर रहा है कि हे मनुष्यों इस उर्जा को जानो और इसका प्रमुख श्रोत इस उर्जा का मुल परमेंश्वर मै हूं मुझे जानो और मेरे साथ रह कर अपने जीवन को परम ऐश्वर्यशाली बनाओ, और मानवता के कल्याण के लिए उर्जा का सदुपयोग करो। जिससे तुम सब हमारे साथ हर प्रकार की उन्नती करके हर प्रकार की सुख समृद्धि युक्त हो कर हर प्रकार से अपने धन की रक्षा कर सको, जिससे तुम लोग ऐश्वर्य की प्राप्ती करके अपने मानव जीवन के सफलतम शिषर पर पहुंचा कर इस ब्रह्माण्ड के प्रती अपने कर्तव्य को पूर्ण करके, इसके उपकारों से उऋण हो कर अपनी सतगति करो और अपने परिवार, समाज, प्रजा के साथ इस भवसागर से जो दुःखों का मुल श्रोत है इससे तिर अर्थात पार हो जावो।

आगे मंत्र कहता है कि परमेंश्वर की कृपा से हम सब लोगों में दुःख देने वाला कोई पापी अथवा चोर डाकु दुष्ट प्रकृती का मनुष्य उत्पन्न ना हो, और जो मनुष्य सर्वोपकारक परमेंश्वर के और अपने धर्म का अच्छी प्रकार से सेवन करने वाले है उनके गौ-घोड़े और हाथी अर्थात पशु धन लक्ष्मी प्रजा की परमेंश्वर निरन्तर रक्षा करता है जिससे इन पदार्थों और संसाधनो को हरने लुटने वाला कोई भी मनुष्य कभी समर्थ ना हो, इस प्रकार से धार्मिक पृथिवी आदि पदार्थो की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समिप बहुत से उत्तम-उत्तम वस्तुए हमेशा निश्चल सुख को देने का कारण बने अस्तु।

एक बार घूमते-घूमते कालिदास बाजार गये | वहाँ एक महिला बैठी मिली,| उसके पास एक मटका था और कुछ प्यालियाँ पड़ी थी | कालिदास ने उस महिला से पूछा क्या बेच रही हो ? महिला ने जवाब दिया " महाराज ! मैं पाप बेचती हूँ | " कालिदास ने आश्चर्यचकित होकर पूछा : पाप और मटके में ? महिला बोली : हाँ , महाराज ! मटके में पाप है| " कालिदास : कौन-सा पाप है? "महिला आठ पाप इस मटके में है | मैं चिल्लाकर कहती हूँ की मैं पाप बेचती हूँ पाप ...और लोग पैसे देकर पाप ले जाते है| अब महाकवि कालिदास को और आश्चर्य हुआ पैसे देकर लोग पाप ले जाते है ? महिला : हाँ , महाराज ! पैसे से खरीदकर लोग पाप ले जाते है | " कालिदास : इस मटके में आठ पाप कौन-कौन से है ? महिला : क्रोध ,बुद्धिनाश , यश का नाश , स्त्री एवं बच्चों के साथ अत्याचार और अन्याय , चोरी , असत्य आदि दुराचार , पुण्य का नाश , और स्वास्थ्य का नाश ... ऐसे आठ प्रकार के पाप इस घड़े में है | कालिदास को कौतुहल हुआ की यह तो बड़ी विचित्र बात है | किसी भी शास्त्र में नहीं आया है की मटके में आठ प्रकार के पाप होते है | वे बोले : आखिरकार इसमें क्या है ? " महिला : महाराज ! इसमें शराब है शराब ! कालिदास महिला की कुशलता पर प्रसन्न होकर बोले : " तुझे धन्यवाद है !

शराब में आठ प्रकार के पाप है यह तू जानती है और 'मैं पाप बेचती हूँ ' ऐसा कहकर बेचती है फिर भी लोग ले जाते है |

यजुर्वेद भाष्य प्रथम अध्याय का द्वितिय मंत्र

यजुर्वेद के द्वितिय मंत्र में मानव जीवन का सबसे पवित्र कार्य यज्ञ किस प्रकार के क्रिया से होता इस विषय का उपदेश किया गया है।

ओ३म् वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोऽसि विश्वाधाऽअसि परमेण धाम्ना दँहस्व मा ह्वार्मा यज्ञपतिह्वार्षित्।।2।।

महर्षि स्वामिदयान्नद भाष्यः-

पदार्थः- हे विद्यायुक्त मनुष्य! तू जो (वसौः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है। (द्यौः) जो विज्ञान के प्रकाश हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है। जो (पृथिवी) वायु के साथ देश देशान्तर में फैलने वाला (असि) है। जो (मातरश्विनः) वायु को (धर्मः) शुद्ध करने वाला (असि) है। जो (विश्वधाः) संसार का धारण करने वाला (असि) है। तथा जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (दँह्स्व) सुख को बढ़ानेवाला है। इस यज्ञ का (मा) मत (ह्वाः) त्याग कर। तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करने वाला यज्ञमान भी उस पवित्र कार्य यज्ञ का (मा) ना (ह्वार्षित) त्याग करें। धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तिन प्रकार का होता है अर्थात एक जो इस लोक परलोक के सुख के लिए विद्या, ज्ञान और धर्म के सेवन से बृद्ध अर्थात बड़े-बड़े विद्वान है उनका सत्कार करना। दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों का मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभ गुण विद्या सुख धर्म और सत्य का नित्य दान करना।

भावार्थः- मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं उससे पवित्रता का प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायु रूपी प्राण के तुल्य राजनिती, प्रताप, सबकी रक्षा, इस लोक और परलोक में सुख की बृद्धि, परस्पर कोमलता से वर्त्तना और कुटिलता का त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते है इसलिये सब मनुष्यों को परोपकार तथा अपने सुख के लिए विद्धा और पुरुषार्थ के साथ प्रिती पुर्वक यज्ञ का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये।

जैसा कि स्वामी जी कह रहे है इस मंत्र का अर्थ बहुत ही सरल है यज्ञ अर्थात वह सभी कार्य जिससे सम्पूर्ण मानव, जीव, जन्तु, पृथिवी, ब्रह्माण्ड के कल्याण के लिये जो कार्य किया जाता वह यज्ञ की श्रेणी में आता है। वसो पवित्र मसी अर्थात वह पर्मेश्वर जो हम सब में शुद्ध निर्मल पवित्र भाव से वसा हुआ है और यह श्रृष्टी का सबसे श्रेष्ठ कार्य यज्ञ रूप कर रहा है और वह उपदेश देते हुए कह रहा है कि तुम सब भी इस पवित्र कार्य का कभी त्याग मत करो। क्योंकि यह यज्ञ रूपी कार्य जो पर्मेश्वर के द्वारा निरंतर हो रहा है यही मुल कारण है पवित्रता और शुद्धता के लिए मानव के साथ सभी प्रकार के जीव, जन्तु पृथिवी अंतरिक्ष और ब्रह्माण्ड के लिए है। यह यज्ञ ही सबसे श्रेष्ठ कार्य है।

यहां कहा जा रहा है कि यह यज्ञ रूपी कार्य बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से संपादित पर्मेश्वर के द्वारा निरंतर किया जारहा है उदाहरण के लिए सूर्य कि किरणों में यह व्याप्त हो कर जीवन का संचार इस पृथिवी पर कर रहा है यहां अलंकार का उपयोग हो रहा है लौकिक रूप से सूर्य ही सबसे बड़ा जीवन का श्रोत इस पृथिवी पर है और उसकी किरणें इस पृथिवी पर भौतिक रूप से अंधकार को दूर करने वाला है और प्रकाश का विस्तार करके जीवन को शक्तिवान बना रहा है। जो उर्जा का प्रमुख श्रोत है इस पृथिवी के साथ इस पर रहने वाले सभी जल ,थल, वायु में रहने वाले प्राणियों के लिए यह एक वैज्ञानिक रूप से सिद्ध सत्य है। आगे मंत्र कहता है कि वह शुद्ध पवित्र कार्य रूप यज्ञ करने वाला पर्मेश्वर इस सूर्य कि किरणों में व्याप्त है अर्थात सूर्य और उसकी किरणों को सामर्थ उस परमेश्वर के द्वारा मिल रहा है। यह तो एक पक्ष हो गया जो भौतिक वैज्ञानिक पक्ष है इसका एक दैविक और एक आध्यत्मिक पक्ष भी है। दैविक पक्ष यह है कि कुल वैदिक तैतीस देवता माने गये है ग्यारह रुद्र बारह आदित्य आठ वसु दो अश्वनी कुमार माने गये है। यह अश्वनी कुमार सूर्य की दो मुख्य किरणें ही है जिन्हें मित्र और वरुण के रूप में जाना जाता है। एक ठण्डी विद्युत एक गर्म विद्युत या एक सुखी विद्युत प्रणालि जिसका उपयोग बैटरी के रूप में किया जाता है दूसरा गिली विद्युत जिसका उपयोग टारबाईन को चलाने के लिये किया जाता है। इस मंत्र में जो आध्यत्मिक पहलु है वह जैसे बाहर जगत में सूर्य कार्य करता है जो ज्वलनसिल है गर्म है एक ए.सी. विद्युत रूप ही है जिससे सम्पूर्ण पृथिवी समेत सभी प्राणियों का इस जगत में कार्य होता है। जिससे हर प्रकार का अज्ञान अन्धकार दूर होता है। इसी प्रका से आन्तरिक जगत का कार्य भी हो रहा है और आन्तरिक जगत का सूर्य रूप जीवात्मा है जिसकी किरणें सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो कर समग्र शरीर में जीवन का संचार करती है और आनंतरिक रुप से शरीर को शक्ती देकर शरीर रूप मसीन को स्वचालित रखता है यह भी एक प्रकार कि विद्युत उर्जा रुप ही है जो ठंडी है डि.सी. रुप है जिसकी क्षमता सिमीत है। हर प्राणी के लिए निश्चित प्राण दिया गया है और उसको उतने ही प्राण उर्जा में अपने जीवन के परम लक्ष्य को उपलब्ध कर लेना है और वह परम लक्ष्य है परम सत्य पर्मेश्वर रूपी उर्जा का साक्षात्कार करना है। यह जो बाहरी उर्जा है सुर्य की वह भले हि बहुत अधिक लगती है लेकिन यह भी एक मायने में सिमित ही है सूर्य का भी अन्त होना है। क्योंकि यह दोनो दो किनारे उस पर्मेश्वर रूप उर्जा के जबकि पर्मेश्वर इन दोनो के मध्य में तटस्थ है स्थित एक चित सत्तचित्तानन्द रूप है। इस तरह से यह यज्ञ रूप परम उर्जा का प्रमुख श्रोत पर्मेश्वर सबके मध्य में विद्यमान है।

आगे मंत्र कहता है कि वह वायु को शुद्ध करता है , वायु शरीर के अन्दर भी है और शरीर के बाहर भी है और वायु अन्दर बाहर समान रूप से गति करती है। वायु सूर्य के प्रकाश से शुद्ध होती है, क्योकि वायु जब ठण्डी होती है तो भारी होती है और पृथिवी के सतह पर स्थित हो कर बहती है जब वह गर्म होती है तो वह आकाश में अधिक बिचरण करनें सक्षम होती है। इस तरह से वायु जब सुर्य के प्रकाश के सम्पर्क में आती है तो शुद्ध और हल्की होती है। ठीक इसी प्रकार से अपने अन्दर जब शरीर में मन उर्जावान रहता है विर्य को धारण करता है और वुद्धी को विकसित करता है तो उसको अन्दर प्राण रूप वायु हल्के होते और उची उड़ान भरने में सक्षम होती है। लेकिन जब शरीर में उर्जा की कमी रहती है तो शरीर के अन्दर रहने वाला मन कमजोर रहता है प्राण कमजोर रहते है वह शरीर रूपी पृथिवी से ही चिपके रहते जिकसे कारण वह दुःख ही अनुभव करने मे समर्थ होते है। इसके विपरीत जब उर्जा का भंडार शरीर के अन्दर रहता है तब अन्तर जगत में व्याप्त सूर्य रूप आत्मा का साक्षात्कार करने में मानव सफल होते है और हमेशा मानव उसके

सानिध्य में रहता है। जिससे उसे सत्य का ज्ञान होता है और वह सत्य को व्यक्त करने में भी सफल होता है और लोगों के लिए वह एक सूर्य के समान होता है जो लोगों के जीवन में से अज्ञान अंधकार दूर करके हर प्रकार से लोगों को शुद्ध और पवित्र करता है। वह सत्य धर्म क्या है? यह जानता है और वह यह भी जानता है जो विश्वधा है अर्थात जो विश्व को धारण करने वाला है। और उसका परम स्थान भी उसे ज्ञान होता है कि वह उसकी आत्मा में विद्यमान आत्मा का ही शुद्ध रूप है। और वह ही सभी प्रकार के सुख को बढ़ाने का मुल कारण है। इस सत्य ज्ञान रूपी धर्म यज्ञ का जो निरंतर हो रहा है इसका कभी भी त्याग मत किजीये। इसके साथ जो इस शुद्ध और पवित्र कार्य करने वाला तुम्हारा यज्ञमान है अर्थात इस पवित्र यज्ञ को कर के यज्ञ की रक्षा करता है वह भी इसका कभी त्याग ना करें।

वेद का प्रत्येक मंत्र एक दूसरे से जुणे है जैसा कि पहला मंत्र पर्मेश्वर की भक्ति और श्रद्धा के साथ ज्ञान का अर्जन और यह जानना की हर वस्तु उर्जा से बनी है और उर्जा ही है और इस सब का मुल पर्मेश्वर है यह एक विशेष और सर्व श्रेष्ठ ज्ञान है। इसका अनुभव वैज्ञानिक प्रयोग और उपयोग कर के साक्षात्कार कर के सिद्ध करें, सब से पहले स्वयं का कल्याण फिर अपने परिवार, समाज, गांव, देश, पशु, पक्षी, संसार को लाभ पहुचाने कि बात की है। यह हमारी वुद्धि पर निर्भर करता है कि हम किस प्रकार से उर्जा का प्रयोग करते है। एक भौतिक उर्जा, दूसरा दैविक उर्जा, तीसरा आध्यत्मिक उर्जा इन्ही उर्जाओं के शंश्लेषण से ही समग्र श्रृष्टि का निर्वाण हो रहा है। जैसा कि कहा गया है कि वुद्धि यश्य बलम्तस्य। वुद्धि का प्रयोग करके स्वयं को ताकत वर बना कर और लोगों को भी हर प्रकार से समृद्ध करने में सहायक बनने की बात कि जा रही है। अपने जीवन में मत्रों को अस्थान दिजीये जैसा कि कहा जारहा है इस दूसरे मंत्र में यज्ञ के रुप में पर्मेश्वर के कृत्य को करने के लिये इस जगत में सब कुछ जो भी शुद्ध और पवित्र कार्य है वह यज्ञ ही है। स्वयं को समृद्ध करना भी एक यज्ञ है। परिवार को सुन्दर संस्कार देना उनको अच्छी शिक्षा देना सत्य ज्ञान देना भी यज्ञ है। समाज में सत्य का प्रचार करना ज्ञान का दान देना भी एक यज्ञ ही है। यह सत्य ज्ञान कहां है ईश्वर के सानिदध्य से वेद मंत्रों के स्वाध्य चिन्तन से प्राप्त होगा। इसमें बतायें गये पर्मेश्वर के विविध प्रकार के शिक्षाओं को ग्रहण करने से सिद्ध होगा। हमारे समाज में बहुत प्रकार के अज्ञान का प्रचार करके बहुत मजबुत दिवारे बना दी गइ है।आदमी-आदमी के मध्य में, जबकी यह सब झुठ असत्य के आधार पर बनाया गया है। सत्य के नाम पर धर्म के नाम पर और बहुत प्रकार के आडम्बर पूर्ण ऋति, ऋवाज सम्पूर्ण मानवता की हत्या के लिये यह सब किया जा रहा है। क्योंकि सत्य ज्ञान की कमी पहला कारण है, दूसरा कारण लोगों का क्षुद्र स्वार्थ हर कृत्य के पिछे छुपा है। तिसरा कारण है कि लोग अत्यधिक कमजोर किस्म के मानसिक गुलाम प्रकृति है जो बंधे- बधांये मार्ग का अनुसरण करने में ज्यादा सहज स्वयं पाते है। यह जानते हुए भी कि जो कृत्य वह कर रहें है वहअसत्य है फिर भी अज्ञान पूर्ण कृत्य को निरन्तर बढ़ावा दे रहे है। चौथा कारण आडम्बर पूर्ण दिखावा करके लोकेष्णा, वित्तएषणा, जीजिवेषणा, पुत्रएषणा आदि इच्छाओं की पुर्ति के लिए एन केन प्रकारेण स्वयं को आर्थिक रूप से समृद्ध करना ही सत्य, ज्ञान ,धर्म का मुल मानते है। पांचावा मुल कारण है कि बड़े-बड़े देश बहुत अधिक धन को खर्च करके अज्ञान, असत्य, अधर्म को ही सत्य सिद्ध करने के लिए समय शक्ति सामर्थ अपनी जनता का सोशण करने में रुची ले रहे है।

जिसके कारण ही यह साक्षात नरक रूप शिवाय दुःख के और कुछ दिखाई ही नहीं देता है यहां पर विद्वानों को तभी तो कहते है कि सर्वे विवेकिनः संसार दुःखः।

रामकृष्ण परमहंस को दक्षिणेश्वर में पुजारी की नौकरी मिली। बीस रुपये वेतन तय किया गया जो उस समय के लिए पर्याप्त था। लेकिन पंद्रह दिन ही बीते थे कि मंदिर कमेटी के सामने उनकी पेशी हो गई और कैफियत देने के लिए कहा गया। दरअसल एक के बाद एक अनेक शिकायतें उनके विरुद्ध कमेटी तक पहुंची थीं। किसी ने कहा कि यह कैसा पुजारी है जो खुद चखकर भगवान को भोग लगाता है। फूल सूंघ कर भगवान के चरणों में अर्पित करता है। पूजा के इस ढंग पर कमेटी के सदस्यों को बहुत आश्चर्य हुआ था। जब रामकृष्ण उनके पास पहुंचे तो एक सदस्य ने पूछा-यह कहां तक सच है कि तुम फूल सूंघ कर देवता पर चढ़ाते हो? रामकृष्ण परमहंस ने सहज भाव से जवाब दिया- मैं बिना सूंघे भगवान पर फूल क्यों चढ़ाऊं? पहले देख लेता हूं कि उस फूल से कुछ सुगंध भी आ रही है या नहीं? फिर दूसरी शिकायत रखी गई- सुनने में आया है कि भगवान को भोग लगाने से पहले खुद अपना भोग लगा लेते हो? रामकृष्ण ने फिर उसी भाव से जवाब दिया- मैं अपना भोग तो नहीं लगाता पर मुझे अपनी मां की याद है कि वे भी ऐसा ही करती थीं। जब कोई चीज बनाती थीं तो चख कर देख लेती थीं और तब मुझे खाने को देती थीं। मैं भी चखकर देखता हूं। पता नहीं जो चीज किसी भक्त ने भोग के लिए लाकर रखी है या मैंने बनाई है वह भगवान को देने योग्य है या नहीं। यह सुनकर कमेटी के सदस्य निरुत्तर हो गए।

यजुर्वेद प्रथम अध्याय के तृतीय मंत्रभाष्यः-

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।

देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।। ३।।

यज्ञ कैसे किया जाता है और कैसे सुख देता है इस विसय का उपदेश इस मंत्र में दिया गया है।

पदार्थः- जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार को धारण करने वाला और (पवित्रम्) शुद्धिकरने वाला कर्म(असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख को देने वाला (असि) है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (सबिता) वसु आदि तैतिस देवों कि उत्तपत्ति करने वाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे। हे जगदिश्वर! आप हम लोगों से सेवित (वसोः) यज्ञ है उस (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त वेद के विज्ञान (शतधारेण) बहुत विद्यायों का धारण करनेवाले वेद और (सुप्वा) अच्छि प्रकार पवित्र करने वाली यज्ञ से हम लोगों को पवित्र किजीये। हे विद्वान पुरुष अथवा जानने कि इच्छा वाले मनुष्य ! तू (काम्) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन- कौन वाणी के अभिप्राय को (अधृक्ष) अपने मन पूरण करना अथवा चाहता है।

भावार्थः- जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का सेवन करके पवित्र होते है उन्ही को जगदीश्वर बहुत सा ज्ञान देकर अनेक प्रकार के सुख देता है। परन्तु जो लोग ऐसी क्रियायों को करने वाले वा परोपकारी होते है वे ही सुख को प्राप्त करते हैं आलस्य करने वाले कभी नहीं । इन मंत्र में (कामधुक्षः) इन पदों से वाण के विषय में प्रश्न है।

यह यज्ञ एक गम्भिर विषय है जिसका बहुत विस्तार है, और यह एक शुद्धि करने वाला कर्म मानव के लिए अनिवार्य विषय में से एक है। इस यज्ञ के द्वार जो शुद्धि का मुल कारण है जो मानव के द्वारा किया जाने वाला कर्म है इसके द्वारा असंख्यात संसार को धारण किया जाता है। अर्थात मानव के संसार से अतिरिक्त भी जितनी योनियों के संसार है वह सब भी इस यज्ञ के द्वारा धारण किये जाते है। इस यज्ञ को करने वाला मानव है इससे होने वाले फायदा और नुकसान के लिए मानव जीम्मेदार है। जैसा कि मंत्र कह रहा है, कि यह यज्ञ असंख्य संसार के साथ असंख्य प्रकार के ब्रह्माण्डों को भी धारण करने वाला है और ब्रह्माण्डों को भी शुद्ध करने का निमित्त कारण के साथ मानव को बहुत प्रकार के सुखों को देने वाला है। इस यज्ञ को स्वयं प्रकाशस्वरूप तैतीस देवों की उत्तपत्ति करने वाले परमेश्वर पवित्र करें। मतलब परमेश्वर के निश्वास से निकलने वाले बहुत प्रकार की विद्यायों को धारण करने वाले वेद के विज्ञान उसके दिशा निर्देसन में किया जाने वाला यज्ञ ही समग्र संसार और असंख्यात ब्रह्माण्ड के लिये कल्याण कारक सिद्ध होगा। अर्थात वेद में विदित विधिवत मंत्रों के साथ यह यज्ञ जब अच्छि तरह से मानव द्वारा संपादित किया जाता है तब संपूर्ण मानवता के साथ और भी असंख्यात संसार पवित्र होते है। इस मंत्र में ऐसी कामना भी परमेश्वर कि गई है कि वह हमारी इस यज्ञ रूपी पवित्र कर्म को निर्मल, निर्दोष और निस्पाप करें। और मंत्र के अंतिम हिस्से से एक प्रश्न भी करता है कि सम्पूर्ण मानव जाती के विद्वान परुषो में जो विद्वान पुरुष ज्ञान को प्राप्त की शुभाकांक्षा रखते है कि उन्हें यह निश्चित करना होगा कि उन्हें कौन-कौन से विषय का ज्ञान प्राप्त करके उसमें महारत हासिल करना है। इसके पिछे एक सरल कारण है कि मानव का जीवन छोटा है वह हर विषय का ज्ञान एक जीवन में नहीं प्राप्त कर सकता है। उसे एक निश्चित लक्ष्य लेकर जीवन में आगे बढ़ना होगा, क्योकि वेदों में असंख्य विषयों का शुद्ध और मुल ज्ञान भरा है। और यदि मानव समझदार वुद्धिमान नहीं होगा तो वह गैर जिम्मेदारना रवैया के कारण इन असंख्यात संसार के साथ ब्रह्माण्ड के अन्त का भी कारण बन सकता है।

इस मंत्र में कई एक बातों पर एक साथ फ्रकाश डाला जा रहा है।

1 – यह यज्ञ असंख्यात संसार का धारण करने वाल, और शुद्धि करने वाला कर्म है।

2 - यज्ञ अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला और शुद्धि का निमित्त सुख देने वाला है।

3 – उस यज्ञ को स्वयं प्रकाशस्वरूप वसु आदि तैतिस देवों की उत्तपत्ति करने वाला परमेंश्वर पवित्र करें।

4 – यह यज्ञ हम लोगों से जो सेवित है उसका मुख्य आधार वेद के विज्ञान जो शुद्धि के निमित्त बहुत प्रकार कि विद्यायों को धारण करने वाले और अच्छि प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ हमलोगों को पवित्र करें।

5 – हे विद्वान पुरुष अथवा जानने कि इच्छा करने वाले मनुष्य ! तु वेद की वाणी से कौन–कौन वाणी को अपने मन में पुरण करना अथवा जानना चाहता है।

इस यज्ञ कि महिमा इस मंत्र है।

प्रथम यह यज्ञ असंख्यात संसार को धारण कर रहा है (जैसा कि कहा गया है कि यज्ञस्य भुवनष्य नाभी) अर्थात इस विश्व ब्रह्माण्ड का मुल केन्द्र यज्ञ ही है इसका तात्पर्य कि यज्ञ एक अद्भुत और अद्वितिय कर्म है जो सब जीव जन्तु और प्राणियों के द्वारा किया जाता है। अर्थात जो प्राणी जिस कारण को ध्यान में रख कर परमात्मा ने उसका अवतरण उत्पन्न किया है जब वह कार्य उस जीव के द्वारा किया जाता है तो उससे परमेंश्वर को सामर्थ प्राप्त होता है। ऐसे ही सभी प्राणी जब अपने उत्तपत्ती के मुल उद्देश्य को पुरा करते है तब इनके द्वारा किये गये हर एक पवित्र कर्म से एक विशेष प्रकार कि उर्जा उत्पन्न होती है जो श्रृष्टी को और ससक्त सामर्थवान शक्तिशाली और शुद्ध करता है। इसमें मानव सबसे प्रथम अस्थान पर आता है इसके प्रत्येक कृत्य का परिणाम ही यह विश्व ब्रह्माण्ड है, जो भी यह शुभ-अशुभ कर्म करता उसका परिणाम समग्र जगत को प्रभावित करता है क्योंकि परमेंश्वर भी इस मानव के साथ ही है। और वह कभी मानव को किसी भी कर्म को करने से रोकता नहीं है। मानव ही एक ऐसा प्राणी हो जो कर्म करने में पूर्णतः स्वतन्त्र है लेकिन उसके परिणाम को प्राप्त करने में स्वतन्त्र नहीं यह मानव परतन्त्र है। जैसा भी यह मानव कर्म करता है उसका फल उसी के अनुरूप यह प्रकृती उस मानव समुह को प्रदान करती है। यहां मानव के द्वारा किये जाने वाला कर्म भी अलग-अलग परिणाम को उत्तपन्न करता है कुछ कर्म व्यक्तिगत फायदे के लिये किये जाते है। कुछ परिवार के फायदे को ध्यान में रख कर किया जाता है। कुछ कर्म समाज को ध्यान में रख कर किया जाता है, कुछ कर्म देश को ध्यान में रख कर किया जाता है और कुछ कर्म सामुहिक रूप से संघटनो के द्वारा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के लिये किये जाते है। जैसा कर्म होता है उसके अनुरूप ही उसका फल भी मिलता है। जैसी क्रिया होती है ठीक उसके विपरीत प्रक्रिया भी होती है। उदाहरण के लिये आज सम्पूर्ण विश्व ग्लेबल वार्मिंग के दुस्परिणामों को भोग रहा है, जिसके कारण कितने महत्त्वपूर्ण जीव इस श्रृष्टी से हमेशा के लिये लुप्त हो चुके है उन प्राणीयों के ना होने कि वजह से जो कार्य उनके द्वारा इस श्रृष्टी में किया जा रहा था वह अब नही हो रहा है। जिसका दुस्परिणाम सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड को हमेशा को लिये क्षती का कारण बन चुका है। यह मात्र कुछ ही सौ वर्षों में ही हुआ है। इसके पिछ अंधाधुन प्रकृति का दोहन और अज्ञान पूर्ण कर्म ही है। लोग कहते है की कार्बन के अत्यधिक उत्सर्जन के कारण यह सम्पूर्ण भुमंडल गर्म हो रहा है। जीव जंतुओ के अनुकुल नहीं है जिसके कारण ही प्राणी लुप्त हो रहे और कुछ नये प्राणियों का विकास भी हो रहा है। कुछ कृतिम प्राणियों को वैज्ञानिक भी जन्म दे रहे है। यह सब मिला कर इन सब का परिणाम नकारात्मक अधिक आरहा है, शुद्धि के अस्थान पर इस मानव समुह के द्वारा किया जाने वाला कर्म जो विश्व ब्रह्माण्ड के लिये हो रहा है वह भयंकर अशुद्धि फैला रहा है।आज जरुरत है वैदिक यज्ञ के सारगर्भित भाव को समझे वैदिक और यज्ञ का बढ़ावा बृहद अस्तर पर दिया जाये।

वेद मंत्रो के याज्ञिक वैदिक विज्ञान को समझने के लिए हमें यज्ञ के वैदिक स्वरूप और उसके विज्ञान को समझना होगा। जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाश से समन्दर का पानी वास्प बन कर आकाश में जाता है और समय आने पर यही पानी जो वास्प के रूप में आकाश में गया था, वह पुनः पुरी पृथिवी पर बरशता है कुछ एक स्थानों को छोण कर जहां रेगिस्तान है वहां बारीश की मात्रा बहुत कम या बिल्कुल बारीश नहीं होती है। यह पानी कितना बहुमूल्य इसकी कीमत रेगिस्तान में रहने वाले लोग जानते है। इस पानी को प्राप्त करने के लिये कुछ एक देश समन्दर के पानी को लवण मुक्त करके उसका उपयोग करते है। जो बहुत महंगा तरीका है यह सब गरिब देशों के लिये बहुत कठिन है। आज पिने के पानी कि मात्रा तेजी से कम हो रही है पुरे पृथिवी पर यह एक गम्भिर समस्या बन कर उभर रहा है। नदियां सुख रही है समन्दर में खारे पानी की मात्रा निरंतर बढ़ रहा यह एक चिंता का विषय है इसके अतिरिक्त जो सबसे बड़ा पृथिवी का एसी उत्तरिय ध्रुव अन्टारिका महाद्विप है वह तीब्रता से पिधल कर समन्दर मिल रहा है। इसके पिछे कारण वायुमंडल की गर्मी बताया जारहा है अत्यधिक भौतिक उर्जा के दहन के उपरान्त कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा वायुमंडल में बढ़ रहा है। जिसके कारण बारीश की मात्रा भी कम हो रही है। यह एक नकारात्मक इस संसार के भौतिक विज्ञान का पक्ष है। जैसा कि याज्ञिक भौतिक विज्ञान है वह सकारात्मक कार्य करता है जब हम यज्ञ

करते है उसमें जड़ी बुटियों के साथ शुद्ध देशी घी से और विशेष प्रकार के समिधाओं से तो उससे जो सुगन्ध निकलती है वह सिधा सूर्य की किरणों के साथ वायु के साथ वायुमंडल में व्याप्त हो जाती है दुर्गन्ध और प्रदुषण कार्बनडाइआक्साड की मात्रा को नियंत्रित करती है। जिससे पृथिवी का वायुमंडल ना ज्यादा गर्म होता है ना ही ठंडा ही होता है, सही समय पर बारीश होती है और कभी ना पानी की कमी होती है ना ही किसी प्रकार के जीव ही इस भुमंडल पर लुप्त होते है। जैसा की पहले हुआ करता

यह यज्ञ ,हवन, अग्निहोत्र मनुष्यों के साथ सदा से चला आया है। वैदिक धर्म में सर्वोच्च स्थान पर विराजमान यह हवन आज प्रायः एक आम आदमी से दूर है। दुर्भाग्य से इसे केवल कुछ वर्ग, जाति और धर्म तक सीमित कर दिया गया है। कोई यज्ञ पर प्रश्न कर रहा है तो कोई मजाक। इस लेख का उद्देश्य जनमानस को यह याद दिलाना है कि हवन क्यों इतना पवित्र है, क्यों यज्ञ करना न सिर्फ हर इंसान का अधिकार है बल्कि कर्त्तव्य भी है. यह लेख किसी विद्वान का नहीं, किसी सन्यासी का नहीं, यह लेख १०० करोड़ हिंदुओं ही नहीं बल्कि ८ अरब मनुष्यों के प्रतिनिधि एक साधारण से इंसान का है जिसमें हर नेक इंसान अपनी छवि देख सकता है. यह लेख आप ही के जैसे एक इंसान के हृदय की आवाज है जिसे आप भी अपने हृदय में महसूस कर सकेंगे..संस्कृति द्रोही लोग यज्ञ को पाखंड और अवैज्ञानिक कहते है | पशु बलि और अशास्त्रीय युक्त वाममार्गी, आवेदिक यज्ञ अवश्य ही पाखंड है लेकिन वैदिक यज्ञ जो अहिंसक है पशु हत्या दोष से मुक्त है , वे यज्ञ वैज्ञानिक है ,और पाखंड से मुक्त है वैदिक यज्ञ के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण जानने के लिए एक उदाहरण को समझते जो एक सच्ची घटना है।

03 दिसंबर 1984 की भोपाल गैस त्रासदी पर एक किताब पढ़ते समय अग्रेंजी समाचार पत्र "द हिंदू" की एक स्टोरी पर नजर पड़ी...। आपको भी सुनाता हूं...।....जहरीली गैस मिथाइल आइसोसाइनेट का रिसाव होने के थोड़ी देर बाद अध्यापक एसएल कुशवाहा ने अपने घर में अग्निहोत्र यज्ञ करना शुरु कर दिया। इसके करीब बीस मिनट बाद गैस का असर उसके घर पर खत्म हो गया और उनकी जिंदगी बच गई....

यज्ञ- हमार स्वास्थ्य है, एक स्वस्थ जीवन का नेतृत्व करना और बैक्टीरिया से अपने घर को मुक्त करना चाहते हैं? नियमित अंतराल पर 'हवन' करें, नेशनल बॉटनिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (एनबीआरआई) के वैज्ञानिकों की एक टीम ने एक अध्ययन में दावा किया है कि हवन के दौरान उत्सर्जित धुएं से हवा के बैक्टीरिया को बड़ी मात्रा में कम कर देता है, संक्रामक रोगों की संभावना को कम कर देता है। एनबीआरआई के वरिष्ठ वैज्ञानिक चंद्रशेखर नौटियाल ने पीटीआई को बताया, "ज्वलनशील लकड़ी और औषधीय जड़ी बूटियों, जिसे 'हवन समग्री' (लकड़ी और सुगंधयुक्त और औषधीय जड़ी बूटियों का मिश्रण) के रूप में जाना जाता है, प्रभावी रूप से हवा में रोगज़नक़ों को कम कर सकता है।"

अध्ययन पहले से ही प्रकाशित किया गया था और साइंस डायरेक्ट ने स्वीकार किया है, एथनिकफोराकोलॉजी की एक पत्रिका।

आस्था और भक्ति के प्रतीक हवन को करने के विचार मन में आते ही आत्मा में उमड़ने वाला ईश्वर प्रेम वैसा ही है जैसे एक माँ के लिए उसके गर्भस्थ अजन्मे बच्चे के प्रति भाव! न जिसको कभी देखा न सुना, तो भी उसके साथ एक कभी न टूटने वाला रिश्ता बन गया है, यही सोच-सोच कर मानसिक आनंद की जो अवस्था एक माँ की होती है वही अवस्था एक भक्त की होती है। इस हवन के माध्यम से वह अपने अजन्मे अदृश्य ईश्वर के प्रति भाव पैदा करता है और उस अवस्था में मानसिक आनंद के चरम को पहुँचता है। इस चरम आनंद के फलस्वरूप मन विकार मुक्त हो जाता है। मस्तिष्क और शरीर में श्रेष्ठ रसों (होर्मोंस) का स्राव होता है जो पुराने रोगों का निदान करता है और नए रोगों को आने नहीं देता। हवन करने वाले के मानसिक रोग दस पांच दिनों से ज्यादा नहीं टिक सकते।

हवन में डाली जाने वाली सामग्री (ध्यान रहे, यह सामग्री आयुर्वेद के अनुसार औषधि आदि गुणों से युक्त जड़ी बूटियों से बनी हो) अग्नि में पड़कर सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। घर के हर कोने में फ़ैल कर रोग के कीटाणुओं का विनाश करती है। वैज्ञानिक शोध से पता चला है कि हवन से निकलने वाला धुआँ हवा से फैलने वाली बीमारियों के कारक इन्फेक्शन करने वाले बैक्टीरिया (विषाणु) को नष्ट कर देता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार दुनिया भर में साल भर में होने वाली ५७ मिलियन मौत में से अकेली १५ मिलियन (२५% से ज्यादा) मौत इन्ही इन्फेक्शन फैलाने वाले विषाणुओं से होती हैं! हवन करने से केवल ये बीमारियाँ ही नहीं, और भी बहुत सी बीमारी खत्म होती हैं, जैसे-

१. सर्दी/जुकाम/नजला

२. हर तरह का बुखार

३. मधुमेह (डायबिटीज/शुगर)

४. टीबी (क्षय रोग)

५. हर तरह का सिर दर्द

६. कमजोर हड्डियां

७. निम्न/उच्च रक्तचाप

८. अवसाद (डिप्रेशन)

इन रोगों के साथ साथ विषम रोगों में भी हवन अद्वितीय है, जैसे

९. मूत्र संबंधी रोग

१०. श्वास/खाद्य नली संबंधी रोग

११. स्प्लेनिक अब्सेस

१२. यकृत संबंधी रोग

१३. श्वेत रक्त कोशिका कैंसर

१४. एंटरोबैक्टर एरोजेन द्वारा संक्रमण

१५.अस्पताल में भर्ती होने के बाद 48 घंटे में सामने आने वाले संक्रमण

१६. बाहरी एलर्जी संबंधी चेतावनी

१७ . nosocomial गैर-जीवन धमकी संक्रमण

और यह सूची अंतहीन है! सौ से भी ज्यादा आम और खास रोग यज्ञ थैरेपी से ठीक होते हैं! सबसे बढ़कर हवन से शरीर, मन, वातावरण, परिस्थितियों और भाग्य पर अद्‌भुत प्रभाव होता है. घर परिवार, बच्चे बड़े सबके उत्तम स्वास्थ्य, आरोग्य और भाग्य के लिए यज्ञ से बढ़कर कुछ नहीं हो सकता! दिन अगर यज्ञ से शुरू हो तो कुछ अशुभ हो नहीं सकता, कोई रोग नहीं हो सकता.

यज्ञ : सबसे बड़ा विज्ञान

आज यज्ञ को शक्तिवर्धक वस्तुएँ जला देने वाला एक अन्धविश्वासी कर्मकाण्ड कहा जाता है, किन्तु ऐसा कहने वाले यह भूल जाते हैं कि वर्तमान विज्ञान उस स्थिति में आ गया है, जब यह बताया जा सके कि यज्ञ के जो भी लाभ वेद, उपनिषद्, शास्त्रों और पुराणों में बताये गये हैं, वह यथार्थ लाभों की तुलना में उतने ही छोटे और थोड़े हैं, जैसे अनन्त ब्रह्माण्ड की तुलना में यह अपनी पृथ्वी। प्रजापति ब्रह्मा के इस कथन को - "यह यज्ञ तुम्हारी हर कामना को संतुष्ट करेगा।" अब विज्ञान की कसौटी पर सत्य उतारा जायेगा।

इस विज्ञान को समझने के लिए पृथ्वी और ब्रह्माण्ड की जिन शक्तियों के अध्ययन की आवश्यकता है, वह है - (1) शब्द सामर्थ्य (मंत्र शक्ति), (2) अग्नि तत्त्व और उसका प्रकीर्णन, (3) पदार्थ परिवर्तन के मौलिक सिद्धांत, (4) सूर्य और उसकी सहस्राँशु शक्ति और अन्तिम, (5) भावना विज्ञान। इनमें से सम्पूर्ण या कुछ की आँशिक जानकारी से भी यज्ञ सम्बन्धी भारतीय दर्शन को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। शब्द की सामर्थ्य की माप कैलीफोर्निया विश्व–विद्यालय के एक भूगर्भ तत्त्ववेत्ता डा. गैरी लेन ने की। उन्होंने स्फटिक के प्राकृतिक क्रिस्टल और स्फटिक की ही बहुत पतली पट्टिका के माध्यम से एक ऐसा यन्त्र बनाया जो ऐसी ध्वनियों के माध्यम से जो कानों को सुनाई भी नहीं देती ऐसी शक्ति का निर्माण किया जिसके द्वारा शल्य-चिकित्सा कीटाणुओं का विनाश, मोटी–मोटी इस्पात की चादरों को काटना, धुलाई, कटाई आदि भारी से भारी काम और नाजुक से नाजुक कार्य भी सम्पन्न करने में बड़ी सहायता मिली। आज पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्षेत्रों में कर्णातीत ध्वनि के उपयोग ने क्राँति मचा दी है।

शब्द की दूसरी विशेषतः उसकी संवहनीयता है, वह ठोस माध्यम से भी चल सकता है और ईथर में तरंगों के रूप में सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण भी कर आता है, इन सब बातों का अर्थ होता है कि शब्द की शक्ति अपरिमेय होती हैं। पृथ्वी पर अनेक हलचलें शब्द के द्वारा ही होती है फिर भारतीय शब्द शास्त्र तो और भी वैज्ञानिक है। उनसे एक प्रकार की ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है, जो किसी भी स्थान पर व्यापक हलचल उत्पन्न कर सकती है।

गायत्री मंत्र की ध्वनि शक्ति इन सबसे विलक्षण है। गायत्री मंत्रों में जब मंत्रोच्चारण किया जाता है तो वह अपने सामान्य सिद्धान्त के अनुसार कुण्डलाकार गति से ऊपर की ओर ईथर में तरंगें बनाता हुआ बढ़ता है। यज्ञों में प्रज्वलित अग्नि के इलेक्ट्रान्स उन तरंगों को वहन कर लेते हैं और उनकी पहली प्रतिक्रिया तो उस क्षेत्र में ही फैलती है, अर्थात् यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले घृत आदि पदार्थ स्थूल से गैस रूप में फैलते हैं। आग की गर्मी से उन औषधियों के इलेक्ट्रान्स अपने-अपने पथों पर इतनी तेजी से दौड़ने लगते हैं कि आपस में लड़खड़ा जाते हैं और छितर कर स्थूल पदार्थों से अलग होकर वायु मण्डल में फैल जाते हैं, यज्ञ के समय फैलने वाली धूम्र-सुवास उसी का एक स्थूल रूप है। अग्निहोत्र और मंत्रोच्चारण के उससे भी सूक्ष्म-विज्ञान को समझने के लिये अयन-मण्डल (आयनोस्फियर) का अध्ययन आवश्यक है। धरती की सतह से 35 से 45 मील तक की ऊँचाई के ऊपर वायु मण्डली आग को अयन-मण्डल कहते हैं। अपनी पृथ्वी वायु के समुद्र में डूबी हुई है, आयनोस्फियर उसका सबसे अधिक ऊँचा और विशाल क्षेत्र हैं, लेकिन वहाँ हवा की कुल मात्रा वायु-मण्डल की तुलना में दो-सौवें भाग से भी कम है। यथार्थ में पृथ्वी पर

प्राकृतिक परिवर्तनों और ब्रह्माण्ड के अदृश्य लोकों से संपर्क का मूल अध्याय यहीं से प्रारम्भ होता है। कुछ दिन तक अयन मण्डल वैज्ञानिकों के लिये एक पहेली थी, किन्तु छानबीन से पता चला है कि बहुत ऊँचाई पर हवा में ऐसे बहुत से गुण हैं जो धरती की हवा में नहीं होते।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव प्रकाश, प्रचण्ड चुम्बकीय आँधी, बेतार तरंगों के परावर्तन जैसी घटनायें आयनोस्फियर से ही आरम्भ होती हैं। सूर्य और चन्द्रमा आदि की अनेक नियमित प्रक्रियाओं के फलस्वरूप पृथ्वी के आकर्षण वृत्त में परिवर्तन होते हैं। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि हवा में मिश्रित गैसें छोटे-छोटे अणुओं से बनी होती हैं। एक घन सेंटीमीटर हवा में नाइट्रोजन, आक्सीजन और दूसरी गैसों के 27000,000,000,000,000,000 कण होते हैं। यह अणु भी छोटे कणों में विभक्त होते हैं इन्हें परमाणु कहते हैं, परमाणु भी विभक्त हो सकते हैं। क्योंकि वे भी इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोटान नामक और भी छोटे कणों से बने हैं, इन्हें शक्ति तरंगें ही कहना चाहिये। परमाणु बहुत स्थायी होता है, क्योंकि इलेक्ट्रान और परमाणु का न्यूक्लियस आपस में आकर्षक विद्युत शक्ति द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते। नाभिक धन विद्युत आवेशकारी और इलेक्ट्रानिक सेल ऋण-विद्युत आवेशकारी होता है। इन्हीं विद्युत आवेशकारी अणु या परमाणुओं का नाम अयन है। इसे एक प्रकार का वैसा ही शक्ति प्रवाह कहना चाहिये, जिस तरह तालाब के पानी में तरंगें उठतीं और पानी में गति पैदा करती हैं। यह सूक्ष्म अयन मण्डल भी उसी प्रकार एक ओर तो पृथ्वी की जलवायु पर गैसीय स्थिति के अनुरूप अच्छे, खराब परिवर्तन करता है, दूसरी ओर पृथ्वी के शब्द प्रवाह को कालातीत बनाकर आकाश की ओर फेंकता रहता है।

अणुओं और परमाणुओं के साथ इतनी मजबूती से जुड़े रहने के बाद भी इलेक्ट्रान कभी-कभी उनसे टूटकर अलग हो जाते हैं, पहले वैज्ञानिक इस पर आश्चर्य-चकित थे पर अब वे जान गये हैं कि आयनोस्फियर में यह क्रिया सूर्य के विकिरण (रेडियेशन) से होती हैं। तात्पर्य यह कि सूर्य इस अयन को चुप नहीं रहने देता कुछ न कुछ परिवर्तन कराता ही रहता है परिवर्तन की स्थिति अच्छी-बुरी गैसों के अनुरूप होती हैं, इसलिये यज्ञ से जो प्राण-प्रवाह उत्पन्न होता है, वह स्थूल दृष्टि से प्रकृति और जन-स्वास्थ्य पर बड़ा अनुकूल प्रभाव डालता है। आज जो परमाणविक विस्फोट हो रहें हैं, उनसे तो अयन-मण्डल ऐसी खराब गैसों की धूलि रेडियो-एक्टीविटी से भर गया है कि आने वाले समय में अनेकों नई बीमारियाँ पैदा होंगी और अकाल धनावृद्धि के विद्रूप उपस्थित होंगे। इस धूलि की जिन्दगी बड़ी लम्बी होती है। दूसरी ओर हर जीवित पदार्थ में कार्बन की मात्रा अधिक होती है। जिससे किरण-सक्रिय धूलि बड़ी आसानी से उस पर अपना प्रभाव प्रारम्भ कर देती है। हर एक मेगाटन वाले परमाणविक अस्त्र से 20 पौण्ड कार्बन 14 की उपलब्धि होती है।

1961 तक के विस्फोटों का हिसाब लगाकर ही डा. लाइनस पालिंग ने बताया था कि भविष्य में 4 लाख विकलांग या मृत बच्चे जन्म लेंगे। कार्बन-14 के अतिरिक्त स्ट्राटियम 90 आयोडीन 131 और कैसियम 137 जैसी कैन्सर, लूकेमियाँ, रक्त मंदता और पेचिस पैदा करने वाली गैसें पैदा होती हैं, उन्हें केवल प्राण-संयुक्त या अधिक शक्ति वाला यज्ञीय-विकिरण ही रोक सकता है और कोई नहीं। यज्ञ से हुई प्राण-वर्षा में ही वह शक्ति है, जो इन दुष्प्रभावों को रोक सके, इसलिये वर्तमान युग में तो यज्ञों की अनिवार्यता असंदिग्ध ही है।

प्रकृति के रूप में यज्ञ पहुँची गैस और कर्णातीत ध्वनि से अयन और ब्रह्माण्डीय शक्तियों के भीतर भारी हलचल उत्पन्न होती है और उस हलचल के फल-स्वरूप ही पृथ्वी पर अनेक नये तत्त्वों का आकर्षण, वर्षा आदि की व्यवस्था होती है, मौसम में सुहावनापन और वातावरण में शक्तिवर्धक प्राण की बहुलता होती है, यह सब उसके स्थूल प्रभाव और प्रतिक्रियाएँ ही हैं।

यजुर्वेद में कहा है-ब्रह्म सूर्य सम ज्योतिः"-23। 42।

वह सूर्य ब्रह्म तत्त्व ही है, उन्हीं की शक्ति और बाहरी महिमा से जीवन का विकास हो रहा है। पृथ्वी में आँधी तक सूर्य की इच्छा से आती है, इसे सूर्य की तापीय व्यवस्था कहें या प्राण-प्रक्रिया पर लिखित है कि यज्ञ और मन्त्र की कर्णातीत शक्ति उन प्राण या ऊष्मा में खलबली मचा कर अधिक मात्रा में जीवन तत्त्वों का विस्फोट अवश्य कर अधिक मात्रा में जीवन तत्त्वों का विस्फोट अवश्य करा लेती है। जहाँ भी यज्ञ होते हैं वहाँ प्रकृति बहुत अनुकूल रहती है इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं। स्मरण रहे पृथ्वी सूर्य से ही सर्वाधिक प्रभावित है। मन्त्र का भावना विज्ञान उससे भी विलक्षण शक्ति वाला है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि संसार में किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है, भले ही हम उसे न जानते हों। परमात्मा की सृष्टि में वह सब कुछ है, जिसके बारे में हम जानते भी नहीं हैं, उसे जानने और देखने के लिये अणु-आँखें सूक्ष्म-दृष्टि को जागृत करना आवश्यक है। अर्थात् जीव छोटे से छोटा होकर ही विश्व की अनन्तता और उसके भीतर की आणविक हलचलों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह ज्ञान इतना संघर्ष है कि संसार के किसी भी भूभाग में विलक्षण हलचल उत्पन्न कर सकता है।

यज्ञों के माध्यम से प्रकट होने वाली भावना-शक्ति सामान्य भावों की अपेक्षा शब्द-शक्ति और अग्नि-तत्त्व से प्रेरित होने के कारण तमाम ब्रह्माण्ड में फैलकर अपने अनुरूप शक्तियों को खींच लाती है। हम समझ नहीं पाते कि अदृश्य सहायता या इच्छा पूर्ति कैसे हुई पर यह नई भावनाओं द्वारा एक प्रकार के तत्त्वों के अणुओं के आकर्षण की ही वैज्ञानिक पद्धति है, उसमें रहस्य जैसी कोई भी बात नहीं है।

भावना वस्तुतः कर्णातीत ध्वनि की और भी सूक्ष्म स्वरूप है, क्योंकि हम जो कुछ सोचते हैं, वह आत्मा या चेतन सत्ता द्वारा एक प्रकार का बोलना ही हैं, इसलिये होना ही चाहिये, यज्ञ तो एक प्रकार से उस यन्त्र की तरह है, जो अभीष्ट इच्छा के गन्तव्य तक उस शक्ति को पहुँचाने और वहाँ से आवश्यक परिस्थितियाँ खींच लाने में मदद करता हैं। हविष्यान्न का प्रतिफल अन्न आदि के उत्पादन, अयन-मण्डल में शक्ति तत्त्वों के विकास और जलवायु की अनुकूलता के रूप में दिखाई देता है तो यज्ञ कर्ताओं की श्रद्धा भक्ति भावनात्मक स्तर पर मनोवाँछित सफलतायें प्रदान करने वाली होती हैं। स्थूल की प्रतिक्रिया स्थूल तो सूक्ष्म की प्रतिक्रिया सूक्ष्म भी हाथों-हाथ देखने को मिलती है। यद्यपि यह दोनों ही बातें मिली-जुली हैं, इसलिये भावना को विज्ञान और विज्ञान को भावना के माध्यम से जागृत और प्राप्त किया जा सकता है। एक समय था जब अभीष्ट प्राकृतिक आवश्यकताओं, सामाजिक परिवर्तनों और व्यक्ति की निजी इच्छाओं के लिये प्रयुक्त होने वाले यज्ञों की बहुतायत से लोगों को जानकारी थी पर उस विद्या का लोप हो गया लगता है, प्रयोग और परीक्षण के तौर पर ही उन रहस्यों की पुनः जानकारी की जा सकती हैं। सूर्य की अदृश्य किरणों के और अयन-मण्डल के सम्बन्ध में और अधिक जानकारियाँ मिलेंगी तब लोग यज्ञ की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं को और भी अच्छी तरह समझ सकेंगे। अभी प्राकृतिक परिवर्तन में उसे सहायक के रूप में समझा जा सका तो इतना ही काफी होगा।

विधि विधान से किए गए यज्ञ हवन व्यक्ति को प्राणशक्ति से भरपूर कर देते हैं। इस बात का प्रमाण अग्नि के सान्निध्य में होने वाले सात्विक प्रभाव से समझा देखा जा सकता है। पहला प्रभाव तो यह कि कायदे से किए गए यज्ञ हवन में जो धुंआ उठता है, उससे किसी को परेशानी नहीं होती। आमतौर पर धुंए का प्रभाव खांसी होने और दम घुटने के रूप में दिखाई देती है। बंगलूर के वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट के प्रयोगों के अनुसार हवन के लिए बैठने पर न खांसी होती है न दम घुटता है और न ही आंच लगती है। इंस्टीट्यूट की पत्रिका अग्निधर्मा के अनुसार ऐसा नहीं है कि हवन में प्रयोग की जानी वाली समिधाएं (लकड़ियां) और हवन सामग्री के कारण ऐसा होता है।

बिना मंत्रों के बेतरतीब ढंग से जलाई गई वही सामग्री स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है, जबकि विधि विधान और मंत्रों से किए गए हवन शुभ परिणाम प्रस्तुत करते हैं। वैदिक वांग्मय का आरंभ अग्नि शब्द से होता है। ऋग्वेद की पहली ऋचा के पहले मंत्र का पहला शब्द है अग्नि। योगी अश्विनी के अनुसार यह शब्द और मंत्र ब्रह्मांड की सूक्ष्म

शक्तियों और हवनकर्ता को जोड़ता है। अग्नि में ऊपर उठाने की क्षमता है। यही एक ऐसा तत्व है जो गुरुत्व शक्ति के नियम का अतिक्रम करते हुए ऊपर की ओर जाता है।

अग्नि व्यक्ति के विचारों को शुद्ध रखती और उसका आत्मिक उत्थान करती है। इन दिनों होने वाले हवन में तो चारों तरफ धुंआ भर जाता है। उसमें बैठना भी दूभर हो जाता है। जबकि हवन से वातावरण शांत और निर्मल हो जाना चाहिए। उसमें किसी भी व्यक्ति को खांसी और बेचैनी नहीं होती। यहां तक कि आहुतियां दिए जाते समय यज्ञशाला में पशु पक्षी भी निस्संकोच आ कर बैठ जाते हैं और अच्छा महसूस करते हैं।

हवन गैस से वर्षा -

हवन से वृष्टि सहायता मिलने का उल्लेख पाया जाता है। इसका आशय यह है कि हवन द्वारा वायु में कुछ ऐसे परिवर्तन होना चाहिये जो वृष्टि में सहायक सिद्ध हों। भौतिक विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि किसी स्थान पर वृष्टि हो सकने के लिए अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। बादल बनने के लिए निम्नलिखित शर्ते आवश्यक है -

(क) हवा में नमी का होना |

(ख) हवा में रेणु कणों का होना |

(ग) यदि हवा में रेणु कण न हो तो अल्ट्रा वायोलेट रेज ,एक्सरेज या रेडियम इमेनेशन गुजार कर कृत्रिम रेणु कण स्वयम बना लिए जाए | जो रेणु कणों का काम करे |

(घ) हवा को इतना ठंडा कर दिया जाए कि उस में विद्यमान जलवाष्प स्वयम द्रवीकृत हो जाए |

(ङ) हवा में नमी की राशि |

(च) वायु मंडल का ताप परिमाण ।

(छ) वायु के फेलने की गुंजाइश ।

(ज) नमी के लिए रेणु कणों के गुण ,आकार और संख्या का बढ़ जाना।

हवन गैस से वर्षा होने में कारण ज़हा एक सीमा तक हवन से उत्पन्न वे जले कार्बन के जर्रे है ,वहां उनसे भी अधिक घी के आद्रता चुसक जर्रे है | घी की परत वाले छोटे छोटे जर्रे नमी खीच सकते है | और एक बार नमी जमने से उन पर नमी जमती ही चली जाती है | कोयले के कई जर्रे जो घी की परत से ढक जाते है ऋणबिद्युतविष्ट देखे गये है ,जो स्वभावतय पानी को खीचते है | इस तरह साधारणतय छोटे हवन बादल बनाने और ऋतू के अनुसार वर्षा में साहयक होते है | किसी विशेष समय वर्षा लाने के लिए हवन को बड़ी मात्रा पर और विशेष विशेष पदार्थो (जिनसे आद्रता चूसने वाले गैस या जर्रे बने) करना आवश्यक है | बहुत बड़े हवन ही उर्ध्व गति के वायु को पैदा करके वर्षा लाने का काम कर सकते है | हवन में तेल घी जैसे आद्रता चूसने वाले पदार्थ होने के कारण बादल न होने पर भी नमी को खीच कर ,बादल बना कर वर्षा कर सकते है | जिनसे वर्षा रुक सके या बादल हट सके | इनमे ऐसे पदार्थ डाले जा सकते है जिनसे वर्षा रुक सके या बादल हट सके | इनमे ऐसे पदार्थ डाले जा सकते है जिससे बहुत मात्रा में ठोस कण बने और आद्रता को खीचने के स्थान पर उससे वाष्प बनाने का काम करे | आशा है उक्त वैज्ञानिक विवेचन से पाठको को यह समझने में कुछ साहयता मिलेगी कि यज्ञ से वर्षा होने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है ?

हवन की उपयोगिता में हमारे अविश्वास या सन्देह के दो कारण हैं- एक तो हमारा अति स्थूलदर्शी हो जाना तथा दूसरे विधिवत् प्रयोग द्वारा हवन की इस उपयोगिता को प्रमाणित करने की कोई योजना न होना। वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों के विकास का इतिहास इस ओर स्पष्ट संकेत कर रहा है कि हमारे शरीर की रचना इतनी जटिल है कि केवल वैज्ञानिक विधि से ही इसे पूरा नहीं जाना जा सकता है। हमारे शरीर में ऐसे अनेक सूक्ष्म अंग हैं जिन्हें प्रकृति के अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ प्रभावित कर देते हैं। इसलिए यह कहना भूल है कि हवन द्वारा हमारे रोगों की निवृत्ति मानना भ्रांति है। यह कहना तो ठीक है कि हवन सम्बंधी हमारा ज्ञान इस समय इतना अपूर्ण है कि इसके द्वारा सभी विशिष्ठ रोगों की चिकित्सा का दावा उस समय तय नहीं किया जा सकता जब उसे प्रयोग से सिद्ध न किया जा सके। प्रसन्नता की बात है कि गायत्री तपोभूमि द्वारा ऐसी खोजें और प्रयोगात्मक परीक्षाओं की व्यवस्था की जा रही है। हवन निःसंदेह एक लोकोपयोगी कार्य है और इसका प्रभाव मानव जीवन के लिये हितकर ही होता है।

यज्ञ के द्वारा जो शक्तिशाली तत्व वायुमण्डल में फैलाये जाते हैं, उनसे हवा में घूमते असंख्यों रोग कीटाणु सहज ही नष्ट होते हैं । डी.डी.टी., फिनायल आदि छिड़कने, बीमारियों से बचाव करने वाली दवाएँ या सुइयाँ लेने से भी कहीं अधिक कारगर उपाय यज्ञ करना है । साधारण रोगों एवं महामारियों से बचने का यज्ञ एक सामूहिक उपाय है । दवाओं में सीमित स्थान एवं सीमित व्यक्तियों को ही बीमारियों से बचाने की शक्ति है; पर यज्ञ की वायु तो सर्वत्र ही पहुँचती है और प्रयतन न करनेवाले प्राणियों की भी सुरक्षा करती है । मनुष्य की ही नहीं, पशु-पक्षियों, कीटाणुओं एवं वृक्ष-वनस्पतियों के आरोग्य की भी यज्ञ से रक्षा होती है।

यज्ञ का धूम्र आकाश में-बादलों में जाकर खाद बनकर मिल जाता है । वर्षा के जल केसाथ जब वह पृथ्वी पर आता है, तो उससे परिपुष्ट अन्न, घास तथा वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनके सेवन से मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी परिपुष्ट होते हैं । यज्ञाग्नि के माध्यम से शक्तिशाली बने मन्त्रोच्चार के ध्वनि कम्पन, सुदूर क्षेत्र में बिखरकर लोगों का मानसिक परिष्कार करते हैं, फलस्वरूप शरीरों की तरह मानसिक स्वास्थ्य भी बढ़ता है ।

हिंदू धर्म में सर्वोपरि पूजनीय वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ/हवन की क्या महिमा है, उसकी कुछ झलक इन मन्त्रों में मिलती है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्. होतारं रत्नधातमम् [ऋग्वेद १/१/१/]

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैः बोधयतातिथिं. आस्मिन् हव्या जुहोतन. [यजुर्वेद 3/1]

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे. [यजुर्वेद 22/17]

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता. [अथर्ववेद 19/7/3]

प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता. [अथर्ववेद 19/7/4]

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः [यजुर्वेद 31/9]

अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोधि ब्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान [यजुर्वेद 19/58]

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म [शतपथ ब्राह्मण 1/7/1/5]

यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म [तैत्तिरीय 3/2/1/4]

यज्ञो अपि तस्यै जनतायै कल्पते, यत्रैवं विद्वान होता भवति [ऐतरेय ब्राह्मण १/२/१]

यदैवतः स यज्ञो वा यज्याङ्गं वा.. [निरुक्त ७/४]

इन मन्त्रों में निहित अर्थ और प्रार्थनाएं इस लेख के अंत में दिए जायेंगे जिन्हें पढकर कोई भी व्यक्ति खुद हवन करके अपना और औरों का भला कर सकता है। पर इन मन्त्रों का निचोड़ यह है कि ईश्वर मनुष्यों को आदेश करता है कि हवन/यज्ञ संसार का सर्वोत्तम कर्म है, पवित्र कर्म है जिसके करने से सुख ही सुख बरसता है। अनेक प्रयोजनों के लिए अनेक विशिष्ट यज्ञ भी किये जा सकते हैं । दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार उत्कृष्ट सन्तानें प्राप्त की थीं, अग्निपुराण में तथा उपनिषदों में वर्णित पंचाग्नि विद्या में ये रहस्य बहुत विस्तारपूर्वक बताये गये हैं । विश्वामित्र आदि ऋषि प्राचीनकाल मेंअसुरता निवारण के लिए बड़े-बड़े यज्ञ करते थे । राम-लक्ष्मण को ऐसे ही एक यज्ञकी रक्षा के लिए स्वयं जाना पड़ा था । लंका युद्ध के बाद राम ने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे । महाभारत के पश्चात् कृष्ण ने भी पाण्डवों से एक महायज्ञ कराया था,उनका उद्देश्य युद्धजन्य विक्षोभ से क्षुब्ध वातावरण की असुरता का समाधान करना ही था । जब कभी आकाश के वातावरण में असुरता की मात्रा बढ़ जाए, तो उसका उपचार यज्ञ प्रयोजनों से बढ़कर और कुछ हो नहीं सकता । आज पिछले दो महायुद्धों के कारण जनसाधारण में स्वार्थपरता की मात्रा अधिक बढ़ जाने से वातावरण में वैसा ही विक्षोभ फिर उत्पन्न हो गया है । उसके समाधान के लिए यज्ञीय प्रक्रिया को पुनर्जीवित करना आज की स्थिति में और भी अधिक आवश्यक हो गया है । यज्ञीय प्रेरणाओं का महत्त्व समझाते हुए ऋग्वेद में यज्ञाग्नि को पुरोहित कहा गया है । उसकी शिक्षाओं पर चलकर लोक-परलोक दोनों सुधारे जा सकते हैं । वे शिक्षाएँइस प्रकार हैं-

१- जो कुछ हम बहुमूल्य पदार्थ अग्नि में हवन करते हैं, उसे वह अपने पास संग्रह करके नहीं रखती, वरन् उसे सर्वसाधारण के उपयोग के लिए वायुमण्डल में बिखेर देती है । ईश्वर प्रदत्त विभूतियों का प्रयोग हम भी वैसा ही करें, जो हमारा यज्ञपुरोहित अपने आचरण द्वारा सिखाता है । हमारी शिक्षा, समृद्धि, प्रतिभा आदिविभूतियों का न्यूनतम उपयोग हमारे लिए और अधिकाधिक उपयोग जन-कल्याणके लिए होना चाहिए ।

२- जो वस्तु अग्नि के सम्पर्क में आती है, उसे वह दुरदुराती नहीं, वरन् अपने में आत्मसात् करके अपने समान ही बना लेती है । जो पिछड़े या छोटे या बिछुड़े व्यक्ति अपने सम्पर्क में आएँ, उन्हें हम आत्मसात् करने और समान बनाने का आदर्श पूरा करें ।

३- अग्नि की लौ कितना ही दबाव पड़ने पर नीचे की ओर नहीं होती, वरन् ऊपर को ही रहती है । प्रलोभन, भय कितना ही सामने क्यों न हो, हम अपने विचारों और कार्यों की अधोगति न होने दें । विषम स्थितियों में अपना संकल्प और मनोबलअग्नि शिखा की तरह ऊँचा ही रखें ।

४- अग्नि जब तक जीवित है, उष्णता एवं प्रकाश की अपनी विशेषताएँ नहीं छोड़ती । उसी प्रकार हमें भी अपनी गतिशीलता की गर्मी और धर्म-परायणता की रोशनी घटने नहीं देनी चाहिए । जीवन भर पुरुषार्थी और कर्त्तव्यनिष्ठ रहना चाहिए।

५- यज्ञाग्नि का अवशेष भस्म मस्तक पर लगाते हुए हमें सीखना होता है कि मानव जीवन का अन्त मुट्ठी भर भस्म के रूप में शेष रह जाता है । इसलिए अपने अन्त को ध्यान में रखते हुए जीवन के सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिए । यज्ञ सामूहिकता का प्रतीक है । अन्य उपासनाएँ या धर्म-प्रक्रियाएँ ऐसी हैं, जिन्हें कोई अकेला कर या करा सकता है; पर यज्ञ ऐसा कार्य है, जिसमें अधिक लोगों के सहयोग की आवश्यकता है । होली आदि बड़े यज्ञ तो सदा सामूहिक ही होते हैं । यज्ञ आयोजनों से सामूहिकता, सहकारिता और एकता की भावनाएँ विकसित होती हैं । प्रत्येक शुभ

कार्य, प्रत्येक पर्व-त्यौहार, संस्कार यज्ञ के साथ सम्पन्न होता है । यज्ञ भारतीय संस्कृति का पिता है । यज्ञ भारत की एक मान्य एवं प्राचीनतम वैदिक उपासना है ।

यही नहीं, भगवान श्रीराम को रामायण में स्थान स्थान पर 'यज्ञ करने वाला' कहा गया है. महाभारत में श्रीकृष्ण सब कुछ छोड़ सकते हैं पर हवन नहीं छोड़ सकते। हस्तिनापुर जाने के लिए अपने रथ पर निकल पड़ते हैं, रास्ते में शाम होती है तो रथ रोक कर हवन करते हैं। अगले दिन कौरवों की राज सभा में हुंकार भरने से पहले अपनी कुटी में हवन करते हैं। अभिमन्यु के बलिदान जैसी भीषण घटना होने पर भी सबको साथ लेकर पहले यज्ञ करते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन का एक एक क्षण जैसे आने वाले युगों को यह सन्देश दे रहा था कि चाहे कुछ हो जाए, यज्ञ करना कभी न छोड़ना। जिस कर्म को भगवान स्वयं श्रेष्ठतम कर्म कहकर करने का आदेश दें, वो कर्म कर्म नहीं धर्म है। उसका न करना अधर्म है।

यज्ञ- हमरा भाग्य

लोग अशुभ से डरते हैं, किसी पर साया है तो किसी पर भूत प्रेत, किसी पर किसी ने जादू कर दिया है तो किसी के ग्रह खराब हैं। किसी का भाग्य साथ नहीं देता तो कोई असफलताओं का मारा है। क्यों? क्योंकि जीवन में संकल्प नहीं है। हवन कुंड के सामने बैठ कर उसकी अग्नि में आहुति डालते हुए इदं न मम कहकर एक बार अपने सब अच्छे बुरे कर्मों को उस ईश्वर को समर्पित कर दो। अपनी जीत हार उस ईश्वर के पल्ले बाँध दो। एक बार पवित्र अग्नि के सामने अपने संकल्प की घोषणा कर दो। एक बार कह दो कि अब हार भी उसकी और जीत भी उसकी, मैंने तो अपना सब उसे सौंप दिया। तुम्हारी हर हार जीत में न बदल जाए तो कहना। हर सुबह हवन की अग्नि में इदं न मम कहकर अपने काम शुरू करना और फिर अगर तुम्हे दुःख हो तो कहना। जिस घर में हवन की अग्नि हर दिन प्रज्ज्वलित होती है वहाँ अशुभ और हार के अँधेरे कभी नहीं टिकते। जिस घर में पवित्र अग्नि विराजमान हो उस घर में विनाश/अनिष्ट कभी नहीं हो सकता।

यज्ञ- हमरा सबकुछ यज्ञ/हवन से सम्बंधित कुछ मन्त्रों के भाव सरल शब्दों में कुछ ऐसे हैं

इस सृष्टि को रच कर जैसे ईश्वर हवन कर रहा है वैसे मैं भी करता हूँ।

यह यज्ञ धनों का देने वाला है, इसे प्रतिदिन भक्ति से करो, उन्नति करो।

हर दिन इस पवित्र अग्नि का आधान मेरे संकल्प को बढाता है।

मैं इस हवन कुंड की अग्नि में अपने पाप और दुःख फूंक डालता हूँ।

इस अग्नि की ज्वाला के समान सदा ऊपर को उठती हूँ।

इस अग्नि के समान स्वतन्त्र विचरती हूँ, कोई मुझे बाँध नहीं सकता।

अग्नि के तेज से मेरा मुखमंडल चमक उठा है, यह दिव्य तेज है।

हवन कुंड की यह अग्नि मेरी रक्षा करती है।

यज्ञ की इस अग्नि ने मेरी नसों में जान डाल दी है।

एक हाथ से यज्ञ करता हूँ, दूसरे से सफलता ग्रहण करता हूँ।

हवन के ये दिव्य मन्त्र मेरी जीत की घोषणा हैं।

हमरा जीवन हवन कुंड की अग्नि है, कर्मों की आहुति से इसे और प्रचंड करता हूँ।

प्रज्ज्वलित हुई हे हवन की अग्नि! तू मोक्ष के मार्ग में पहला पग है।

यह अग्नि मेरा संकल्प है। हार और दुर्भाग्य इस हवन कुंड में राख बने पड़े हैं।

हे सर्वत्र फैलती हवन की अग्नि! मेरी प्रसिद्धि का समाचार जन जन तक पहुँचा दे!

इस हवन की अग्नि को मैंने हृदय में धारण किया है, अब कोई अँधेरा नहीं.

यज्ञ और अशुभ वैसे ही हैं जैसे प्रकाश और अँधेरा। दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

भाग्य कर्म से बनते हैं और कर्म यज्ञ से. यज्ञ कर और भाग्य चमका ले!

इस यज्ञ की अग्नि की रगड़ से बुद्धियाँ प्रज्ज्वलित हो उठती हैं।

यह ऊपर को उठती अग्नि मुझे भी उठाती है।

हे अग्नि! तू मेरे प्रिय जनों की रक्षा कर।

हे अग्नि! तू मुझे प्रेम करने वाला साथी दे। शुभ गुणों से युक्त संतान दे!

हे अग्नि! तू समस्त रोगों को जड़ से काट दे!

अब यह हवन की अग्नि मेरे सीने में धधकती है, यह कभी नहीं बुझ सकती।

नया दिन, नयी अग्नि और नयी जीत.

हे मानवमात्र! हृदय पर हाथ रखकर कहना, क्या दुनिया में

कोई दूसरी चीज इन शब्दों का मुकाबला कर सकती है? इस तरह के न जाने कितने चमत्कारी, रोगनाशक, बलवर्धक और जीत के मन्त्रों से यह हवन की प्रक्रिया भरी पड़ी है. जिंदगी की सब समस्याओं का नाश करने वाली और सुखों का अमृत पिलाने वाली यह हवन क्रिया हमारी संस्कृति का हिस्सा है, धर्म का हिस्सा है, आध्यात्म का हिस्सा है, यह सोच कर गर्व से सीना फूल जाता है। हवन हमारे लिए कोई कर्मकांड नहीं है। यह परमेश्वर का आदेश है, श्रीराम की मर्यादा की धरोहर है। श्रीकृष्ण की बंसी की तान है, रण क्षेत्र में पाञ्चजन्य शंख की गुंजार है, अधर्म पर धर्म की जीत की घोषणा है। हवन हमारी जीत का संकल्प है, हमारी जीत की मुहर है। हम इसे कभी नहीं छोड़ेगे यह संकल्प करें।

हमें यह घोषणा करना होगा कि अब हम हर घर में हवन करेंगे और करवाएंगे। न जाति का बंधन होगा और न मजहब की बेडियाँ, न रंग न नस्ल न स्त्री पुरुष का भेद, अब हर इंसान हवन करेगा, सुखी होगा! जो कोई भी व्यक्ति- हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, यहूदी, नास्तिक या कोई भी, हवन करना चाहता है, संकल्प करना चाहता है, वह कर सकता है। कोई जाति धर्म- मजहब या लिंग का भेद नहीं है।

एक बार गुरु नानक देव जी जगत का उद्धार करते हुए एक गाँव के बाहर पहुँचे ;देखा वहाँ एक झोपड़ी बनी हुई थी ! उस झोपड़ी में एक आदमी रहता था जिसे कुष्ठ-रोग था !गाँव के सारे लोग उससे नफरत करते ;कोई उसके पास नहीं आता था !कभी किसी को दया आ जाती तो उसे खाने के लिये कुछ दे देते अन्यथा भूखा ही पड़ा रहता ! नानक देव जी उस कोढ़ी के पास गये और कहा -भाई हम आज रात तेरी झोपड़ी में रहना चाहते है अगर तुम्हे कोई परेशानी ना हो तो ?कोढ़ी हैरान हो गया क्योंकि उसके तो पास भी कोई आना नहीं चाहता था फिर उसके घर में रहने के लिये कोई राजी कैसे हो गया ? कोढ़ी अपने रोग से इतना दुखी था कि चाह कर भी कुछ ना बोल सका ;सिर्फ नानक देव जी को देखता ही रहा !लगातार देखते-देखते ही उसके शरीर में कुछ बदलाव आने लगे पर कुछ कह नहीं पा रहा था ! नानक देव जी ने मरदाना को कहा -रबाब बजाओ !नानक देव जी ने उस झोपड़ी में बैठ कर कीर्तन करना आरम्भ कर दिया !कोढ़ी ध्यान से कीर्तन सुनता रहा !कीर्तन समाप्त होने पर कोढ़ी के हाथ जुड़ गये जो ठीक से हिलते भी नहीं थे !उसने नानक देव जी के चरणों में अपना माथा टेका ! नानक देव जी ने कहा -और भाई ठीक हो ;यहाँ गाँव के बाहर झोपड़ी क्यों बनाई है ?कोढ़ी ने कहा -मैं बहुत बदकिस्मत हूँ मुझे कुष्ठ रोग हो गया है !मुझसे कोई बात तक नहीं करता यहाँ तक कि मेरे घर वालो ने भी मुझे घर से निकाल दिया है !मैं नीच हूँ इसलिये कोई मेरे पास नहीं आता ! उसकी बात सुन कर नानक देव जी ने कहा -नीच तो वो लोग है जिन्होंने तुम जैसे रोगी पर दया नहीं की और अकेला छोड़ दिया !आ मेरे पास मैं भी तो देखूँ कहा है तुझे कोढ़ ?जैसे ही कोढ़ी नानक देव जी के नजदीक आया तो प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि कोढ़ी बिल्कुल ठीक हो गया !यह देख वह नानक देव जी के चरणों में गिर गया ! गुरु नानक देव जी ने उसे उठाया और गले से लगा कर कहा -प्रभु का स्मरण करो और लोगों की सेवा करो ;यही मनुष्य के जीवन का मुख्य कार्य है !

यजुर्वेद प्रथम अध्याय चतुर्थ मंत्रभाष्यः-